विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिका UGC Approved Journal - UGC Care Review
ISSN NUMBER : 2455-9717
RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929

Dhingra Family Foundation USA

शिवना प्रकाशन

वर्ष : 6, अंक : 23
अक्टूबर-दिसम्बर 2021
मूल्य 50 रुपये

शिवना साहित्यिकी

शोध, समीक्षा तथा आलोचना की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

कुर्सी 1
गोरख पांडेय

ख़ून के समन्दर पर
सिक्के रखे हैं
सिक्कों पर रखी है कुर्सी
कुर्सी पर रखा हुआ तानाशाह
एक बार फिर
क़त्ले-आम का
आदेश देता है

कुर्सी 2
गोरख पांडेय

जब तक वह
ज़मीन पर था
कुर्सी बुरी थी
जा बैठा जब
कुर्सी पर वह
ज़मीन
बुरी हो गई

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नई पुस्तकें

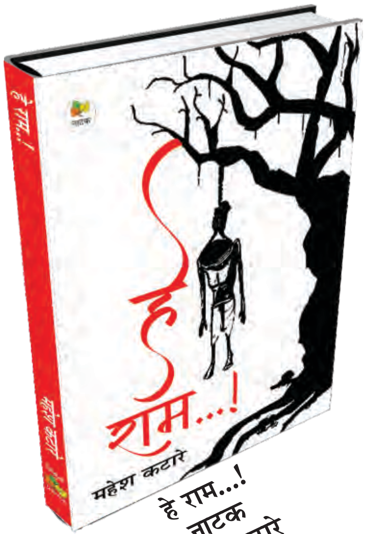

हे राम...!
नाटक
महेश कटारे

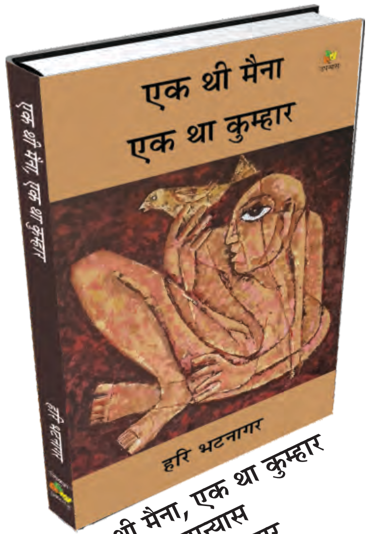

एक थी मैना, एक था कुम्हार
उपन्यास
हरि भटनागर

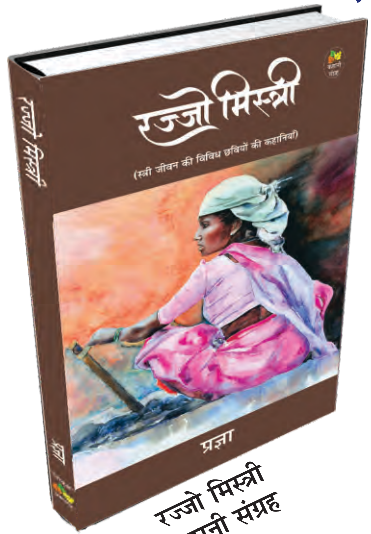

रज्जो मिस्त्री
कहानी संग्रह
प्रज्ञा

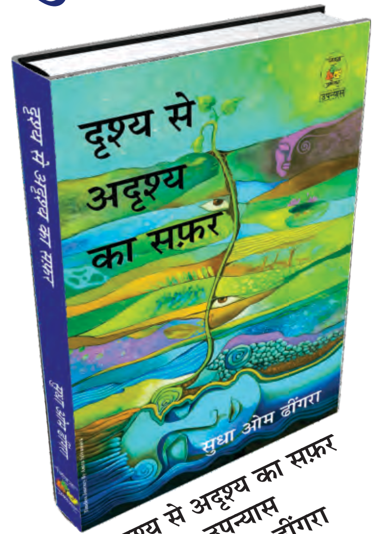

दृश्य से अदृश्य का सफ़र
उपन्यास
सुधा ओम ढींगरा

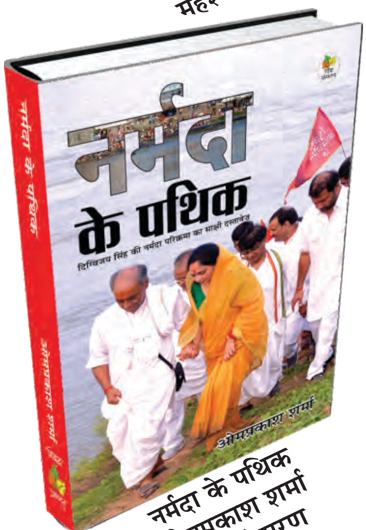

नर्मदा के पथिक
ओमप्रकाश शर्मा
यात्रा संस्मरण

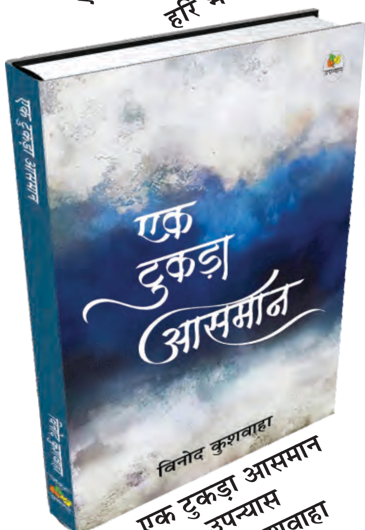

एक टुकड़ा आसमान
उपन्यास
विनोद कुशवाहा

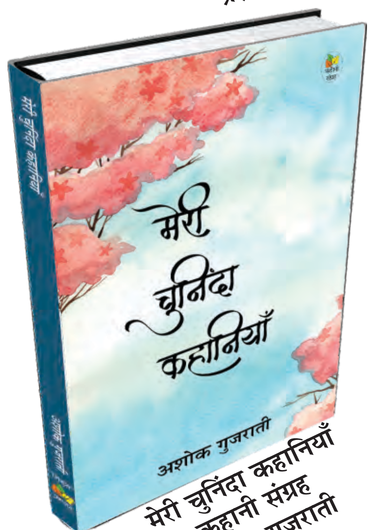

मेरी चुनिंदा कहानियाँ
कहानी संग्रह
अशोक गुजराती

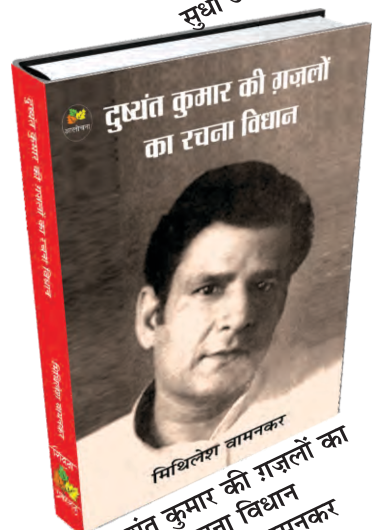

दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों का
रचना विधान
मिथिलेश वामनकर

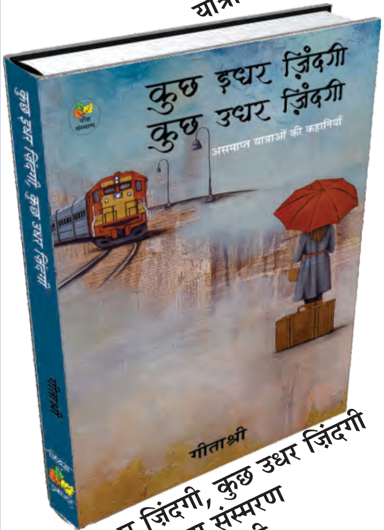

कुछ इधर ज़िंदगी, कुछ उधर ज़िंदगी
यात्रा संस्मरण
गीताश्री

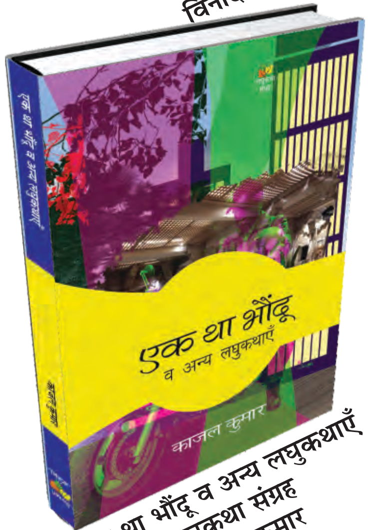

एक था भौंदू व अन्य लघुकथाएँ
लघुकथा संग्रह
काजल कुमार

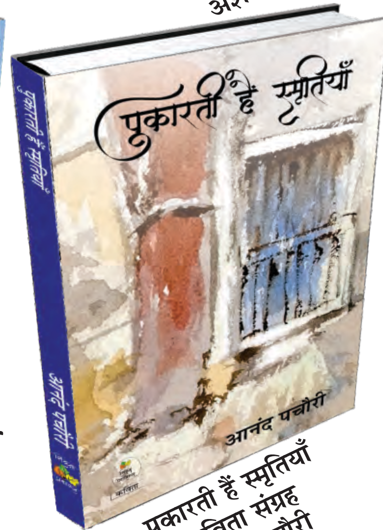

पुकारती हैं स्मृतियाँ
कविता संग्रह
आनंद पचौरी

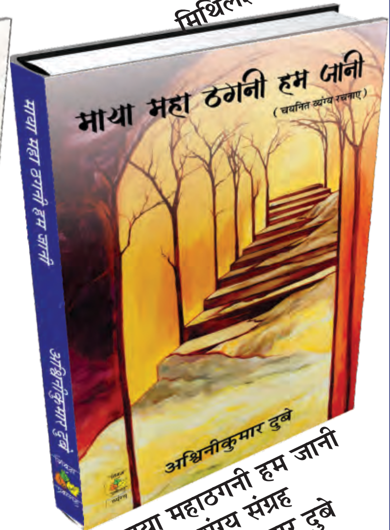

माया महाठगनी हम जानी
व्यंग्य संग्रह
अश्विनीकुमार दुबे

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in

amazon
http://www.amazon.in

flipkart.com
http://www.flipkart.com

Mobile - +91-9806162184, +91-6265665580
WhatsApp +91-8819806162
twitter https://twitter.com/shivnac
facebook https://www.facebook.com/shivna.prakashan
YouTube https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
Email- shivna.prakashan@gmail.com

संरक्षक एवं
सलाहकार संपादक
सुधा ओम ढींगरा
प्रबंध संपादक
नीरज गोस्वामी
संपादक
पंकज सुबीर
कार्यकारी संपादक
शहरयार
सह संपादक
शैलेन्द्र शरण
पारुल सिंह, आकाश माथुर
डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी, सुनील पेरवाल, शिवम गोस्वामी

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 2-7
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : +91-7562405545
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल- shivnasahityiki@gmail.com

ऑनलाइन 'शिवना साहित्यिकी'
http://www.vibhom.com/shivnasahityiki.html
फेसबुक पर 'शिवना साहित्यिकी'
https://www.facebook.com/shivnasahityiki

एक प्रति : 50 रुपये, (विदेशों हेतु 5 डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष)
11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)
बैंक खाते का विवरण-
Name: Shivna Sahityiki
Bank Name: Bank Of Baroda,
Branch: Sehore (M.P.)
Account Number: 30010200000313
IFSC Code: BARB0SEHORE

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्यप्रदेश) रहेगा।

शिवना प्रकाशन

शिवना साहित्यिकी

शोध, समीक्षा तथा आलोचना की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका
वर्ष : 6, अंक : 23, त्रैमासिक : अक्टूबर-दिसम्बर 2021
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिका
(UGC Approved Journal - UGC Care Review)
RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929
ISSN : 2455-9717

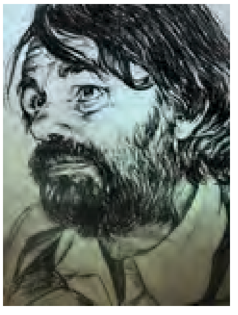

आवरण चित्र
पंकज सुबीर

आवरण कविताएँ
गोरख पांडेय

इस अंक में

आवरण कविताएँ / गोरख पांडेय
आवरण चित्र / पंकज सुबीर
संपादकीय / शहरयार / 3
व्यंग्य चित्र / काजल कुमार / 4

पुस्तक समीक्षा

रज्जो मिस्त्री
राजेंद्र सिंह चूला / प्रज्ञा / 5
मगर, शेक्सपीयर को याद रखना
रमेश दवे / संतोष चौबे / 8
अम्लघात
प्रो.अवध किशोर प्रसाद / सुधा ओम ढींगरा / 11
थोड़ा-सा खुला आसमान
उमाशंकर सिंह परमार / डॉ. रामकठिन सिंह / 14
धूप के लिए शुक्रिया का गीत तथा अन्य कविताएँ
डॉ. नीलोत्पल रमेश / मिथिलेश कुमार राय / 17
वैश्विक प्रेम कहानियाँ
प्रो.अवध किशोर प्रसाद / सुधा ओम ढींगरा / 20
मैं फूलमती और हिजड़े
रमेश शर्मा / उर्मिला शुक्ल / 23
बंटी, बबली और बाबूजी का बटुआ
सुरेश उपाध्याय / दीपक गिरकर / 25
कैराली मसाज पार्लर
डॉ. उमा मेहता / अर्चना पैन्यूली / 26
मध्यरात्रि प्रलाप
शैलेन्द्र चौहान / कैलाश मनहर / 28
एस फॉर सिद्धि
मेधा झा / संदीप तोमर / 29
इसी से बचा जीवन
डॉ. नीलोत्पल रमेश / राकेशरेणु / 31
बहुत दूर गुलमोहर
डॉ. उपमा शर्मा / शोभा रस्तोगी / 33
विवस्त्र तथा अन्य कहानियाँ
श्रीनाथ / प्रताप दीक्षित / 35
हमारे गाँव में हमारा क्या है
डॉ.रामनिवास / अमित धर्मसिंह / 38
कविता फिर भी मुस्कुराएगी
डॉ. नीलोत्पल रमेश / भारत यायावर / 40
खारा पानी
नीरज नीर / आशा पाण्डेय / 42
उफ्फ! ये एप के झमेले
नवीन कुमार जैन / अरुण अर्णव खरे / 44
सिलवटें
सरोजिनी नौटियाल / विकेश निझावन / 46
साक्षात व्यंग्यकार
ब्रजेश कानूनगो / डॉ. पिलकेन्द्र अरोरा / 53
शह और मात
गोविंद सेन / मंजुश्री / 54
टूटेंगे दर्प शिलाओं के
डॉ. राम ग़रीब पाण्डेय विकल / डॉ. मनोहर अभय / 56
मेरी चुनिन्दा कहानियाँ
मनोज कुमार / अशोक गुजराती / 58
वसंत के हरकारे - कवि शैलेन्द्र चौहान
शिखर जैन / सुरेंद्र सिंह कुशवाह / 60
सफ़र में धूप बहुत थी
शैलेन्द्र शरण / ज्योति ठाकुर / 62
एक देश बारह दुनिया
ब्रजेश राजपूत / शिरीष खरे / 63
हक़ीक़त के बीच दरार
मनीष वैद्य / ली मिन-युंग / देवेश पथ सरिया / 64
त्रासदी का बादशाह- रमेश बत्तरा
डॉ. गीता डोगरा / प्रेम जनमेजय, तरसेम गुजराल / 65
पेड़ की पोशाक
रमेश शर्मा / डॉ. अंजुमन आरा / 66
वक्त का अजायबघर
ब्रजेश कानूनगो / निर्मल गुप्त / 67
कथा समय
खेमकरण 'सोमन' / अशोक भाटिया / 68
यांरा से वॉलोंगॉन्ग
दीपक गिरकर / शेर सिंह / 69

केंद्र में पुस्तक

दृश्य से अदृश्य का सफ़र
प्रकाश कांत, उर्मिला शिरीष,
मनीष वैद्य, रश्मि दुधे
सुधा ओम ढींगरा / 48

नई पुस्तक

नर्मदा के पथिक
ओमप्रकाश शर्मा / 37
हे राम...!
महेश कटारे / 55
एक टुकड़ा आसमान
विनोद कुशवाहा / 57
दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों का रचना विधान
मिथिलेश वामनकर / 59
एक थी मैना, एक था कुम्हार
हरि भटनागर / 61

शोध आलेख

राजनीति और नागार्जुन की कविता
डॉ. नूरजहाँ परवीन / 70

संपादकीय

शिष्टता का पाठ लेखकों की नई पीढ़ी को अपनी पिछली पीढ़ी से सीखने की ज़रूरत है

शहरयार

शिवना प्रकाशन, पी. सी. लैब,

सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट

बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र.

466001,

मोबाइल- 9806162184

ईमेल- shaharyarcj@gmail.com

किसी पत्रिका का संपादक होना बहुत कठिन काम है। इसके पीछे कारण है आने वाली सामग्री में लेखकों द्वारा बरती गई लापरवाही। एक समय था जब लेखक भाषाई अशुद्धता, वर्तनी की अशुद्धता तथा शब्दों के एक समान उपयोग को लेकर बहुत सावधानी बरतते थे। वह स्वयं भी सावधानी बरतते थे, साथ ही संपादक को भी आगाह करते रहते थे कि कृपया मेरे द्वारा भेजी गई सामग्री में वर्तनी संबंधी अशुद्धता नहीं जाने पाए इसका ध्यान रखिएगा। लेकिन अब वह समय नहीं रहा। इन दिनों जो सामग्री आती है उसको लेकर सारी सावधानी संपादक की ही होकर रह गई है। ज़ाहिर सी बात है कि पत्रिका में उसका नाम संपादक के रूप में जा रहा है, इसलिए लेखक भले सावधानी बरते चाहे न बरते, संपादक को तो बरतनी ही है। क्योंकि, नाम तो उसी का ख़राब हो रहा है। सबसे ज़्यादा परेशानी सामने आ रही है शब्दों के एक समान उपयोग की। एक ही रचना में लेखक एक शब्द को तीन-तीन, चार-चार प्रकार से उपयोग करता है। जैसे एक शब्द है 'संबंध' उसे लेखक कभी 'संबंध' लिखता है, कभी 'सम्बन्ध', कभी 'संबन्ध' तो कभी 'सम्बंध'। यदि हिन्दी के मानक प्रयोग की बात की जाए तो सही शब्द है 'सम्बन्ध', किंतु इन दिनों बिंदु के उपयोग को मान्यता है, तो 'संबंध' भी सही शब्द है। बात सही या ग़लत की नहीं है, बात यह है कि एक ही रचना में कम से कम आप एक ही तरह से तो उपयोग कीजिए शब्द को। इसके बाद बारी आती है उर्दू के शब्दों की, जिनमें नुक़्ते लगाए ही नहीं जाते हैं। बोलचाल में आप बोलेंगे तो 'ज़रूरत' ही बोलेंगे, लेकिन जब लिखेंगे तो 'जरूरत' लिखेंगे। कितनी सीधी सी बात है कि जो आप बोल रहे हो, उसी को, वैसा का वैसा ही लिख दो मगर नहीं ज़बान से काग़ज़ तक आते-आते बेचारा नुक़्ता शहीद हो जाता है। नुक़्ते की ही तरह चंद्र बिंदु का भी अस्तित्व ही ख़तरे में है। अनुस्वार और अनुनासिक के बीच का फ़र्क़ ही समाप्त किया जा रहा है। अब यह आपको ही समझना है कि उसने 'हंस' लिखा है या फिर 'हँस' ? अब बात करते हैं वर्तनी की, तो वर्तनी की अशुद्धियों को लेकर तो रचनाकार यह सोचता है कि पत्रिका में प्रूफ़ रीडर है, फिर संपादक है, सब कुछ तो वहाँ ठीक कर ही लिया जाएगा, फिर हम क्यों अपनी तरफ़ से परेशान हों। बात परेशानी की नहीं है, बात यह है कि यह जो लापरवाही है, यह आपकी छवि ख़राब कर रही है। जब संपादक आपकी रचना को पढ़ता है, और उसमें किसी स्कूल के बच्चे के भी समझ आ जाने वाली वर्तनी की ग़लतियाँ देखता है, तो आपकी बड़े (....?) लेखक की छवि उसकी नज़रों में क्या बचती होगी। वह डिज़ाइनर, वह प्रूफ़ रीडर, जो साहित्यकार नहीं हैं, पाठक नहीं हैं लेकिन जो आपको साहित्यकार समझते हैं; आपकी इस प्रकार की रचना पढ़ने के बाद, क्या वो अपनी धारणा पर क़ायम रह पाएँगे ? पहले के लेखक इसी कारण सचेत रहते थे अपने लिखे हुए को लेकर। दरअसल वे अपनी छवि को लेकर सचेत रहते थे। अब एक और समस्या यह भी आ रही है कि अर्द्ध विराम तो छोड़िए, अल्प विराम तक चलन से बाहर होता नज़र आ रहा है। एक पूरे वाक्य में कहीं कोई अल्प विराम नहीं होता, जबकि उसमें अल्प के साथ अर्द्ध की आवश्यकता भी साफ महसूस हो रही होती है। विस्मयादिबोधक चिह्न का यह है कि उसे कहीं भी लगा दिया जाता है। जहाँ पर आपको लग रहा है कि पूर्ण विराम की जगह कुछ नया प्रयोग किया जाए, तो आप तुरंत वहाँ इसे लगा देते हैं। या फिर इन दिनों लेखकों की सबसे पसंदीदा तीन बिंदियाँ। यह तो बात हुई वर्तनी की मगर बात उससे भी आगे की यह है कि आप पुस्तक की समीक्षा ईमेल द्वारा भेजते हैं, पुस्तक भेजना ज़रूरी नहीं समझते। चलो कोई बात नहीं, मगर संपादक ही नेट पर जाकर आपकी पुस्तक का आवरण तलाश करे, इस सज़ा का क्या मतलब है ? शिष्टता का पाठ लेखकों की नई पीढ़ी को अपनी पिछली पीढ़ी से सीखने की ज़रूरत है, मगर जब बिना सीखे ही रचनाएँ धड़ाधड़ छप रही हैं, तो क्यों सीखा जाए भला...? **आपका ही**

शहरयार

व्यंग्य चित्र-

काजल कुमार

kajalkumar@comic.com

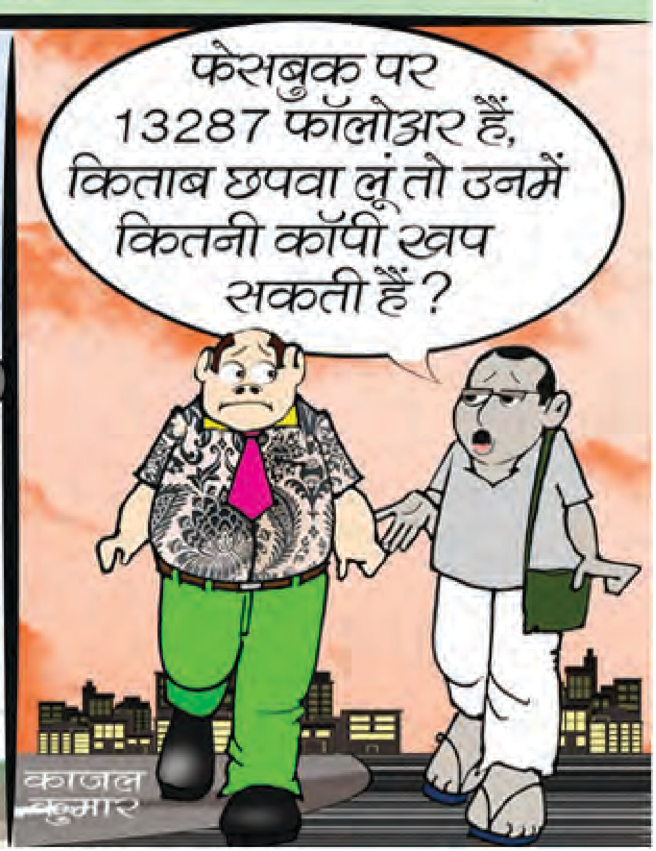

पुस्तक समीक्षा

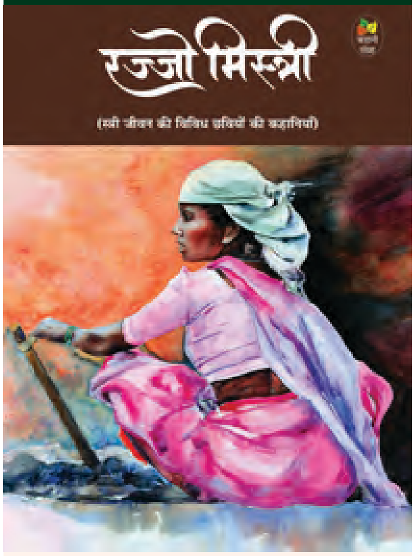

(कहानी संग्रह)

रज्जो मिस्त्री

समीक्षक : राजेंद्र सिंह चूला

लेखक : प्रज्ञा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, म.प्र.

राजेंद्र सिंह चूला
शौर्य पब्लिक स्कूल, मुख्य पोस्ट खंडेल,
तहसील फुलेरा,
जिला जयपुर, राजस्थान 303604

इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक में जिन सशक्त कथाकारों की पीढ़ी उभरी उसमें कथाकार प्रज्ञा एक उल्लेखनीय कहानीकार हैं। उल्लेखनीय इसलिए कि प्रज्ञा ने अपने कथाकार को सार्थक और सुचिंतित रूप से तैयार किया है जिसका प्रमाण उनके कहानी संग्रह -'तकसीम' और 'मन्नत टेलर्स' हैं। उनके दोनों ही उपन्यास-'गूदड़ बस्ती' और 'धर्मपुर लॉज' हैं। पिछले एक दशक की अवधि से प्रज्ञा निरंतर अपने कथाकार का विकास कर रही हैं। कथा जगत् में भी उनकी उपस्थिति समकालीन कहानीकारों, वरिष्ठ कथाकारों और कथा आलोचकों के बीच बहुत आश्वस्ति से भरी है। 'रज्जो मिस्त्री' प्रज्ञा का तीसरा कहानी संग्रह है जो हाल ही में शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित हुआ है। कवर पर ही पाठकों को सूचित कर दिया गया है कि इस संग्रह में स्त्री जीवन की विविध छवियाँ पाठकों को मिलेंगी। 'रज्जो मिस्त्री' कहानी संग्रह में प्रज्ञा की स्त्री छवियों के विविधतामयी संसार की दस भिन्न छवियाँ शामिल हैं। साथ ही कहानियों से पूर्व कथाकार द्वारा लिखी गई भूमिका भी विशिष्ट है। मशहूर शायर फैज़ अहमद फैज़ की पंक्तियों-

बोल कि लब आज़ाद हैं तेरे/ बोल कि ज़ुबाँ अब तक तेरी है।

तेरा सुतवां जिस्म है तेरा/ बोल कि जाँ अब तक तेरी है--से 'रज्जो मिस्त्री' संग्रह की भूमिका आरंभ होती है जिसमें कथाकार लिखती हैं- ''रज्जो मिस्त्री' संग्रह में स्त्री के जीवन के विविध रूप आप पाएँगे। इन कहानियों में ख़ास बात यह है कि यह स्त्री की रूढ़ छवि से इतर छवि प्रस्तुत करती हैं। मेरी इन कहानियों की स्त्री एक नहीं है ये शहरी, ग्रामीण और क़स्बाई स्त्रियाँ हैं। इनकी वर्गीय छवियाँ भी एक-सी नहीं हैं इसीलिए संघर्ष और चुनौतियाँ भी भिन्न हैं। वह अनेक बार

अकेली करके तोड़ दी जाती हैं तो अनेक बार रेत के ढेर से लोहा बनकर खड़ी भी होती हैं। इन कहानियों में सामाजिक प्रतिकूलताओं से लड़ती-जीतती और हारती स्त्रियों की छवियाँ हैं। ये स्त्रियाँ शिक्षा, प्रेम, आर्थिक स्वावलंबन और बराबरी की लड़ाई लड़ रही हैं। निर्णय की आज़ादी अर्जित करने की लड़ाई लड़ रही हैं। इनका संघर्ष दोहरा है। दरअसल स्त्री को जो ऊर्जा रचनात्मक कामों में लगानी चाहिए विडम्बना है कि उसकी अधिकांश ऊर्जा जीवन भर खुद के अस्तित्व को दर्ज कराने में ही नष्ट हो जाती है। मेरी कहानियों में संघर्षरत स्त्री कई बार अकेली ज़रूर है पर तर्क, विचार और जिजीविषा के बल पर टूटकर भी खड़ी होती है, जूझती है और अनेक बार सकारात्मक दृष्टि भी प्रदान करती है।''1

जिन पाठकों ने प्रज्ञा की कहानियों को पढ़ा है वे जानते हैं प्रज्ञा की कहानियाँ विमर्श की चौखट के भीतर की कहानियाँ नहीं हैं। प्रज्ञा समय के दबावों को वहन करती हैं। यथार्थ को उसके अनेक आयामों में उठाती हैं और अपने अस्तित्व के लिए बेचैन रहती उस स्त्री की कहानी कहती हैं जो एक तरफ लैंगिक समानता के लिए संघर्ष कर रही है, तो दूसरी और उसी के साथ आर्थिक-सामाजिक-राजनीतिक आज़ादी के लिए भी। 'रज्जो मिस्त्री' की सभी दस कहानियाँ इस कथन को प्रमाणित करती हैं। प्रज्ञा की कहानियों की विविध स्त्री छवियाँ अनेक रूपों में संघर्षरत हैं। 'रज्जो मिस्त्री' संग्रह अपने शीर्षक से ही पाठक को आकर्षित करता है। आमतौर पर मिस्त्री जैसे हुनरमंद काम को करने वाला कारीगर पुरुष ही होता आया है। प्रज्ञा इस बंधी-बंधाई लीक से हटकर कहानी लिखती हैं। एक तरफ ये कहानी उस रज्जो की कहानी बनती है जिसे अक्सर पुरुष मिस्त्री और ठेकेदार बेलदारी के काम देते हैं। उसकी योग्यता को ही नहीं उसके श्रम को भी सम्मान नहीं देते। कहानी में ठेकेदार मजदूर रज्जो के श्रम का अपमान करता है-''तो तू ठेकेदारिनी लग रही है यहाँ की? ख़बरदार जो फिर कभी सरिये-करनी को हाथ लगाया। सर पर तसला उठा और चुपचाप माल ढो। जिस काम की कही जाए वही कर बस। औरत है मर्द के पीछे रह। मर्द होने की कोशिश में न मर्द बन पाएगी और औरत होने से भी जाएगी।'' 2 (पृ. 103)

कहानी रज्जो के माध्यम से स्त्री श्रम और बराबरी के सवाल को उठाती है और अपने स्वाभिमान को कुंठित नहीं होने देती। कहानी का वैशिष्ट्य इस रूप में भी है कि करोना महामारी में मज़दूर परिवारों की त्रासदी को उठाया गया है और सरकारी उपेक्षा को भी दिखाया गया है। यह कहानी श्रमिक वर्ग की कहानियों से इसलिए भी अलग है कि इसमें सभी पुरुषों को स्त्री के श्रम और हुनर की उपेक्षा करते नहीं दिखाया गया है। रज्जो का पिता रज्जो की योग्यता को जानकर उसे सब काम सिखाता है और उसका पति भी रज्जो की ज़िद पर उसे काम सिखाता है। परिस्थितियाँ कुछ ऐसी घटित होती हैं कि पति के भीतर बसे पुरुष को भी कथाकार सामने लाती हैं। जीवन की जटिल परिस्थितियों में जूझती रज्जो का जीवट से भरा व्यक्तित्व एक मिसाल की तरह प्रस्तुत होता है। वह स्त्री अस्मिता के, स्वाभिमान के, स्त्री श्रम के, स्त्री-पुरुष बराबरी के और अपने कौशल की स्वाधीनता के सवाल उठाती है पर घर और प्रेम को नहीं भुलाती। कहानी में जिज्ञासा तत्व ग़ज़ब का है। मिस्त्री के श्रम पर कथाकार की पैनी दृष्टि और सूक्ष्म निरीक्षण शिल्प को धार देते हैं। लोकगीत का प्रयोग और यू.पी.-दिल्ली का विस्तार भी उल्लेखनीय है। सबसे विशिष्ट है कहानी की भाषा। बहुत प्रवाह के साथ कहानी अपने संवादों, तरह-तरह के दृश्यों, पीड़ा-हास्य और गंभीर सवालों से पाठक के मन पर छाप छोड़ती है।

संग्रह की भूमिका से 'रज्जो मिस्त्री' की अन्य कहानियों और कथाकार की स्त्री विषयक दृष्टि का भी ज्ञान होता है। वे कहती हैं-''यह हम जानते हैं कि स्त्री इकहरी इकाई नहीं है। दैहिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक दबावों से स्त्री का व्यक्तित्व बनता है। इस अर्थ में ये कहानियाँ मात्र कुछ स्त्रियों की कहानियाँ नहीं हैं बल्कि उस पूरी व्यवस्था की पड़ताल इन कहानियों में है जिससे हमारे समाज की स्त्री बनती है। यह स्त्री प्यार, नफ़रत, जिजीविषा, ईर्श्या, स्नेह, समर्पण, श्रम और मुक्ति के रग-रेशे से मिलकर बनी है। या कुल मिलाकर कहूँ तो एक जीती-जागती-साँस लेती स्त्री। एक बात जो इन सभी स्त्रियों को एक सिरे से जोड़ती है वह है जीने ही अदम्य इच्छा। इस संग्रह की कहानियों की स्त्रियाँ किसी नारे से पैदा नहीं हुई हैं और इनकी कहानियों को लिखने के लिए कहानीकार को स्त्रीवाद की किताबें पढ़ने की ज़रूरत नहीं पड़ी है ठीक वैसे ही जैसे इन कहानियों के पाठकों को ज़रूरत नहीं पड़ेगी। ये हमारे समय के यथार्थ को देखने-दिखाने वाली स्त्रियाँ हैं।''3

संग्रह की 'मौसमों की करवट' कहानी की संजू का पति के उत्पीड़न और बच्चों के हक के लिए संघर्ष ही नहीं बल्कि माता-पिता के रूढ़िवादी सोच को बदलने के लिए संघर्ष भी ज़रूरी बन पड़ा है। प्रज्ञा लिखती हैं- ''जा बेटा सब ठीक हो जाएगा।'' जैसे शब्दों के साथ अनेक संजुओं की तरह दुलार-पुचकारकर भेज दी गई संजू। जिस घर का दरवाज़ा न खटखटाओ वही बेहतर। अंदर अलग-अलग हालात में कितनी संजू मजबूरी में वीरान ज़िंदगियाँ ही ढोती मिलेंगी।''4 (पृ.18) संजू के संकल्प और संघर्ष की तरह ही 'धर्राख अपनी धर्मसाला' कहानी की घरेलू श्रमिक अमृता भी अपनी सेवाओं का उचित मेहनताना न दिए जाने और झूठे आरोप का पूरा विरोध करती है। कहानी का अंत अमृता की सेवाओं का आनंद उठाने वाले और ज़रूरत समाप्त होने पर साम्प्रदायिक सोच से उसे निकालने वाले लोगों का चेहरा सामने लाता है-''धर्म की भारी क्षति पर निरंजन के शब्द आग की तरह भभक रहे थे। उसका पूरा घर इस आग पर पवित्र जल के छिड़काव को लालायित था। पर इस आग के नीचे एक और आग दबी थी, जिसकी भनक उसने किसी को नहीं लगने दी। निरंजन के छिपाने के बावजूद घर की दीवारें उस सच को जानती थीं। झूठे आरोप में बेइज़्ज़त करके निकाले जाने से पहले अमृता की आग भरा ज्वालामुखी इस घर से मिले एकमात्र सस्ते सूट का थैला उछालते हुए निरंजन के आगे फट पड़ा था-''धर्राख अपनी

धरमसाला।''5 (पृ.152)

स्त्री जीवन की दस छवियाँ सामने लाते हुए कथाकार का स्त्री संबंधी दृष्टिकोण सामने आता है। वहाँ मुख्य यह भी है कि स्त्री के संघर्श में सभी पुरुष उसके शत्रु नहीं उसके मददगार और सहयोगी भी हैं। संग्रह की कहानियों में यह बात देखी जा सकती है। 'परवाज़' कहानी की ख़ुशबू और उसके सौतेले विक्लांग पिता का रिश्ता बेहद अनूठा है। यह कहानी उन स्टीरियोटाइप कहानियों से भिन्न और महत्त्वपूर्ण है जहाँ सगी माँ ही हितैषी है, सौतेला पिता राक्षस। यहाँ सगी माँ के भीतर बैठी सामंती रूढ़िवादिता पर कथाकार चोट करती हैं। बड़ी बात ये भी है कि प्रज्ञा कहानी में रहस्य रचने और अपने चरित्र रचने में बेहद सावधान रहती हैं। वे उनके अंतर्विरोधों को सामने लाती हैं। कहानी के अंत में ख़ुशबू की शिक्षित, आत्मनिर्भर और खुशहाल ज़िंदगी का सपना देखने वाला सौतेला पिता कहता है- ''मैडम! मैंने ही उससे ये नाटक रचने को कहा था। ज़माना वैसे भी बाप की बुराई पर ज़्यादा काँपता है। हमारी ग़लती से आज आप सच जान गईं... सच तो ये है कि मैं ठहरा एक बेकार आदमी। फैक्ट्री में काम करता था, वो बंद हो गई फिर मेरा हाथ भी जाता रहा... घर चलाती है इसकी माँ... घर में शांति बनी रहे और ख़ुशबू पढ़-लिख जाए यही मेरा अरमान है पर इसकी माँ को नहीं पसंद इसका कॉलेज आना, घूमना-फिरना... ख़ुशबू लड़ने-मरने को तैयार थी पर बाद में मेरी और ख़ुशबू की एक सोच बनी कि आप दोनों ही कुछ कर सकते हो इस मामले में...इसीलिए पहले आपके घर लाकर इसकी मम्मी को मिलवाया था, प्रिंसीपल साहब से उसकी फ़ोन पर बात करवाने का विचार भी मेरा ही था। कितनी सँभल गई थी उन दिनों ख़ुशबू की मम्मी पर अब कुछ दिनों से शादी की रट। घर में किसी की सुनती ही नहीं। कौन समझा सकता है उसको? दो बेटे हैं, वो भी उसकी दिखाई राह चलते हैं। मैं नकारा केवल नाम का मर्द। ज़िंदगी के धक्के खाती-खाती सख्त होती चली गई इसकी मम्मी। शुरू से ऐसी नहीं थी ये। बड़ा प्यार था हमारे बीच। सब लोगों के ख़िलाफ़ जाकर मेरे घर चली आई थी बच्चों को लेकर। आप देखना इतनी बुरी नहीं है ये। फितूर चढ़ता है तो पागल हो जाती है ये करो, ये न करो। लेकिन एक बार ढंग से बात गाँठ बाँध ले तो जनम भर निभा देगी।''6 (पृ.50)

कथाकार प्रज्ञा की कहानियों में 'पाप तर्क और प्रायश्चित' तथा 'उलझी यादों के रेशम' कहानी अपने कथ्य और भाषिक संरचना के कारण बहुत चर्चित रही हैं। लव जिहाद और धार्मिक संकीर्णता में एक लड़की से उसकी इच्छाओं को छीनकर उसे दीक्षा दिलाना जहाँ 'पाप तर्क और प्रायश्चित' कहानी का कथ्य है वहाँ आज भागते समय में पीछे छूट रहे बीमार वृद्ध लोगों का अचानक ग़ायब हो जाना 'उलझी यादों के रेशम' का कथ्य है। जीवन में कहीं खो गए पिता के बहाने एक लड़की पूरे जीवन की कहानी कहती है। कहानी में प्रतीक, बिंब, गंध सब मिलकर उतने ही महीन हैं जितना रेशम। कविता की तरह कहानी कही गई है।

संग्रह में स्त्री जीवन के दस चित्र दस भिन्न स्वर लिए हुए हैं। कहीं जीवन संघर्ष में जीत दर्ज करती मिसाल बनती स्त्रियाँ हैं तो कहीं हारती स्त्रियाँ भी हैं। 'फ्रेम' कहानी की रावी इस दृष्टि से सामाजिक ढर्रे में तैयार की गई अच्छी लड़की' है। जिसकी आज़ाद मानसिकता पर तमाम पहरे हैं। कहानियों में दृश्य निर्मिति में कथाकार का कौशल दिखाई देता है।

'तस्वीर का सच' कहानी की रानी दीदी भी उन स्त्रियों की कहानी कहती हैं जो पितृसत्ता के आदेशों का पालन करके भी पितृसत्ता की बली चढ़ाई जाती हैं। कहानी में आए प्रतीक बहुत ही सार्थक हैं। कहानीकार ने इंगित किया है यदि रानी दीदी आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होतीं तो उनके लिए 'ग़ैर ज़रूरी' धैर्य को ढोने की आवश्यकता नहीं थी। वह हुनरमंद थीं। जीवन में दुख-अपमान, कष्टों-संघर्षों के बाद भी बेटी के लिए एक सपना देखना और उसकी तैयारी करना भी कम साहसिक कृत्य नहीं है। 'इमेज' कहानी की रूपल दी एक बेहद अलग और जटिल चरित्र है। कथाकार ने एक स्त्री को उसके अंतर्विरोधों के साथ गढ़ने का बेहतर प्रयास किया है। राजनीति के साथ बाज़ार के महीन तंतु को भी कहानी पकड़ती है। राजनीतिक क्षेत्र में स्त्री की महत्त्वाकांक्षा को अलग रूप में यह कहानी रखती है। कथाकार की एक अन्य कहानी - 'स्याह घेरे' भी याद आती है जो पत्रकार अनुभा चौधरी के माध्यम से अभिव्यक्ति के संकट की बात कहती है। कहानी में अनूठी भाव-विचार की धारा लिए 'बतकुच्चन' कहानी में क़िस्सागोई का अद्भुत पक्ष है। कहानी संवादों में है और कहानीकार का संवाद कौशल ग़ज़ब है। रिश्तों और कर्त्तव्य निभाने की बात आने पर स्त्रियाँ कैसे गिले-शिकवे भुलाकर सहयोग के लिए तत्पर हो जाती हैं। संवेदनशीलता के साथ हास्य-व्यंग्य से लैस कहानी कथारस से भरपूर है।

इस तरह 'रज्जो मिस्त्री' समाज में स्त्री की दस विविध छवियों को समेटता हुआ एक बेहतरीन संग्रह है। कथाकार प्रज्ञा का यह तीसरा कहानी संग्रह उनकी कथा-यात्रा में महत्त्वपूर्ण होगा। संग्रह द्वारा स्त्री जीवन के विविध स्वरों को एक मंच मिलना ही नहीं बल्कि कथाकार की व्यापक यथार्थवादी दृष्टि से परिचित भी होना भी यहाँ मुख्य है। कहानियों के कथ्य की नवीनता के साथ शैल्पिक रूप भी कलात्मक है। शिवना प्रकाशन ने संग्रह के आवरण पृष्ठ को ही आकर्षक नहीं बनाया है बल्कि इसकी छपाई भी बेहद सुंदर है। संग्रह का मूल्य भी अधिक नहीं है।

'रज्जो मिस्त्री' की कहानियाँ को पाठक न केवल पसंद करेंगे बल्कि ये कहानियाँ स्त्री विमर्श के घेरे से बाहर व्यापक स्त्री सत्य को समाज के सामने लाने में सक्षम रहेंगी।

000

संदर्भ :

1 रज्जो मिस्त्री : प्रज्ञा, भूमिका से

2 वही, पृ 103

3 वही, भूमिका से

4 वही,पृ 18

5 वही, पृ 152

6 वही, पृ 50

(कहानी संग्रह)

मगर, शेक्सपीयर को याद रखना

समीक्षक : रमेश दवे

लेखक : संतोष चौबे

प्रकाशक : आइसेक्ट पब्लिकेशन, भोपाल

रमेश दवे
एस.एच. 19, ब्लॉक-8, सहयाद्रि परिसर,
भदभदा रोड, भोपाल (म.प्र.)
मोबाइल- 9406523071
ईमेल- rameshdave12@rediffmail.com

संतोष चौबे की सात कहानियों का संग्रह 'मगर, शेक्सपियर को याद रखना' एक प्रचलित मिथ को खण्डित करता है। कहानी केवल कहने या सुनने के लिए होती है, दादी-अम्मा से जुड़ा यह मिथ अब केवल वहीं तक सीमित नहीं है। यह मिथ टूट कर अब ऐसी वास्तविकता में बदल गया है, जिसने कहानी की वाचिकता को लिखित सत्य में बदल दिया है। इसलिए अब कहानी एक लिखित सृजन है, वह चाक्षुष यथार्थ है और पठनीयता उसका स्वभाव है।

संतोष चौबे की ये सात कहानियाँ अनेक जिज्ञासाएँ पैदा करती हैं- शेक्सपियर के ज़रिए वे किसकी कुष्ठा, किसका अहंकार तोड़ना चाहते हैं? नाटक, नाटककार, निर्देशक कितना भी बड़ा सेलीब्रेटी हो जाए, क्या वह शेक्सपीयर से बड़ा हो सकता है? अन्य कहानियों को पढ़कर प्रश्न पैदा होता है कि क्या कोई भी कहानी बिना परिवेश, पर्यावरण, पात्र, संवेदन और जीवन-सत्य के लिखी जा सकती है? क्या कहानी का ठोस भौतिक आकार होना अनिवार्य है, क्या वह अमूर्त या एब्सर्ड नहीं हो सकती? क्या कहानी स्वयं लेखक के जीवनानुभव की उत्पत्ति है? क्या कहानी का अपना रस-आस्वाद होता है जो सुखांत-दुखान्त होकर भी आनंद में परिणत हो या जो केथारसिस या पिरेचन करे? अंत में यह प्रश्न भी उठता है कि कहानी क्या कला है जो शब्द, भाव-व्यंजना और यथार्थ के शिल्प पर बनती है?

संतोष चौबे के कथा-संसार में भावुकता अश्रुपात न होकर बौद्धिक तर्क-बद्धता है जो उनके वैज्ञानिक भाव की अभिव्यक्ति है। संभवतया जब संतोष किसी विषय का कहानी करण करना चाहते होंगे तो उनके मन में कुछ प्रश्न अवश्य उठते होंगे और प्रश्नों के उत्तर कहानी में रचने के लिए वे ऐसा शिल्प रचते हैं जो तीन प्रकार का होता है (1) आत्म-संवेदी (2) पाठक-संवेदी और (3) श्रोता-संवेदी। कहानियाँ जब माँ दादी की वाणी से निकलकर कहानीकारों के हाथों में आई होंगी, तो कहानीकार के सामने माँ-दादी की कथा-प्रस्तुति चुनौती की तरह रही होगी और एक संवेदनशील कथाकार के मन में यह चैलेन्ज रहा होगा कि कहानी को उतना सहज, सरल और स्वाभाविक कैसे बनाएँ कि पाठक या श्रोता बच्चों की तरह कहानी पढ़ें या सुनें और समझें। लेखक की कथा का अर्थ है एक एक ऐसे पाठक, श्रोता, अध्येता के लिए कथा की प्रस्तुति जो कथा के गूढ़ार्थ समझ सके, कथा में अवगाहन कर उसके कथ्य, तथ्य, तत्व और सत्य को अपना शोध या अध्ययन बना सके। ऐसी कहानियाँ महज कहानी नहीं होती बल्कि कला होती हैं, जीवनगत-विचार अनुभवों के शिल्प में रची जाती हैं और उनमें भाषा को अपने पंख खोलने

का एक काल्पनिक व्योम और एक यथार्थ की भूमि मिलती है।

ख़ैर, संतोष की इन सात कहानियों में ऐसा लगता है संतोष अपने अन्दर का मनोवैज्ञानिक आजमा रहे हैं। 'मगर, शेक्सपीयर को याद रखना' किसी नाटककार रंगकर्मी के अहंकार को इसलिए खंडित करने वाली कथा है जो जीवित अनुभव का साथ है। अनेक कलाकार, रंगकर्मी या सर्जक वरिष्ठता, अपने सेलिब्रेटी हो जाने के दंभ और अपनी अनेक सफलताओं या लोकप्रियता के अश्वारोही होकर जिस प्रकार का कुंठाग्रस्त अहंकार प्रकट करते हैं, उस पर संतोष ने साहस के साथ प्रहार किया है और थियेटर की पूरी सज्जा, कोरियोग्राफी एवं नाटक की प्रस्तुति के तमाम तथ्यों को इस प्रकार प्रस्तुत कर दिया है कि कहानी में एक ओर व्यक्ति है तो दूसरी ओर एक कथाकार का रंगकर्म के प्रति विशेष संवेदन, अवलोकन और विवेचन भी, इस कहानी में नरेन्द्र का अरुणा से वार्तालाप करते हुए यह कहना कितना सार्थक है एक बड़े कलाकार, निर्देशक के कुंठित मनोविज्ञान को प्रकट करने में -

'अरुणा तुम इरफ़ान साहब के कलात्मक क़द के साथ उनके व्यवहार का तालमेल नहीं बिठा पा रही हो। तुम उनमें सुपर-ह्यूमन या महामानव देखना चाहती हो। पर हैं तो वे भी आख़िर हमारी तुम्हारी तरह के सीमित क्षमताओं वाले मनुष्य।.... साथी लेखकों की विसंगतियों को तुम झेल सकती हो पर कलात्मक ऊँचाई प्राप्त कर लेने वाले नाट्य-निर्देशकों को नहीं।' यह उद्धरण बताता है कि संतोष के मन में इन सब निर्देशकों को लेकर एक तटस्थ विचार यह है कि नए अभिनेता, निर्देशक, मंच सज्जाकार या प्रापर्टी का सही इस्तेमाल करने वाले अक्सर बड़े कलाकारों के समक्ष अपनी प्रतिभा का समर्पण कर देते हैं। एक नया से नया कलाकार भी पुराने से पुराने श्रेष्ठतम रंगकर्मियों से बेहतर हो सकता है, यह चेतना संतोष नए रंगकर्मियों में पैदा करते हैं। क्या दुनिया भर के बड़े नाटककारों के बाद ब्रेख्त, सेम्युअल बेकेट आदि न आते तो दुनिया केवल शेक्सपीयर और बर्नार्ड शॉ पर ही टिकी रहती? हिन्दी नाटकों में अगर मोहन राकेश जैसे नाटककार, सत्यदेव दुबे जैसे निर्देशक, कारंत जैसे बहु-वचनीय रंग-निर्देशक, संगीतकार न होते तो क्या हिन्दी नाटक केवल लक्ष्मीनारायण लाल, हरिकृष्ण प्रेमी पर ही टिका रहता? संतोष ने यह कहानी लिखकर एक प्रकार के बड़ेपन के समक्ष छोटेपन की हीनता न दिखाकर बड़प्पन को छोटा होते हुए दिखाया था। इसलिए यह कहानी अत्यंत रोचक बन गई है।

संतोष की अन्य छह कहानियों में भी वे जीवानुभव हैं जो संभवतया स्वयं उन्होंने देखे परखे हैं। एक बात निर्मल वर्मा की यहाँ याद आती है। वे कहते थे कहानी में मनुष्य अपना सत्य लिखना है। इसका अर्थ तो यह भी है कि कहानी हो या कविता साहित्य सर्जना सत्य की साधना भी है और सर्जना भी। 'ग़रीबनवाज़' तो कहानी में सत्य ही सत्य का वर्णन है। कहानी का एक पक्ष विवरण या डिस्क्रिप्शन भी है। संतोष ने इस कहानी में वर्णन, विवरण और कहन को अत्यंत निरपेक्ष भाव से रचते हुए समाज की विडम्बना, राजनीति और सत्ता-तंत्र की विडंबना एवं मित्रता की विडंबना को अनुभव और अपने भोगे हुए सत्य को उद्घाटित कर दिया है। यहाँ विश्वास या भरोसे का अंत एवं न्याय का भी अंत है, ग़लत व्यक्ति की जय और सही की यह पराजय क्या वर्तमान समय की विद्रूपता नहीं है? ऐसा माना जाता है कि संतोष स्वभाव से कुछ हद तक सामाजिक संवेदन के लेखक हैं जिसे वामपंथ भी कहा जा सकता है। लेकिन संतोष ने इस दुराग्रह को भी खंडित किया है। यह कहानी सिद्ध करती है कि शोषक पूँजीवादी, धनवान, सामंत या शक्तिशाली समूह ही नहीं होता, बल्कि ग़रीब कई बार अमीर का भी शोषण करता है और कम ग़रीब ज़्यादा ग़रीब का तो करता ही है, जिसे मज़दूरों और सेठ, किसानों और ज़मीदारों के रिश्तों में प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। ऐसे ही शोषण की यह कहानी है जो परिवेश पर्यावरण, परिसर, शिक्षा और न्याय के अपमान या अवमानना पर खड़ी है।

यह तो निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि संतोष ने कहानी लिखते हुए उनकी मंचनीयता को ध्यान में रखा था या नहीं मगर इतना अवश्य है कि शेक्सपीयर, रामकुमार के जीवन, रेस्त्रां में दोपहर और ग़रीब नवाज़ ऐसी कहानियाँ जिनमें मंच-तत्व हैं और यदि नाट्य-रूपांतर न भी किया जाए तो भी ये मंच पर से खेली जा सकती हैं। जैसा अक्सर देवेंद्र राज अंकुर ने प्रयोग करके कहानी के मूल स्वरूप का मंचन किया है। यह माना जाता है कि एक प्रतिभावान सर्जक अपनी चेतनात्मक बेहोशी में जीता है, जिसका बड़ा उदाहरण है कॉलरिज जैसा कवि। जब एक कथाकार अपने सर्जन में डूब जाता है तो वह समस्त भौतिक दायरे तोड़ देता है। ऐसा करके ही तो वह जो रचना चाहता है वह रचा जा सकता है जिसका सबसे बड़ा उदाहरण 'नौ बिन्दुओं का खेल' नामक कहानी है। 'लेखक बनाने वाले' एक ऐसी कहानी है जो एक प्रकार का व्यंग्य भी है और व्यावसायिक-रूपक भी। फिल्मों में तो ऐसे कई पात्र हैं जो नवयुवकों के लिए एक जाली बाज़ार बनाते हैं, संतोष ने साहित्य में यह बाज़ार खड़ा करके साहित्य की दुनिया के छद्म रूप को उजागर किया है जिसका एक उदाहरण पत्र-पत्रिकाओं में छपने, किताबें छापने, प्रायोजित समीक्षा एवं संगोष्ठियाँ करवाने और पुरस्कार प्राप्त करने में देखा जा सकता है। फिल्मों में तो इसके लिए लॉबीइंग या प्रचारतंत्र सक्रिय है। यह कहानी लिखकर संतोष ने युवा-प्रतिभाओं को ऐसे लेखन-बाज़ार से आगाह भी किया है क्योंकि यह भी अनेक छद्म कोचिंग सेण्टर्स की तरह ही जालसाज़ी और शोषण है।

'रेस्त्रां में दोपहर' एक ऐसी कहानी है जिसके कई आयाम हैं। कालेज, छात्र, कॉफी हाउस या रेस्त्रां, लड़कियाँ-नीति, सुरेखा, शुभ्रा (सभीके नाम अंग्रेज़ी अक्षर एस से) और स्वयं सुकांत, रेस्त्रां का माहौल, राजनीतिक चर्चा, सुकांत की प्रतिभा, उसका ज्ञान, देरिदा ईगलटन, फूको आदि उत्तर आधुनिकों तक उसका संगीत ज्ञान, कथा में व्याप्त परिवेश और प्रकृतिगत चित्र, कुल मिलाकर संतोष की यह कहानी एक प्रकार से एक ऐसे बौद्धिक की कहानी है जिसके पास अनुभव, अवलोकन और अध्ययन की एक व्यापक

आत्म दुनिया है। संभव है ऐसी दुनिया का यह सुकांत स्वयं लेखक भी हो सकता है इसी प्रकार रामकुमार वाली कहानी में भी दफ्तर, जीवन की आपाधापी व्यवस्था का चरित्र सेमिनार में भागीदारी आदि के जो चित्र कथाकार ने रचे हैं वे भी स्वयं लेखक की दुनिया के ही चित्र हैं। इन दो कथाओं को पढ़कर लगता है कि संतोष स्वयं के जरिए समय एवं परिवेश में रहते जीते लोगों की कहानी रच रहे हैं जिसमें से स्वयं भी एक पात्र ऐसे है जो बौद्धिक भी हैं, यहाँ एक संदर्भ में मिलता है जो संतोष के संगीत एवं जलतरंग प्रेम की ओर बारीक सा इशारा है।

संतोष की कहानियाँ लम्बी हैं मगर लम्बाई ऊबाऊ नहीं है। काफ़्का ने मेटामारफोसिस, जजमेण्ट, ए कंट्री डॉक्टर, ए हंगर आर्टिस्ट जैसी कहानियाँ कितनी लम्बी लिखीं हैं लेकिन कहानी के अंदर कहानियों का एक नया प्रयोग ऐसा किया है कि एक कहानी में अनेक लघुकथाओं को पढ़ने का आनंद आ जाता है। संतोष की सभी सात कहानियाँ लम्बी अवश्य हैं, मगर उन्होंने काफ़्का की नकल नहीं की है। प्रथम कहानी 'मगर, शेक्सपीयर को याद रखना' में एक सेलिब्रिटी रंगधर्मी-निर्देशक के अहंकार को खंडित किया गया है। नरेन्द्र नाम का पात्र जब अरुणा से कहता है "अरूणा तुम इरफान साहब के कलात्मक क़द के साथ उनके व्यवहार का तालमेल नहीं देख पा रही, तुम उनमें सुपर-ह्यूम या महामानव देखना चाहती हो" आगे संतोष कहते हैं- "साथी लेखकों की विसंगतियों को तुम झेल सकते हो पर कलात्मक ऊँचाई प्राप्त कर लेने वाले नाट्य-निर्देशक को नहीं।" वैसे ये वाक्य अपने बाह्य अर्थ में प्रशंसा लगते हैं मगर उनके आंतरिक अर्थ में वह व्यंग्य है जो अहंकार पर आक्रमण भी है। इसे अंग्रेज़ी में सारकेज़्म भी कहा जाता है।

'रामकुमार के जीवन का एक दिन' अनेक यथार्थों के साथ जहाँ पर्यावरण-परिवेश संवेदी है वही संतोष के अन्दर फेस रीडिंग का कौशल भी प्रकट करता है जिसकी छवि लड़की की नाक के साथ जुड़े मनोविज्ञान में नज़र आती है। ज्ञान-विज्ञान और मनोविज्ञान की यह कहानी एक प्रकार का निजत्व भी प्रकट करती हैं। 'रेस्त्रां में दोपहर' युवा जीवन के सामूहिक आह्लाद की कथा है जो रेस्त्रां में प्रकट होता है। क्या ऐसा हम कई बार कॉफी हाउस में बैठ कर सोचते और कहते नहीं हैं? 'लेखक बनाने वाले' एक नया विषय रचती है। कई तरह के फ्रॉड में से एक युवा लेखकों का इमोशनल एक्सप्लाइटेशन कैसे किया जा सकता है, उसको यह कहानी इस प्रकार खोलती है जैसे लेखक बनाने की दुकान शादियों के जोड़े बनाने बेचने वालों की दुकानों के समान होती हैं। विज्ञापन युग में प्रतिभा का यह बाज़ार कितना विडंबनापूर्ण है।

'ग़रीबनवाज़' तो एक सुन्दर कहानी है जो व्यक्ति, संस्था, प्रशासन, पुलिस, जातिगत सम्प्रदाय, अल्पसंख्यक, और राजनीति सभी के छद्‌म को उजागर करती है। यथार्थ के अन्दर के यथार्थ को संतोष ने अत्यन्त साहस और सत्य के साथ व्यक्त किया है। "नौ बिन्दुओं का खेल" एक प्रकार से तकनीकी कहानी है। ऐसा लगता है इसमें कथाकार का ज्योतिष ज्ञान, गणित, अंकज्योतिष विज्ञान, मनोविज्ञान आदि सर्जन बन कर याद दिला देते हैं एच. जी. वेल्स और एसीमोव की कहानियों की। ये कहानियाँ एच. जी. वेल्स, एसीमोव के साइंटिफिक रोमांस सा रोमांच की कहानी न होकर कथाकार के अपने शिल्प की ईजाद की कहानी है। यद्यपि इसे हम साइंटिफिक-रोमांस तो नहीं कह सकते मगर इस प्रकार के डायग्रेमेटिक (रेखाचित्र) प्रस्तुत करने का ढंग ऐसा जगा जैसा प्रयोग अम्बर्तो एको ने फूफोस पेण्डुलम में किया है।

सतह पर तैरती उदासी उस समस्या पर है जो रोज़गार विहीनता और मिलों के बंद हो जाने पर मालिकों के व्यवहार आदि पर केन्द्रित है। ऐसा लगता है जैसे कथाकार पुराने ज़माने के इंटक-आंदोलन का स्मरण करवा रहा हो। मज़दूर, नेता, छोटे होटल जैसा व्यवसाय करने वाले, कलाकार, रंगकर्मी, निर्देशक, आदि किस- किस प्रकार के सिनिसिज़्म में पलते हैं, इसको उजागर किया है संतोष ने। यह कहानी श्रमिक-मालिक संबंधों के संवेदन से बनी है और उदासी का मनोविज्ञान रोज़गार से जोड़ती है।

सभी कहानियों के अंश देना संभव नहीं है क्योंकि ऐसा करने पर कहानी की समीक्षा, अपने आकलन से भटक जाती। इस कथा संग्रह को पढ़कर दो बातों पर ध्यान जाता है कि कथाकार का रचनात्मक-संवेदन एक तरफ सहानुभूति का आंतरिक मनोभाव है तो दूसरी ओर यथार्थ के तथाकथित संसार के छद्‌म को भी प्रकट करता है। संतोष चूँकि एक तकनीकी वैज्ञानिक, शिक्षाविद, संगीतविद और एक्टीविस्ट भी हैं इसलिए उनका व्यापक दृष्टिकोण तो जनोन्मुखी है लेकिन वे उसकी जड़ता को खंडित कर एक प्रकार की निर्भावुक निरपेक्षता भी अपनाते हैं। इसलिए ये सातों कहानियों केवल कहानी की तरह नहीं बल्कि उनके आंतरिक विचार-सूत्रों और मानवीय दर्शन के साथ पढ़ने को आमंत्रित करती हैं। यदि संतोष अधिक संश्लिष्ट होते तो लंबाई तो कम हो सकती थी मगर उससे शायद विवरण की पर्तें छोटी हो जाती। कहानी में भाषा की कृत्रिम सजावट न होकर विषय की अनुकूलता पर विशेष ध्यान दिया गया तो है फिर भी जहाँ भी अवसर मिला लेखक ने काव्य-भाषा और प्रकृति-संवेदी भाषा का अच्छा प्रयोग कर कहानी के अंदर कहीं उबाऊपन न आ जाए, इसका भी ध्यान रखा है।

ये कहानियाँ धैर्य के साथ पढ़कर विचार के लिए भी उकसाती हैं। संतोष के पास विज्ञान, कला, साहित्य, शिक्षा से बना एक सुंदर आयाम है, अगर वे अपने इन अनुभवों को कथा बनाएँ तो संतोष हिन्दी में वैज्ञानिक-कथाकार के रूप में स्थापित हो सकते हैं। दूसरा उन्हें थोड़ा विचारधारा के आग्रह से मुक्त होकर कथा में यथार्थ का जो अनुभव उनके पास है, उसे कलात्मक उत्कर्ष देने का जो माद्‌दा है उसे भी आज़माना चाहिए। वे एक बहुगुणी, बहुवचनीय कथाकार हैं, इसलिए उनसे अपेक्षा है कि वे हिन्दी कथा में एक नई ज़मीन का विज्ञान-सम्मत उत्खनन करेंगे।

000

पुस्तक समीक्षा

(कहानी संकलन)

अम्लघात

समीक्षक : प्रो.अवध किशोर प्रसाद

संपादक : सुधा ओम ढींगरा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

प्रो. अवध किशोर प्रसाद
द्वारा- कुमार राजेश, सी.ए.ओ
सी.आई.ए.ई. नबी बाग़
बैरसिया रोड, भोपाल (एम.पी.) 462038
मोबाइल– 9599794129

शिवना प्रकाशन, सीहोर से सुधा ओम ढींगरा के संपादन में 'अम्लघात' कहानी संकलन का प्रकाशन हुआ है। इसमें बीस कहानियाँ संकलित हैं। इन कहानियों का प्रतिपाद्य अम्लघात से पीड़ित युवक- युवतियों, जिनमें युवतियों की संख्या अधिक युवकों की संख्या कम है, की दर्द भरी दास्तान का विवरण है। इनमें असफल प्रेम, ईर्ष्या–द्वेष, प्रतिशोध आदि के कारण अम्ल डालकर चेहरे में विकृति पैदा कर अपना प्रतिशोध लेना है। इन कहानियों को संकलित करने एवं इस संकलन को प्रकाशित करने के पीछे अपने उद्देश्य को संपादक ने निम्न शब्दों में व्यक्त किया है- "विदेशों में तो एसिड अटैक की रोकथाम के लिए क़ानून सख़्ती से पालन कर रहा है, ज़रूरत है देश में अम्लघात की घटनाओं की रोक थाम के लिए कदम बढ़ाने की, महिलाओं को जाग्रत करने की। उम्मीद करती हूँ यह कहानी संग्रह अम्लघात से पीड़ित नारियों के दर्द, वेदना, तड़प को पाठकों तक पहुँचा पाने में सफल होगा और घटनाओं की रोकथाम की ओर सोचने का एक कदम भी।"(पृष्ठ -12)

संकलन की पहली कहानी उषा किरण खान की 'आओ री सखी सब मंगल गाओ री' में अपराध कोई करता है, प्रायश्चित कोई करता है। स्कूल जाती लड़कियों से छेड़खानी करने वाले लड़कों में से बंटी नामक लड़के को रेखा नाम की लड़की थप्पड़ मार देती है, प्रतिक्रया स्वरूप वह रेखा पर तेज़ाब छिड़क देता है। चूँकि वह तेज़ाब मुरगन नामक लड़के की दूकान से ख़रीदी जाती है और वह पुलिस के समक्ष इसका खुलासा नहीं करता है, इसलिए वह अपराधबोध की भावना से ग्रस्त रहता है। वह रेखा से विवाह करने का प्रस्ताव देता है और रेखा के जीवन में आशा की किरण बनकर अपने अपराधबोध के भाव से मुक्त होना चाहता है। कहानी का शीर्षक कहानी को रोचक बना देता है। कादम्बरी मेहरा की 'मेरा दिल मेरा चेहरा' में कंचन के जीवन की दर्द भरी व्यथा का चित्रण किया गया है। कंचन अपनी ही ताई शीला की ईर्ष्या का शिकार होती है। उसकी ताई गुंडों के द्वारा उसपर तेज़ाब छिड़कवाती है। किन्तु पिता और भाई की मदद से उसका इलाज होता है और वह फिर से जीवन जीना सीख लेती है। वह अपनी सहेली इन्द्रेश से कहती है- "इन्द्रेश, मेरा आईना अपना सच बोलता है, मगर मेरा दिल अपना। इस चेहरे के पीछे मैं वही कंचन हूँ।" (पृष्ठ-28)। गीताश्री की 'उनकी महफ़िल से हम उठ तो आये' में पितृसत्तात्मक मानसिकता से ग्रसित एक आदमी अपनी पत्नी चरखी पर अत्याचार करता है, जब वह तंग आकर पति से तलाक़ लेना चाहती है, तो उसका पति उस पर तेज़ाब छिड़ककर भाग जाता है। जवाहर लाल नेहरु विश्वविद्यालय में रिसर्च करने आया छपरा का एक लड़का अजय उसके प्रति पहले सहानुभूति व्यक्त करता है, फिर प्यार और अंत में शादी करने को तैयार हो जाता है। उसकी माँ पहले तो तैयार नहीं होती है, किन्तु चरखी के पत्र से प्रभावित होकर शादी की अनुमति प्रदान कर देती है। कहानी का विकासक्रम बेजोड़, अंत बड़ा ही रोमांचक और मार्मिक है। रेणु वर्मा की 'छीटों की चीखें' भी अम्लघात की ऐसी ही कहानी है। इसमें पति केशव सिर्फ शक के कारण अपनी पत्नी नंदिता पर गुंडों के द्वारा तेज़ाब छिड़कवाता है, जिससे उसकी मृत्यु हो जाती है। किन्तु बाद में वह अपराधबोध की भावना से ग्रसित होकर फाँसी लगाकर स्वयं भी मृत्यु को वरण कर लेता है। आकांक्षा पारे काशिव की 'पिघली हुई लड़की' अपराधबोध की कहानी है। कहानी के केन्द्र में राखी और रति दो सहेलियाँ हैं, जो एक ही स्कूल में पढ़ती हैं और एक ही घर में रहती भी हैं। किसी लड़के के विवाह के प्रस्ताव को जब रति थप्पड़ मारते हुए अस्वीकार कर देती है, तो वह लड़का रति के चेहरे पर तेज़ाब छिड़क देता है। उस लड़के को

जानते हुए भी राखी उसका नाम नहीं बतलाती है, जिससे वह अपराधबोध से ग्रसित रहती है। किन्तु रति के व्यवहार से वह आश्वस्त होती है और उसके अपराध बोध की भावना गलित हो जाती है।

कहा जाता है कि जब किसी औरत का प्रणय निवेदन किसी पुरुष के द्वारा ठुकरा दिया जाता है,तो औरत नागिन की तरह फन फैलाकर फुँफकार उठती है, जिसका दंश पुरुष झेल नहीं सकता है। रजनी मोरवाल की कहानी 'बलेड़ी औरत' में इसके विपरीत कॉलेज जाती प्रज्ञा नाम की लड़की द्वारा किसी लड़के के प्रेम को ठुकरा दिए जाने पर लड़का उस पर तेज़ाब डालकर अपना आक्रोश व्यक्त करता है। कहानी की संरचना अच्छी है। अंत में कथाकार ने समाज के यथार्थ को कविता की कुछ पंक्तियों द्वारा व्यक्त किया है। 'अँधेरे' विकेश निझावन की कथावाचन की शैली में लिखी गई एक मनोरंजक कहानी है। इसमें कथावाचक की तरह पाठक की जिज्ञासा भी बनी रहती है कि कॉलोनी में किस मृत जानवर की दुर्गन्ध आ रही है। वस्तुत: यह दुर्गन्ध कथावाचक की पत्नी के मृत शरीर की थी, जिसे किसी ने तेज़ाब से जलाकर यहाँ फेंक दिया था और स्वयं भाग गया था। इसका खुलासा कहानी के अंत में होता है। कहानी का अंत बड़ा ही विस्मयकारी है।

अम्लघात का शिकार प्राय: प्रेम को ठुकराने वाली लड़कियाँ होती हैं। किन्तु अरुण अर्णव खरे की कहानी 'कितना सहोगी आनंदिता' में दोस्त के प्रति उत्पन्न ईर्ष्या भाव के कारण उसकी प्रेमिका को अम्लघात का दंश झेलना पड़ता है। इस कहानी में शेखर अग्निहोत्री एवं प्रशांत इंजीनियरिंग की पढ़ाई के दौरान होस्टल के एक कमरे में रहते हैं। शेखर तेज़, मेधावी और अनुशासन प्रिय है, जबकि प्रशांत उद्दंड, अक्खड़ और ईर्ष्यालु है। वह शेखर की प्रगति पर घोर ईर्ष्या का भाव रखता है। जब शेखर का कैम्पस सेलेक्शन हो जाता और उसे आनंदिता जैसी सुन्दरी प्रेमिका मिल जाती है, तो वह जलभुन उठता है और मौका पाकर आनंदिता पर तेज़ाब छिड़क कर अपने ईर्ष्या भाव को शमित करता है। इस छोटे से प्लॉट की नींव पर कथाकार ने एक भव्य और ख़ूबसूरत कहानी की इमारत खड़ी की है। कहानी का प्रारम्भ प्रणव के बारह वर्षीय पुत्र 'प्रथम' के कथन- "पापा सी देयर हाउ स्केरी इज दैट आंटी" और अंत प्रणव द्वारा अपराध के क़ुबूलनामे पर आनंदिता के हिदायत भरे कथन - "रो लीजिये, मन हल्का हो जाएगा। पर आपको मेरी कसम, प्रथम और रागिनी भाभी से कुछ मत कहिएगा, वे ज़िंदगी भर इस सदमे से उबर नहीं पाएँगे।" (पृष्ठ-88) से होता है। सब कुछ मार्मिक, मर्मान्तक और मन को छू लेने वाला है। कहानी में घटनाओं की सिलसिलेवार प्रस्तुति एवं तथ्यों के सम्यक समायोजन से कहानी आकर्षक और रोचक हो गई है। हर्षबाला शर्मा की कहानी 'और चाँद काला हो गया' में बदले की भावना से शैलेश की प्रेमिका रूही पर उसे छेड़ने वाले फोरमेन के द्वारा तेज़ाब छिड़का जाता है। शैलेश फेमस होने की मंशा से रूही को छेड़ने वाले फोरमेन को पिटवा देता है और फोरमेन रूही के चेहरे पर तेज़ाब छिड़क कर अपना बदला लेता है। शैलेश की महत्त्वाकांक्षा की अग्नि में रूही का जीवन झुलस जाता है और "चाँद सदा के लिए काला हो जाता है।" कहानी का अंत दर्दनाक है। रेनू यादव की कहानी 'मुँह झौंसी' में अम्लघात पीड़िता रूपा के चरित्रांकन के माध्यम से कथाकार ने भारत के प्राचीन गाँव और गाँव में रहने वाली स्त्रियों के दर्दनाक जीवन का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है। इस लम्बी कहानी में कथाकार ने नारी जीवन की परवशता, अपने ही परिवार के बड़ों द्वारा यौन शोषण एवं पुरुषवर्चस्ववादी समाज में उसकी आवाज़ की निरर्थकता के साथ-साथ कथानायिका रूपा उर्फ़ एसिड अटैक की मारी मुँहझौंसी के शंखनाद के स्वर से नारी संघर्ष एवं नारी आत्मोथान का बड़ा ही सटीक चित्रण किया है। डॉ. ऋतु भनोट की 'पिजड़े की चिड़ियाँ' एक सम्वेदनात्मक कहानी है। इसमें अम्लघात पीड़ित नारियों को आश्रय देने के लिए 'अपना घर' नामक संस्था संचालित करने वाली बड़ी दीदी द्वारा साक्षात्कारकर्ता के प्रश्न में दिए उत्तर के माध्यम से कथाकार ने सामाजिक सच का उद्‌घाटन किया है। कहानी का शीर्षक 'पिंजड़े की चिड़ियाँ' कथानक के अनुरूप होने के कारण अपनी अर्थवत्ता सिद्ध करता है। डॉ. निरुपमा राय की 'अग्निस्नान' शीर्षक कहानी में ईर्ष्या भाव के कारण एसिड अटैक की घटना घटती है। विशाल सुरभि के समक्ष प्रेम विवाह का प्रस्ताव रखता है, जिसे वह समीर से प्रेम करने की बात कहकर अस्वीकार कर देती है। ईर्ष्या भाव से ग्रसित होकर विशाल समीर पर एसिड वार कर देता है। फिर भी सुरभि समीर का इंतज़ार करती है, बाद में दोनों मिलते हैं और उनका जीवन मानों अग्नि स्नान कर हरा-भरा हो जता है। इस कहानी में कथाकार ने आत्मिक प्रेम,मानसिक अंतर्द्वंद्व, उत्पीड़न एवं मित्र द्वारा विश्वासघात आदि भावों का मार्मिक विवरण प्रस्तुत किया है। 'मुझे माफ़ कर दो' राधेश्याम भारती की एक सकारात्मक सोच की कहानी है। इस कहानी में लड़की द्वारा प्रणय निवेदन ठुकरा दिए जाने पर लड़का किसी दूसरे लड़के को पैसे देकर लड़की पर एसिड अटैक करवाना चाहता है। किन्तु वह लड़का ऐसा नहीं करके उसके पैसे भी लौटा देता है और उसके प्रेम को वासना की संज्ञा देकर उसके प्रेम की धज्जियाँ उड़ा देता है। रोचिका अरुण शर्मा की 'परी हो तुम' में राहुल के सच्चे प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है। राहुल अपनी प्रेमिका के एसिड अटैक से क्षत-विक्षत शरीर से नहीं, बल्कि उसकी आत्मा से प्रेम करता है। वह उसे अमेरिका ले जाकर उसका इलाज करवाता है, उसे सौन्दर्य प्रतयोगिता में भाग लेने के लिए सन्नद्ध करता है और वह प्रतियोगिता जीत जाती है। माता के विवाह के लिए दिए गए दबाव पर वह कहता है- "माँ, आपकी बहू को लेकर आ रहा हूँ।" प्रत्युत्तर में उसकी माँ का कथन- "हाँ बेटा,तुम प्रेम की परिभाषा हो।" कहानी को मार्मिक बना देता है। सुबोध कुमार गोविल ने भावाभिव्यक्ति की नवीन शैली का प्रयोग करते हुए 'खिलते पत्थर ' शीर्षक कहानी में एक कामवाली द्वारा अपनी मालकिन सुष्मिता पर एसिड छिड़ककर भाग जाने की सांकेतिक सूचना दी है। इस कहानी में एसिड अटैक के प्रयोजन का कोई संकेत नहीं है।

"कई बार ऐसा होता है कि मनुष्य की चेतना से मिटी कोई स्मृति उसकी अचेतन अवस्था में जस की तस ठहरी हुई होती है और मनुष्य जब कभी नींद या बेहोशी की हालत में होता है, वे उस पर हावी हो जाती हैं। उसे मस्तिष्क नकारने की भरसक कोशिश करता है परन्तु हृदय उसे नकारने नहीं देता है। पूनम मनु की 'खंडित' शीर्षक कहानी इसी मनोवैज्ञानिक सत्य को उजागर करती है। अपनी सहेली नंदिता पर होने वाले एसिड अटैक को ऋतु भूल नहीं पाती है और रात में नींद से उठकर नंदू नंदू चिल्लाने लगती है। ऋतु के पति सुभाष अपनी दोनों बेटियों के साथ परेशान हो जाते हैं। कथाकार कहानी के अंत में ऋतु के चिल्लाने के कारण का खुलासा उसी के स्वर में करती है। अम्लघात की इस कहानी में अवचेतन मन की अवधारणा की अभिव्यक्ति हुई है। सत्या शर्मा 'कीर्ति' की 'सफ़र अब भी जारी है' आत्मकथात्मक शैली में लिखी गई अम्लघात की एक रोचक कहानी है। इसमें कथावाचक एक लेखक है, जो अपनी कहानी के लिए नए कथानकों, नए विषयों और नए पात्रों की तलाश में सफ़र पर निकल जाता है। ट्रेन की लम्बी यात्रा में उसकी मुलाक़ात एक एसिड पीड़िता से होती है। वह सहयात्री उसकी सुप्तावस्था में अपनी बर्थ पर एक पर्स छोड़ जाती है, जिसमें रखी तस्वीर और उसके पीछे लिखे- 'अपनी पुरानी यादों की अंतिम कड़ी भी आज छोड़कर जा रही हूँ' से उसे ज्ञात होता है कि उसके साथ ट्रेन की लम्बी यात्रा की एसिड पीड़िता सुभि वास्तव में उसकी वाल्यावस्था की प्रेमिका अपराजिता थी। कथावाचक संवेदनशील हो जाता है। इस कहानी में भारतीय जीवन के यथार्थवादी सत्य, मानवीय सम्वेदना को बड़ी ही बारीकी एवं स्वाभाविकता के साथ अभिव्यक्त किया गया है।

बच्चे संवेदनशील होते हैं। कभी-कभी किसी घटना का चाक्षुश बिम्ब उनकी आत्मा में इस तरह अंकित हो जाता है कि वे उसे जीवन पर्यंत भूल नहीं पाते हैं। डॉ. लता अग्रवाल की 'रिसन' शीर्षक कहानी में हृतेश अपनी पत्नी के साथ हमेशा अमानवीय व्यवहार करता है और इसी क्रम में वह उस पर तेज़ाब डालकर भाग जाता है और फिर लौटकर नहीं आता है। चूँकि उसकी पुत्री राम्या उस दर्दनाक घटना की प्रत्यक्ष दर्शिका थी, उसके मन-मस्तिष्क पर इतना गहरा असर होता है कि उसे समस्त मर्द जाति से नफ़रत हो जाती है। बड़ी होकर वह सॉफ्टवेयर इंजीनियर हो जाने के बाद भी माँ की समझाइश "दुनिया में सभी इन्सान तेरे पिता की तरह नहीं हैं, वो तो असामान्य आदमी था; उसके सीने में शायद दिल ही नहीं बनाया था भगवान् ने। एक ऐसे इन्सान के कारण पूरी पुरुष कौम को तो नहीं नकार सकते न...ऐसा होता तो दुनिया कैसे चलती...?"(पृष्ठ-198) को नकारकर माँ के बार-बार के आग्रह के बाद भी विवाह करने के लिए तैयार नहीं होती है। एक पीढ़ी का दंश दूसरी पीढ़ी को झेलना पड़ता है। 'एक शब्द औषधि करे.....एक शब्द करे घाव' ज्योति जैन की दोस्ती की मिसाल कायम करती अम्लघात की मर्मस्पर्शी कहानी है। उषा और संध्या की दोस्ती पर कॉलेज के ईर्ष्यालु छात्रों में से कोई उन पर एसिड डाल देता है। टार्गेट पर उषा रहती है,पर शिकार संध्या हो जाती है। फिर भी दोनों की दोस्ती में ख़लल पैदा नहीं होता है, बल्कि उनकी दोस्ती और भी मज़बूत हो जाती है। तभी तो संध्या कहती है- "यदि ये बला मेरे फ्रेंड की थी, जो मुझ पर आई,तो मुझे खुशी है ....मैं कमज़ोर नहीं हूँ मैम, होना भी नहीं चाहती और होऊँगी भी नहीं .....क्योंकि उषा जैसी दोस्त मेरे पास है, मेरे साथ है।"(पृष्ठ-93)। इस कहानी में एसिड अटैक के बाद मीडिया, सोशल मीडिया, महिला संगठनों, पुलिस प्रशासन, राजनीतिक पार्टियों की भूमिका और उनके शर्मनाक हथकंडों पर एसिड अटैक की शिकार संध्या के माध्यम से सवाल उठाये गए हैं तथा संध्या की पीड़ा, बेचैनी एवं त्रासदी का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

संकलन की कहानियों के प्रतिपाद्य से परे आनंद कृष्ण की 'फ्रीज़'आत्मकथात्मक शैली में लिखी गई एक व्यक्ति के मानसिक अंतर्द्वंद्व की कहानी है। इसमें एक ओर एक ऐसे टूटे हुए व्यक्ति की मनोदशा का चित्रण हुआ है, जिसमें आत्मविश्वास की कमी है, तो दूसरी ओर एक ऐसी युवती का चित्रण किया गया है, जो साहसी और आत्मविश्वास से परिपूर्ण है। कहानी में न कोई थीम है न कोई प्लाट। बस, एक उलझन भरे दिमाग़ का अविरल चिंतन।

संकलन की सारी कहानियाँ संवेदनशील हैं। पाठकों में संवेदना जगाती हैं तथा नफ़रत, वहशीपन, बदले की भावना जैसी हिंसक वृत्तियों का विरोध करते हुए अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए प्रेरित करती हैं, विशेषकर समाज की बहुसंख्यक असहाय, निराश्रित और कमज़ोर स्त्रियों की सुरक्षा के लिए उठ खड़े होने का आह्वान करती हैं। कहानी की अम्लघात पीड़ित नारी पात्र अपने भीतर की जज़्बाती शक्ति को खोती नहीं है, बल्कि कठिनाइयों से संघर्ष करती है और फिर से उठकर अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सन्नद्ध हो जाती है।

''मेरा दिल मेरा चेहरा' की कंचन, 'मुँहझौंसी' की रूपा, 'अग्नि स्नान' की सुरभि, 'एक शब्द औषधि करे ....एक शब्द करे घाव' की संध्या; सब की सब जिजीविषु हैं। एसिड अटैक के बाद शरीर से क्षत - विक्षत हो जाने के बाद भी उनका मन और उनकी आत्माएँ जीवंत रहती हैं। 'रिसन' की कथावाचिका अपनी सरकारी स्कूल की नौकरी पर मुस्तैद हो जाती है। इन पीड़ित नारियों की सहायता और सुरक्षा में पुरुष पात्र भी पीछे नहीं रहते हैं। 'कितना सहोगी आनंदिता' का शेखर, 'परी हो तुम' का राहुल, 'आओ री सखी मंगल गाओ री' का मुरगन या 'उनकी महफ़िल से हम उठ तो आये' का रिसर्च करने वाला छात्र अपने कर्त्तव्य बोध से परिचालित दीखते हैं। अपनी प्रेमिका के लिए उनमें अदम्य उत्साह, अनन्य प्यार और अद्‌भुत सहनशीलता है।

संकलन की कहानियाँ समाज और साहित्य की जीती –जागती प्रतिमाएँ हैं। आज के मानवतावादी मूल्यों के ह्रास के युग में इन कहानियों को एक स्थल पर एकत्रित कर संपादिका ने एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

000

(उपन्यास)

थोड़ा-सा खुला आसमान

समीक्षक : उमाशंकर सिंह परमार

लेखक : डॉ. रामकठिन सिंह

प्रकाशक : लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

उमाशंकर सिंह परमार
बबेरू, बाँदा,
उप्र 210121
मो-9838610776

पिछली सदी मार्क्सवाद के राजनैतिक ख़ात्मे के शोर-शराबे की सदी है। विभिन्न देशों में मार्क्सवादी व्यवस्था एवं सत्ता की पाबंदियों के विरुद्ध जिस तरह का वर्ग खड़ा हुआ, वह ज़रूरी नहीं कि अमेरिका नियन्त्रित पूँजीवाद का एजेण्ट रहा है। और वह मार्क्सवाद की सामाजिक, लोककल्याणकारी योजनाओं के ख़िलाफ़ रहा हो, लेकिन यह तय है कि वह लोकतान्त्रिक मूल्यों का समर्थक वर्ग अवश्य रहा है। यह वर्ग एक नई चेतना और ऊर्जा के साथ जनता द्वारा जनता के लिए जनता द्वारा शासित राज्य का पक्षधर था। समूचा विश्व जब उपनिवेशवाद से जूझ रहा था, तब भी यही सोच थी और अब भी आम चिन्तनधारा यही है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अमेरिकी पूँजीवाद एवं रूसी मार्क्सवाद के आधिपत्य से ऐसे देश अवमुक्त हुए, तब भी यही कारण थे। इस नए सिलसिले में ध्यान देने योग्य बात यह है कि सोवियत संघ के बिखराव और उसके अन्तरराष्ट्रीय प्रभावों पर चर्चा होने लगी। जिन देशों में राजनैतिक चर्चाओं व सूचनाओं का आदान-प्रदान राष्ट्रद्रोह था, उन देशों के नागरिक भी इस बिखराव को विवेचित करना प्रारम्भ कर दिये। नई पीढ़ी के लिए पुरानी समस्याएँ बोझ की तरह लगीं। इसलिए उन्होंने नए समय को अपने नए सवालातों के साथ हल करने के लिए अपने समय की ताक़त का प्रयोग किया। इस विवेचना के लिए इस पीढ़ी ने राजनैतिक-सामाजिक-आर्थिक-वैश्विक बदलावों को संज्ञान में लिया। अपने समय के राजनैतिक-सामाजिक आन्दोलनों की भी गहरी शिनाख़्त की। वरिष्ठ कृषि-वैज्ञानिक, कथाकार, लेखक, कवि, संपादक रामकठिन सिंह का नया उपन्यास 'थोड़ा-सा खुला आसमान' सोवियत संघ व कथित कम्युनिस्ट-राज्यों के विघटन तथा वैश्विक परिवर्तनों पर नई पीढ़ी के अन्तर्विरोधों व मानवीय जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों की तार्किक पड़ताल करता है। विषय सोवियत संघ नहीं है, जर्मनी का एकीकरण है। जर्मनी का विभाजन द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद हो गया था। इस उपन्यास में लेखक ने जर्मनी के नात्सी उभार पर हिटलर की 'माइन काम्फ' तथा ऐतिहासिक तथ्यों का साक्ष्य देते हुए सिलसिलेवार फासीवादी राज्य की तथा विश्व युद्ध के शुरूआत की विवेचना की है। लेखक ने हिटलर का उत्थान आर्थिक मन्दी को माना है। यह सच भी है, किसी देश में जब आर्थिक मन्दी आती है, तो जनता राजनैतिक बदलाव की माँग करती है। ऐसे संकट के समय राष्ट्रवाद व अन्धराष्ट्रवाद, जातीयता, धार्मिक उन्माद को नई ज़मीन प्राप्त होती है। ऐसा ही हिटलर के साथ हुआ। विश्वयुद्ध के उपरान्त अमेरिका के नेतृत्व में पूँजीवादी केन्द्रिकता तथा सोवियत संघ के नेतृत्व में साम्यवादी केन्द्रिकता का उद्‌भव हुआ और पराजित देशों को इन दो ध्रुवों में किसी एक को

अंगीकार करना था। जर्मनी का विभाजन हुआ। लेखक के मतानुसार पश्चिमी और पूर्वी जर्मनी दो भाग मुख्य थे और मूल कथा में अधिकांश इन्ही दोनों की चर्चा है। दोनों भागों में राजनैतिक और आर्थिक रूप से भारी अन्तर था। इस अन्तर का उल्लेख करते हुए लेखक मिनिस्टर साहब के वक्तव्य को उद्धृत करता है, 'बड़े दुर्भाग्य की बात है, जहाँ हमारे देश के पश्चिमी हिस्से में कई नगर और बर्लिन के मेट्रोपोलिटन क्षेत्र तेज़ी से फल-फूल रहे हैं, वहीं पूर्वी जर्मनी की बडी पट्टियाँ निर्जन होती जा रही हैं। 'यह वक्तव्य प्रकट कर देता है कि पूर्वी जर्मनी जो कम्युनिस्ट-व्यवस्था का अनुकर्ता था, उसकी हालत ठीक नही थी। बेरोज़गारी, भुखमरी, विकास न होना, शासन के प्रतिबन्ध, विचारने और अभिव्यक्ति की आजादी वहाँ न के बराबर थी, जिसके कारण लोगों का पलायन हुआ। जनता पूर्वी जर्मनी से पश्चिमी जर्मनी की ओर पलायन कर रही थी।

इस उपन्यास का विषय जर्मनी एकीकरण के कारणों एवं उसके व्यापक प्रभावों का विश्लेषण है, जिसका लेखक ने बड़ी साफगोई से तथ्यपरक विवेचन किया है। तथ्यपरक इसलिए कि लेखक यहाँ स्वयं एक चरित्र के रूप में उपस्थित है। कथा में उपस्थित लेखक का अध्ययन यथार्थ व विश्वसनीय होता है। इस उपन्यास में लेखक अपने समूचे अस्तित्व व अपनी पहचान के साथ उपस्थित है। वह समूची कथा में स्वयं को निर्लिप्त रखते हुए एक सूत्रधार की तरह गति व प्रवाह को कायम रख चरम तक ले जाता है। पाठक को भटकाव का शिकार नहीं होने देता है। लेखक चाहता तो उपन्यास को 'मिथ' में बदलकर इसे कथा का स्वरूप दे सकता था, लेकिन ऐसा उसने नहीं किया है। 'मिथ' में बदलने के अपने जोखिम हैं। लेखक या तो उदारवादी होता या फिर मार्क्सवादी। जाहिर है, यदि लेखक किसी एक पक्ष का पक्षधर होता या किसी पक्ष को अंगीकार करता तो उनके लेखक की निस्संग व्याख्या, अध्ययन सम्भव न होता और इस उपन्यास की भी राजनैतिक व्याख्या होने लगती। यह कहना चाहूँगा की बड़ी चतुराई से लेखक ने खुद को कथा का हिस्सा बनाकर दोनों तरह के निषेधात्मक जोखिमों से खुद को बचा लिया है।

उपन्यास का मुख्य चरित्र कमलेश्वर है। उसका मित्र आल्फ्रेड जो पूर्वी जर्मनी में रहता था, वह कम्युनिस्ट-पार्टी का राजनैतिक कार्यकर्ता था। उसकी पत्नी रिया, जो कमलेश्वर को भाई मानती थी, उसे राखी बाँधती थी, वह स्वतन्त्रता पसंद थी। वह कम्युनिस्ट-शासन के प्रतिबन्धों से असहमत थी। तीसरा चरित्र जो पाठक को बेतरह प्रभावित करता है वह है जुर्गेन। जुर्गेन कमलेश्वर के साथ पढ़ता था। जुर्गेन पूर्वी जर्मनी में लोकतन्त्र और स्वतन्त्र राष्ट्र, उन्मुक्त शोषण-विहीन व्यवस्था का समर्थक था। जुर्गेन उस युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता था जो स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुता चाहता थी। वर्ष 1989 में लाईप्सिस नामक शहर में जो बड़ा कम्युनिस्ट-विरोधी प्रदर्शन हुआ था, उसका नेतृत्व जुर्गेन कर रहा था। जुर्गेन ही अपने साथियों को लेकर बर्लिन की दीवार पर चढ़ गया था। इस दीवार को ढहाने का जो आन्दोलन हुआ था, वह भी जुर्गेन के नायकत्व में हुआ था। जुर्गेन की प्रेमिका रेनी थी, जो बड़े नेता की बेटी थी। यह आभिजात्य वर्ग सत्ता अपने हाथ में रखना चाहता था। मगर जुर्गेन के आन्दोलन से रेनी के माँ-बाप इतने रुष्ट हुए कि जुर्गेन को धोखे से ज़हर दे दिया और प्रचारित करवा दिया कि उसने आत्महत्या कर ली। बर्लिन की दीवार की टूटन ने केवल जुर्गेन की हत्या नहीं की, बल्कि रिया को भी जो दीवार टूटने के कारण पूर्वी जर्मनी शासन की फासीवादी नीतियों, यातनाओं व अराजकता से तंग आकर पश्चिमी जर्मनी भाग जाना चाहती थी और वह आल्फ्रेड को छोड़कर चली गई, वह भी पागल होकर मनोरोग चिकित्सालय में देखी गई। यह त्रासदी जुर्गेन और रिया के साथ ही नहीं हुई, बल्कि लाखों लोगों के साथ हुई। इस भीषण त्रासदी और हत्याओं के दौर की तुलना लेखक भारत-पाकिस्तान विभाजन से करता है, जिसमें लोगों का भारी पलायन हुआ था, जनसंख्या परिवर्तन हुआ था।

कमलेश्वर इस उपन्यास का सबसे आकर्षक चरित्र है। वह कृषि-शोध हेतु भारत से जर्मनी आया है। वह स्वभाव से वैज्ञानिक है। कमलेश्वर के चरित्र में तर्क और विवेक उसकी स्वाभाविकता है। वह कुशल वक्ता है, तर्क और युक्ति का अद्‌भुत प्रयोग करता है। यही कारण है कि कृषि-शोधक वैज्ञानिक जर्मन के इतिहास और वहाँ की ऐतिहासिक ग़लतियों पर भी शोध तैयार कर लेता है। उपन्यास की घटनाओं के वर्णन व निष्कर्षों में कमलेश्वर की विश्लेषण क्षमता का सीधा प्रभाव है। वह किसी चरित्र के साथ आत्मीय हो सकता है, मगर स्थाई नहीं रहता। वह आत्मीयता में भी तथ्य खोजता है। आल्फ्रेड साथी भी था, आत्मीय भी था, लेकिन रिया की त्रासदी से ऐसा प्रतीत होता है, कमलेश्वर आल्फ्रेड के प्रति उतना आत्मीय नहीं रह गया। लेकिन कमलेश्वर की सर्वाधिक आत्मीयता जुर्गेन के साथ रही। जुर्गेन को कमलेश्वर बार-बार जस्टिफाई करता है। जुर्गेन की ग़रीबी और रेनी से उसके प्रेम, उसके ज्ञान और कम्युनिस्ट यातनाओं की मुख़ालिफ़त से वह प्रभावित है। इस उपन्यास का शीर्षक भी जुर्गेन के विचारों पर आधारित है। जुर्गेन के लिए लेखक लिखता है, 'जुर्गेन एक नई क्रान्ति का नाम था। जुर्गेन नाम था खुली हवा का। एक खुले आसमान का। एक ऐसी दुनिया का जिसके भीतर सीमांकित रेखाएँ न हों। खून से खून को दूर करने वाली पत्थर की दीवारें न हों।'

जुर्गेन चाहता था, अन्य कम्युनिस्ट-मुक्त देशों की तरह पूर्वी जर्मनी भी स्वतन्त्र देश बने। लेकिन पश्चिमी जर्मनी की चली और पूर्वी जर्मनी का अस्तित्व ही समाप्त हो गया। जुर्गेन इस आघात को सह नहीं सका। कमलेश्वर की कथा कहने की और अन्वेषण की ईमानदारी उसे इस उपन्यास का सूत्रधार बना देती है। जैसा कि मैंने शुरूआत में बताया था कि लेखक ने अपने आपको उपन्यास में उपस्थित रखा है, वह सूत्रधार की तरह कथा-प्रवाह को गति देता है। अपने तथ्यों और तर्कों से पाठक को भटकने नहीं देता है। अब यदि लेखक रामकठिन सिंह और कमलेश्वर दोनों के

व्यक्तित्व का मिलान हो तो यही तथ्य है कि लेखक रामकठिन सिंह ही उपन्यास का मुख्य चरित्र कमलेश्वर है। लेखक ने खुद को कथा का हिस्सा बनाकर इस ऐतिहासिक उपन्यास को यथार्थवादी वैचारिक टकरावों की महागाथा बना दिया है। उपन्यास की मूल अन्तर्वस्तु टकराव है। जुर्गेन और आल्फ्रेड में विचारधारा का टकराव है। रिया और आल्फ्रेड में रिश्तों का टकराव है। जुर्गेन और रेनी के माँ-बाप में वर्ग का टकराव है। पूर्वी जर्मनी की सत्ता और पश्चिमी जर्मनी की सत्ता में टकराव है। पूर्वी जर्मनी के भीतर भी वैचारिक रूप से पश्चिमी जर्मनी पनप चुका था। कम्युनिस्टों की हज़ार यातनाओं के बावजूद भी पत्रिकाएँ चोरी छिपे आती थीं। लोग पढ़ते थे। यही कारण था, वहाँ सत्ता विरोध की सुगबुगाहट होने लगी थी। हिटलर के यातना शिविरों की तुलना कम्युनिस्ट-क़ैदखानों से की जाने लगी थी। लोग पश्चिमी जर्मनी जैसा खुला आसमान चाहते थे। यही कारण था, दीवार ढहने के समय और पहले भीषण पलायन हुआ और लोगों के घर-बार रिश्तेदार सब बिछड़ गए। जो विरोध में रहा, वह त्रासद मौत मरा। जो समर्थन में रहा, वह ज़िन्दा रहा। आल्फ्रेड कमलेश्वर से कहता है, कि 'यदि हमारे देश के हुक्मरान ने इसे जेल न बना दिया होता और यदि यहाँ के लोगों को अपनी मर्ज़ी से जीने रहने और सोचने की आज़ादी रही होती, तो जो कुछ यहाँ हुआ वह नहीं हुआ होता। मेरी रिया भी मेरे साथ होती।' (पृष्ठ 136)

लेखक ने किसी विचारधारा का समर्थन नहीं किया, न ही वह किसी वाद या प्रतिवाद का प्रतिसंसार रचता है। वह जुर्गेन की तरह 'थोड़ा-सा खुला आसमान' का समर्थक है, जहाँ न भौतिक देशों की समाएँ हों, मर्ज़ी से रहने और घूमने की आज़ादी हो और सब आपस में प्रेम से रहें। यह भावना हमारी भारतीय संस्कृति का मूलकथन है। लेखक अर्थात् कमलेश्वर इसकी चर्चा करता है कि हमारे देश में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की मान्यता है। लेखक ने इस उपन्यास के बहुस्तरीय संघर्षों व वैचारिक आग्रहों के पारस्परिक टकरावों के भीषण व यथार्थ में त्रासद अनुभवों से निष्कर्ष के रूप में थोड़े से खुले आसमान की पीठिका रखी है, जिसका सीधा संबंध वसुधैव कुटुम्बकम् से है।

ऐसे उपन्यास जो वैश्विक परिघटनाओं पर आधारित होते हैं, अधिकांशत: यह मान लिया जाता है कि लेखक ने केवल इतिहास पढ़कर लिखा है। इसमें कल्पना अधिक, यथार्थ कम है। उसे यूटोपिया मान लिया जाता है। जबकि उपन्यास का मुख्य तत्व यथार्थ है। वह यथार्थ के आधार पर ही अन्य विधाओं से अलग होता है। लेकिन संरचना व शैली के आधार पर रामकठिन सिंह के उपन्यास को यूटोपिया नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि जिस तरह का यथार्थवाद और स्वतन्त्रता की चेतना इसके विषय में है, उतनी ही विलक्षणता इसके शिल्प में है। यहाँ शिल्प परिदृश्यात्मक, वर्णात्मक है, तो शैली कहानी की है, जिसे कमलेश्वर किसी पाठक को सुना रहा बिल्कुल वैसे ही जैसे हमारे भारतीय समाज में क़िस्से सुनाये जाते रहे हैं। लेकिन तर्क और तथ्य की अधिकता, ऐतिहासिक रियलिज्म की मात्रा व कमलेश्वर का एक वैज्ञानिक की तरह हर एक घटना का अन्वेषण कर निष्कर्ष तक पहुँचना इस उपन्यास की संरचना को वैज्ञानिक आधार भूमि भी उपलब्ध करा देता है। लिहाजा सामाजिक व राजनैतिक घटनाक्रमों में वैज्ञानिक तर्कसंगति है। यही कला और सांस्कृतिक मूल्यों की मानवीय उद्दातता है, जो यूटोपिया नामक मिथ्या आक्षेप का विलोम है।

उपन्यास की वस्तु का तकाज़ा है कि समूची कथा 'पूर्वदीप्ति' (फ्लैश-बैक) के आधार पर चलती है। पूर्वदीप्ति में जब घटनात्मक संवाद आते हैं, तो कथा वर्तमान शैली में आ जाती है। फ्लैश-बैक में संवाद नहीं हो सकते हैं, इसके लिए वर्तमान ही उपयुक्त है। अत: पूर्वदीप्ति और वर्तमान दोनों का बेहतरीन समन्वय इस उपन्यास में प्राप्त होता है। दोनों परस्पर विरोधी कहन शैली हैं। लेकिन लेखक ने दोनों को मिलाकर ऐसा रसायन तैयार किया है जो रुचिकर भी है और प्रभावी भी। पाठक को एक ही बैठक में पढ़ने के लिए प्रेरित करने वाला है।

दूसरी बात, उपन्यास में वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक शैली का भी बख़ूबी प्रयोग है। चूँकि ये दोनों शैलियाँ क्रमश: रिपोर्ताज और निबन्धों की बहु प्रयुक्त शैलियाँ हैं, लेकिन लेखक ने दोनों का प्रयोग किया है। जब इतिहास की घटनाओं व राजनैतिक विश्लेषण का प्रसंग आता है, तो कमलेश्वर के भीतर का वैज्ञानिक सक्रिय हो जाता है, वह घटना को तर्क की कसौटी पर उचित-अनुचित, नैतिक-अनैतिक आदि पर विचार करने लगता है और जब तथ्य की बात आती है अथवा जब वह स्वयं किसी सेमिनार अथवा मुद्दे पर बात करता है, जब किसी चरित्र से मिलने जाता है, नगर के किसी चौराहे-चौक पर बात करता है, इतिहास लिखता है, तो वह वर्णनात्मक भंगिमा में आ जाता है। उपन्यास का पहला अध्याय वर्णनात्मक शैली का शानदार उदाहरण है। इस तरह विभिन्न शैलियों का अपने कथ्य के अनुरूप प्रयोग कर रामकठिन सिंह ने इस अनूठे विषय को कथात्मक स्वरूप प्रदत्त किया है। यह भी औपन्यासिक कला है। अन्यथा ऐसी विधाओं के समक्ष रिपोर्ताज बनने का ख़तरा सबसे अधिक रहता है। यह सच है, इतिहासों का लेखन आज के दौर में उतना ही आवश्यक है जितना कि साहित्य लिखना। क्योंकि साहित्य जहाँ संस्कृति का निर्माण करता है, वहीं इतिहास मनुष्य के विकसित स्वरूप के क्षण उसकी अस्मिता को प्रमाणित करता है। रामकठिन सिंह ने अपने उपन्यास के माध्यम से मानवीय संघर्षों व स्वतन्त्रता की उद्दाम लालसा को ऐतिहासिक अस्मिता बताने के लिए साहित्य को माध्यम बनाया है, क्योंकि साहित्य ही वह साधन है, जो इन भावनाओं को मानवीय स्वीकृति दे सकती है और हमारी संस्कृति का उपांग बना सकती है। लिखित और अलिखित सामग्री का ऐसा सदुपयोग तथा आधुनिक तार्किकता के साथ मनुष्य को उसकी मूल पहचान के साथ विश्लेषित करने वाला यह उपन्यास हिन्दी में एकदम नया है। और मौलिक है। यही लेखक की और उपन्यास की सार्थकता है।

000

पुस्तक समीक्षा

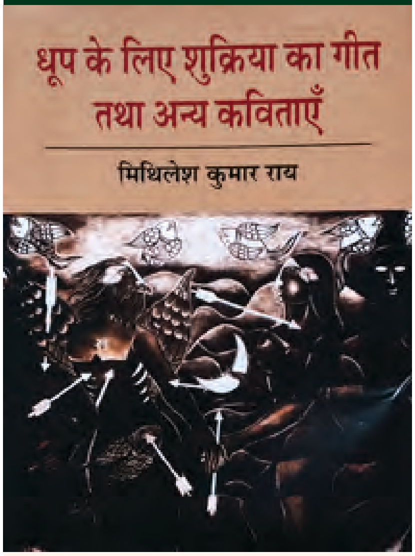

(कविता संग्रह)

धूप के लिए शुक्रिया का गीत तथा अन्य कविताएँ

समीक्षक : डॉ. नीलोत्पल रमेश

लेखक : मिथिलेश कुमार राय

प्रकाशक : अन्तिका प्रकाशन, गाजियाबाद

डॉ.नीलोत्पल रमेश
पुराना शिव मंदिर, बुध बाज़ार
गिद्दी -ए, जिला - हजारीबाग
झारखंड - 829108
मोबाइल- 09931117537,08709791120
ईमेल- neelotpalramesh@gmail.com

"'धूप के लिए शुक्रिया का गीत तथा अन्य कविताएँ' मिथिलेश कुमार राय का दूसरा कविता-संग्रह है, जो हाल में ही प्रकाशित होकर आया है। इसके पहले इनका 'ओस पसीना बारिश फूल' कविता-संग्रह प्रकाशित होकर प्रसिद्धि पा चुका है। मिथिलेश कुमार राय की कविताएँ ग्रामीण जीवन की जीवंतता का सुंदर वर्णन प्रस्तुत करने में सफल हुई हैं। आज जो चीज़ें कविता से लगभग बेदखल हो चुकी हैं, उन्हीं चीज़ों को सहेजने का कार्य इनकी कविताएँ कर रही हैं। इस संग्रह की अनेक कविताएँ उस परिवेश का आँखों देखा हाल प्रस्तुत करने में सक्षम हैं-जहाँ ग़रीबी है, भूख है, लाचारी है, बेबसी है, प्रेम है और इसके साथ-ही-साथ बहुत कुछ है। वैसे वातावरण का वर्णन सहज ही मिथिलेश कुमार राय कर देते हैं, जिनके लिए अनेक को प्रयत्न करने पड़ेंगे। सहज भाषा और बिना बनाव-सिंगार के ये कविताएँ पाठकों को अनायास ही अपनी तरफ आकर्षित कर लेती हैं और बहुत जल्द ही अपना बना लेती हैं। मदन कश्यप ने मिथिलेश कुमार राय की कविताओं के बारे में ठीक ही लिखा है कि "ग्रामीण जीवन के यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए अब तक जो भी फ्रेम हिन्दी कविता में बने या बनाए गए, ये कविताएँ उन ढाँचों या चौखटों से बाहर की कविताएँ हैं। हिन्दी में ग्रामीण जीवन के चित्रण को लेकर बनी बद्धमूल धारणाओं को और नई अवधारणाओं को विकसित करने का उपक्रम 1990 के बाद से निरंतर होता रहा है। फिर भी, मिथलेश कुमार राय की कविताओं को पढ़ते हुए एक सुखद आश्चर्य होता है कि लोक जीवन के बारे में अब तक इतना कुछ, इतना नया, इतना अनूठा और इतना मार्मिक भी, कहने को बचा रह गया था।"

मिथिलेश कुमार राय की कविताएँ लोकजीवन से इस प्रकार संगुम्फित हो गई है कि लगता ही नहीं है कि यह कहीं बाहर से लाकर आरोपित कर दिया गया हो। ये कविताएँ उस परिवेश का आँखों देखा हाल प्रस्तुत करती हैं, जो अब तक हिन्दी कविता में नहीं आ पाए हैं। इनकी कविताएँ लोग जीवन का जीवन-राग हैं, जो अब तक पाठकों के सामने आने से रह गया था।

'धूप के लिए शुक्रिया का गीत' शीर्षक कविता के माध्यम से ही मैं अपनी बात प्रारंभ करना चाहूँगा। इस कविता के माध्यम से कवि ने धूप के लिए शुक्रिया का गीत गाते हुए उन पौधों की ओर इशारा किया है, जो इससे जीवन पाते हैं और उनका बढ़ना जारी रहता है। बारिश के लिए तो शुक्रिया का गीत वे लोग गाते हैं, जो लोग काम पर देर से जाते हैं या चादर तान कर सो जाते हैं। यानी ये बारिश को हथियार की तरह इस्तेमाल करते हैं। लेकिन पौधों की खुशहाली किसान के परिवार से जुड़ी है। ये पौधे तो धूप को शुक्रिया अदा करते ही हैं, पर किसान के परिवार वाले भी धूप को शुक्रिया अदा करते हैं। कवि ने लिखा है - "मैं खेतों में जूट के पौधे की ओर देखता हूँ / वे लगातार बड़े हो रहे हैं / और मूंग में अब फूल आ रहे हैं / उनमें फलियाँ लग रही हैं / मैं मेड़ पर खड़े कंकाल को / उन्हें निहारते और मुस्कुराते हुए देखता हूँ और ऐसा सोचता हूँ /कि वे धूप के लिए शुक्रिया का कोई गीत गा रहे हैं"

'लछमी देवी उपले बढ़िया थोपती हैं' कविता के माध्यम से कवि ने ग्रामीण स्त्री के श्रम को प्रतिस्थापित किया है। इनके श्रम की ओर किसी का ध्यान ही नहीं जाता है, और न ही इनके संघर्ष की ओर, पर मिथिलेश कुमार राय की पैनी दृष्टि में लछमी देवी किसी त्याग और समर्पण की प्रतिमूर्ति से कम नहीं हैं। इसलिए इन्हें पुरस्कृत करने की बात कवि करता है। इन्हें पुरस्कृत करने का मतलब है - ग्रामीण स्त्री के श्रम को पुरस्कृत करना। वह पढ़ी-लिखी नहीं है, पर बच्चों की पढ़ाई पर पूरा ध्यान देती हैं। कवि ने लछमी देवी के बारे में लिखा है - "लछमी देवी उपले बढ़िया थोपती हैं / सम्मान के पर्चे पर इनका भी नाम चढ़ना चाहिए महोदय / लछमी देवी सानी इतना अच्छा लगाती हैं कि जब नाद खाली हो जाता है / भैंसे तभी गर्दन ऊपर करती हैं"

'चावल लेने पड़ोसी के घर दौड़तीं स्त्रियाँ' कविता के माध्यम से कवि ने गाँव में नेह-छोह को बनाए रखने में स्त्रियों की भूमिका का वर्णन किया है। ये स्त्रियाँ अपने पड़ोसी के यहाँ से कुछ चीज़ें पैंचा में माँग कर लाती हैं। इससे उनका उस परिवार के साथ प्रेम प्रगाढ़ होता है। यही प्रेम गाँव की पूँजी है, जो शहरों में ख़त्म हो गई है। शहर की स्थिति ऐसी हो गई है कि वे अगल-बगल में रहने वालों तक को नहीं पहचानते हैं। हम सहज रूप में यही जान पाते हैं कि ये स्त्रियाँ उधार माँगने जाती हैं, पर ऐसी बात नहीं है। यह तो एक परिवार से दूसरे परिवार को जोड़ने का कार्य करती हैं - चावल, नमक, चीनी, तेल के बहाने। कवि ने लिखा है -

"अदहन चढ़ाकर / चावल लेने पड़ोसी के घर दौड़ती स्त्रियाँ / दरअसल उधार के लिए नहीं दौड़तीं / न ही कर्ज के लिए दौड़ती हैं / वे स्त्रियाँ चावल नमक चीनी या तेल के बहाने / एक से दूसरे, दूसरे से तीसरे

चौथे पाँचवें छठे / और अंततः घर को घर से पिरोने वाले धागे पर / नेह चढ़ाने दौड़ती हैं"

'नींद बछिया के रंभाने के खुलती है' कविता के माध्यम से कवि ने सितमिया देवी के चरित्र का वर्णन किया है। सितमिया देवी की नींद बछिया के रंभाने से खुलती है। उसकी नींद खुलते ही वह खेतों की ओर दौड़ पड़ती हैं - बछिया के लिए चारा लाने। उसे उम्मीद है कि बछिया भूख से रंभा रही है। उसका इस तरह रंभाना, उसे नहीं सुहाता है। वह चाहती है कि दिन बड़ा हो और रात छोटी, ताकि वह दिनभर खटती रहे। इस कविता में कवि ने श्रम की गतिशीलता का मार्मिक वर्णन किया है। कवि ने लिखा है -

"सितमिया देवी जगते ही / फूल डाली लेकर फूल चुनने नहीं निकलती न वह खाने से पहले रोज़ नहाती हैं / सितमिया देवी अगरबत्ती जलाकर / नियम से अपने इष्ट को भी नहीं सुमरतीं / उनकी नींद बछिया के रंभाने से खुलती है"

'एक समाचार यह भी' कविता के माध्यम से कवि ने ग्रामीण परिवेश में बदलते परिवार को रेखांकित किया है। सास बहू की बातों से उदास होकर काम चला लेती थी, पर वह अपने बेटे के टके से जवाब से आहत होकर चूल्हा अलग जलाने लगती है। यह एक नई बयार है, जिसे कवि ने इस कविता में चित्रित किया है - "बहू बतकट्टी करती थी तो / काकी उदास होकर काम चला लेती थीं / कल बेटे ने भी टके-सा जवाब दे दिया / अभी कोई बता रहा था / कि अब काकी चूल्हा अलग जलाती हैं"

'पिता तुम ऐसे मत खाँसो" कविता के माध्यम से कवि ने पिता की उपस्थिति मात्र से अपने को मजबूत बने रहने का वर्णन किया है। पिता की छत्रछाया मात्र से घर का दुख दूर हो जाता है। पिता हैं तो पुत्र बेफिक्र है। उसे किसी चीज़ की चिंता नहीं रहती है। उनके खाँसने भर से वह डर जाता है। वह चाहता है कि उसके पिता हमेशा उसके साथ बने रहे, ताकि उसे दुख का सामना न करना पड़े। कवि ने लिखा है - "कि तुम्हारे साए में / कभी नहीं फटक सकता / मेरे अगल-बगल कोई दुख / चिंता की लकीर / और उदासी का भाव / जो मनुष्य के चेहरे को निस्तेज़ कर देता है / कभी नहीं पसर सकता तुम्हारे रहते मेरे माथे पर"

'मैं झुक कर धान काट रही थी' कविता के माध्यम से कवि ने उस बड़े किसान की मन:स्थिति का वर्णन किया है, जो मज़दूरी करती स्त्रियों का शोषण करने पर आमदा रहते हैं। काम करने वाली स्त्रियों का रसपान किसी भी रूप में वे कर लेना चाहते हैं। उनके काम में लीन हो जाने पर वे उसकी मांसलता की पड़ताल करने लगते हैं। उनका पौरुष उन पर हावी हो जाता है। उनकी हँसी मज़दूरन को अचंभित होने के लिए विवश कर देती है। कवि ने लिखा है -

"मैं झुक कर धान काट रही थी / मेड़ की तरफ आँख उठी / तो गिरहथ की नज़रें सकपका कर दूसरी तरफ मुड़ गई / तब ठहरकर मैंने अपना पल्लू सँभाला /और उसी साँस में / फिर धान कि जड़ों पर हँसिया रगेदने

लगी / उसकी हँसी में ऐसा क्या था / कि बदन सिहर उठा था"

'घर जहाँ से चूता है' कविता के माध्यम से कवि ने अभाव में गुज़र-बसर कर रहे लोगों की बेबशी का वर्णन किया है। इसमें एक ऐसी स्त्री का कवि ने जिक्र किया है जो वर्षा की बूँदों की आवाज़ के साथ-साथ छप्पर से चूते पानी की आवाज़ को भी पकड़ लेती है। वह अभाव में भी चूते पानी के लिए कोई-न-कोई बर्तन का जुगाड़ कर ही लेती है, ताकि घर में पानी पसर न सके। इस काम को करने में वह लीन हो जाती है। उसकी तल्लीनता को कवि ने बहुत ही बेहतर ढंग से प्रस्तुत किया है -

"स्त्री का यत्न हमेशा यही रहता है / कि वह उस जगह पर एक बाल्टी रख दे ताकि उसके भरने से पहले / बादल का पिघलना ख़त्म हो जाए / लेकिन घर जहाँ-जहाँ से चूता है / उन सारी जगह पर बाल्टी रखना कैसे संभव है / किस घर के पास इतनी बाल्टियाँ होती हैं / बाल्टी का काम या तो थाली / नहीं तो कटोरियों के ज़िम्मे आ जाता है"

'रोग से मरे बच्चे का पाप सबको लगे' कविता के माध्यम से कवि ने एक अज्ञात बीमारी से मारे गए बच्चों के पाप का भागी राजा से लेकर मंत्री तक को ठहराया है। इतना ही नहीं कवि ने ज्ञान-विज्ञान को भी दोषी ठहराया है। अबोध बच्चों की लगातार मृत्यु ने कवि को व्यथित कर दिया था। जिसके कारण कवि ने व्यवस्था के साथ सारे तंत्रों को इसका दोषी सिद्ध कर दिया है, क्योंकि इसमें सब की सहभागिता किसी-न-किसी रूप में रही है। कवि ने लिखा है -

"बच्चा अगर मरे रोग से / तो उसका पाप सबको लगे / किसी के होंठ पर हँसी ना उतरे / आँखें कोई खूबसूरत दृश्य न देख पाए / सबके कलेजे में हरदम एक हूक-सी उठती रहे / उनके जीवन भर की रातों की नींद / कोई प्रेत चुरा कर ले जाए"

'साधारण डाक' शीर्षक कविता के माध्यम से कवि ने डाक-व्यवस्था पर व्यंग्य किया है। साधारण डाक की कोई अहमियत नहीं है - साधारण इंसान की तरह। वहाँ की व्यवस्था एकदम अलग है। वहाँ काम करने वाले लोग ऐसी चिट्ठियों पर कोई ध्यान नहीं देते हैं, जो साधारण होती हैं। अब तो रजिस्टर्ड डाक की भी स्थिति ठीक नहीं है। ये भी महीनों बाद मिलती हैं। कवि ने बेहद मार्मिक ढंग से साधारण डाक की यथास्थिति से पाठकों को परिचित करवाया है -

"एक साधारण डाक तीन साल बाद मिली तो ऐसा लगा / कि जैसे वह किसी की क़ैद में थी / और अदालत में तारीख चल रही थी उसकी जब उसे निर्दोष करार दिया गया / वह भागी / आकर मेरे दराज में छुप गई / वहाँ सुबकती रही घंटों"

"क़र्ज़ सोचने के क्रम में" कविता के माध्यम से कवि ने क़र्ज़ से लदे पूर्वजों के बहाने आज की यथास्थिति का वर्णन प्रस्तुत किया है। क़र्ज़ चुकाने के लिए एक व्यक्ति अपने घर का गहना या कीमती सामान तक बेच देता है, फिर भी वह क़र्ज़मुक्त नहीं हो पाता है। फसल अच्छी होने पर भी उसने सोचा होगा कि वह उसे बेचकर क़र्ज़मुक्त हो जाएगा, पर फसल ही दगा दे देती है। ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि उस किसान को मृत्यु को ही गले लगाना पड़ता है। वह अपना भरा पूरा परिवार छोड़ चला जाता है। कवि ने लिखा है -

"कहते हैं कि कोई चारा नहीं रहने पर / अंत में महाजन की दासता में चले जाते होंगे हमारे पूर्वज / और ब्याज नहीं चुका पाने के कारण / उन महाजनों को / पूर्वज की संतानों का जीवन भी उपहार में मिल जाता होगा"

मिथिलेश कुमार राय की कविताएँ ग्रामीण पृष्ठभूमि के उस पक्ष को उज्ज्वल करती हैं, जो हिन्दी कविता से लगभग बेदखल हो गई हैं। वर्तमान दौर में कवि रातोंरात प्रसिद्धि के शिखर पर पहुँच जाना चाहते हैं, पर मिथिलेश कुमार राय सुदूर गाँव में रह कर वहाँ की पीड़ा, बेचैनी और प्रेम को संजोए रखना चाहते हैं। उसी प्रेम से हम सब भी उनकी कविता के माध्यम से परिचित होने में सफल हुए हैं। संकलन में प्रूफ की ग़लतियाँ नहीं हैं। छपाई एकदम साफ सुथरी है। कवि को मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ!

000

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : शिवना साहित्यिकी

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : ज़ुबैर शेख़।

पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।

पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।

पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 20 मार्च 2021

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित

(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

पुस्तक समीक्षा

(कहानी संकलन)

वैश्विक प्रेम कहानियाँ

समीक्षक : प्रो.अवध किशोर प्रसाद

संपादक : सुधा ओम ढींगरा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

प्रो. अवध किशोर प्रसाद
द्वारा- कुमार राजेश, सी.ए.ओ
सी.आई.ए.ई. नबी बाग़
बैरसिया रोड, भोपाल (एम.पी.) 462038
मोबाइल– 9599794129

जिन प्रवासी कथाकारों ने विदेश की धरती पर रहकर हिन्दी कहानी साहित्य को समृद्ध किया, उनमें सुधा ओम ढींगरा का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अमेरिका जैसे विकसित देश में रहकर, वहाँ की सभ्यता, संस्कृति एवं परिवेश में रच-बस कर भी सुधा ओम ढींगरा पूर्णत: भारतीय हैं। भारत की सांस्कृतिक चेतना की अलख जगाती उनकी कहानियाँ इस बात की शिनाख़्त कराती हैं। कहानी ही नहीं इन्होंने हिन्दी साहित्य की अन्य अनेक विधाओं को भी अपनी बहुमूल्य रचनाओं के अवदान से समृद्ध किया है। इनकी कहानियों में भारतीय जीवन की सम्पूर्ण झाँकी देखने को मिलती है। बहुत सी बातें और स्थितियाँ ऐसी होती हैं जो एक देश में होती हैं परन्तु वे दूसरे देश में नहीं होती हैं और अगर होती हैं तो उनका रूप भिन्न होता है। प्रेम एक शाश्वत और सनातन सत्य है। यह मनुष्य की आदिम प्रवृत्ति है। इसलिए इसकी अवस्थिति हर मनुष्य में होती है, चाहे वह धरती के जिस किसी भी छोर पर रहता हो। संभव है उसकी अभिव्यक्ति के रूप में अंतर हो। किन्तु उसके भीतर की रस-दशा समान होती है,जिसे 'प्रेम' कहते हैं। इस संबंध में सम्पादिका का मन्तव्य द्रष्टव्य है- "…….प्रेम सिर्फ प्रेम होता है, 'विशुद्ध प्रेम',जो देश और विदेश में एक सा महसूस किया जाता है; क्योंकि मानवीय भावनाएँ पूरे विश्व में एक-सी हैं। देश, काल और परिवेश का अंतर हो सकता है, पर संवेगों की गहराई और रूह के एहसास और भावों में कोई अंतर नहीं। पूरे विश्व में प्रेमी–प्रेमिका का दिल टूटता है और वेदना में तड़पता भी है। संयोग- वियोग, विरह- मिलन, बेवफाई-वफादारी प्रेम तत्व हर भाव यहाँ मिलता है"। ये सारे भाव एक समान होते हैं, चाहे वे जिस किसी भी देश की मिट्टी में बसे मानव के हृदय में अवस्थित हो।

वैश्विक प्रेम की इसी आनुभूतिक चेतना को उजागर करती, अभी हाल में शिवना प्रकाशन

सीहोर से सुधा ओम ढींगरा के सम्पादन में कहानी संग्रह "वैश्विक प्रेम कहानियाँ " प्रकाशित हुआ है। इसमें भारत सहित विश्व के नौ देशों में फैले सत्ताईस भारतीय कथाकारों की सत्ताईस प्रेम कहानियाँ संकलित हैं। अमेरिका से –उमेश अग्निहोत्री की 'एक प्यारी-सी याद', सुदर्शन प्रियदर्शिनी की 'अबके बिछुड़े', पुष्पा सक्सेना की 'चाहत की आहट', अनिल प्रभा कुमार की 'मौनराग', सुधा ओम ढींगरा की 'यह पत्र उस तक पहुँचा देना', डॉ. अफरोज़ ताज की 'अतीत की वापसी', अमरेन्द्र कुमार की 'ग्वासी', कैनेडा से सुमन कुमार घई की 'स्वीट डिश', हंसा दीप की 'कॉफ़ी में क्रीम', शैलजा सक्सेना की 'निर्णय', ब्रिटेन से उषा राजे सक्सेना की 'मिस्टर कमिटमेंट', उषा वर्मा की 'एलिस तुमने कहा था', शैल अग्रवाल की 'विसर्जन', कादम्बरी मेहरा की 'तितली', दिव्या माथुर की 'टकराव', अरुण सब्बरबाल की 'इंग्लिश रोज़', तेजेंद्र शर्मा की 'प्यार की इनटेलेक्चुअल जुगाली', ऑस्ट्रेलिया से रेखा राजवंशी की 'प्रेम या छलावा', डेनमार्क से अर्चना पैन्यूली की 'किसे चुनूँ ?', त्रिनिडाड /टोबेगो से आशा मोर की 'तुम्हारा इंतजार करूँगी', चीन से –अनीता शर्मा की 'कमली यार दी...', संयुक्त अरब अमीरात से पूर्णिमा वर्मन की 'मुखौटे' और भारत से नासिरा शर्मा की 'मरुस्थल', कृष्ण बिहारी की 'ढाके की मलमल', मनीषा कुलश्रेष्ठ की 'एक ढोलो दूजी मरवण तीजो कसूमल रंग', गीताश्री की 'हंकपड़वा' तथा पंकज सुबीर की 'महुवा घटवारिन' कहानियाँ संकलित हैं।

संकलन की ये प्रेम कहानियाँ यद्यपि भारतीय कथाकारों की लेखनी की सृजन हैं, तथापि इनके प्रेम-पात्र भिन्न-भिन्न देशों के हैं, जिनकी आनुभूतिक चेतना प्राय: समान है और उनकी अभिव्यक्ति के रूप में भी समानता है। ढाई अक्षर के इस प्रेम को पाने के लिए, कबीर के शब्दों में चाहे वह राजा हो या प्रजा, 'सीस देई ले जाय' की मान्यता को स्वीकार करना पड़ता है। यह सार्वदेशिक और सार्वकालिक सत्य है। इसे सबने स्वीकार किया है। संकलन की सत्ताईस कहानियों के प्रेम पात्रों ने भी इसे अंगीकार किया है। संपादक सुधा ओम ढींगरा ने इन कहानियों के संकलन के पीछे अपने उद्देश्य को विस्तृत एवं सारगर्भित भूमिका लिखकर व्यक्त किया है। इन सारी कहानियों का कथ्य, शिल्प या प्रतिपाद्य चाहे जो भी हो इनमें एक ही भाव की अभिव्यक्ति हुई है, वह है 'प्रेम', जो लौकिक होने के कारण शृंगार की परिणति को प्राप्त करता है, चाहे संयोग हो या वियोग। इस संबंध में संपादिका ने लिखा है- "मेरा पूरा प्रयास रहा है प्रेम,प्यार, इश्क, मोहब्बत और प्रीत के इत्र की ख़ुशबू इस पुस्तक से आए और इस पुस्तक को पढ़ने वाले 'आप' ख़ुशबू से सराबोर हो जाएँ" (पृष्ठ-12)।

संकलन की कहानियों के अवगाहन से यह सच उभरकर सामने आता है कि ये प्रेम-प्यार के इत्र से सराबोर हैं। चाहे पुष्पा सक्सेना की 'चाहत की आहट' की अमेरिकी लड़की एवं मैक्सिको के गिटारवादक, अथवा अनिल कुमार प्रभा की 'मौन राग' के वृद्ध दम्पत्ति सतनाम और रंजीत हों अथवा आशा मोर की 'तुम्हारा इंतज़ार करूँगी' के डॉ.अशोक और शर्मिला हों, सबके सब अटूट प्रेम बंधन में बँधे प्रेमी-प्रेमिकाएँ हैं। पंकज सुबीर की 'महुआ घटवारिन', सुधा ओम ढ़ींगरा की 'यह पत्र उस तक पहुँचा देना', गीताश्री की 'हंकपड़वा' जैसी क़िस्सागोई की शैली में लिखी विवरणात्मक कहानियों में भी प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है। इन समस्त कहानियों में किसी न किसी रूप में प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है- कहीं दाम्पत्य प्रेम, कहीं जवानी की दहलीज़ पर पाँव रखते युवा प्रेम, तो कहीं प्रेम पात्र की अहर्निश प्रतीक्षा में पनपता-विकसता प्यार। उमेश अग्निहोत्री की 'एक प्यारी –सी याद' शीर्षक संकलन की पहली कहानी में पहले प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है। अमेरिका में रह रहे कथावाचक को पाकिस्तान की लड़की समीना से प्यार हो जाता है, जिसे वह जीवन पर्यन्त भूल नहीं सकता है। इस कहानी में प्रेमानुभूति की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। कथावाचक, मलयाली कवि अय्यप पणिकर की एक कविता के हवाले से, पहले और दूसरे प्यार की विवेचना करता है- "दुनिया में कुछ भी नहीं है पहले प्यार जैसा, अगर कुछ है तो वह है दूसरा प्यार" (पृष्ठ-20)। सुदर्शन प्रिय-दर्शिनी की 'अब के बिछुड़े ' प्रेम की मर्मान्तक पीड़ा को व्यक्त करती मार्मिक कहानी है, जिसमें कथावाचिका और रजत के अव्यक्त प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है। दोनों ही बाल्यकाल के प्रेमी हैं और प्रेम की पीड़ा का दंश दोनों ही झेलते हैं। लम्बे अंतराल के बाद बस की पिछली सीट पर रजत को अनायास बैठे देखकर कथावाचिका स्तब्ध रह जाती है और चिंतनमग्न हो जाती है। उसके चिंतन के क्रम में कथाकार उसकी प्रेमानुभूति को अभिव्यक्त कर देती है। पुष्पा सक्सेना की 'प्यार की चाहत' एक अमेरिकन लड़की टीना और मैक्सिको के गिटार वादक विक्टर के प्यार की अनोखी कहानी है। गिटार वादक को देखकर टीना अनायास ही उसके प्रति आकृष्ट हो जाती है जो प्रेम और प्रणय की परिणति को प्राप्त करता है। टीना के आत्म चिंतन-"जिस इंसान से पहली बार मिलते ही वह अपना सा लगने लगे, उसका साथ अच्छा लगे, उसी के साथ सच्चा प्यार हो सकता है"(पृष्ठ-39) के क्रम में कथाकार प्रेम होने की स्थिति को व्यक्त करती है। अनिल प्रभा कुमार की 'मौन राग' शीर्षक कहानी में पर्यटकों की यात्रा के विवरण के मध्य सबसे उम्रदराज़ दम्पति सतनाम और रंजीत के प्रेम को व्यक्त किया गया है। यह एक पर्यटन भी है और प्रेम कहानी भी। डॉ.अफरोज़ ताज की 'अतीत की वापसी' एक अद्भुत और मनोरंजक कहानी है। अतीत और वर्तमान के बीच के फ़ासले को मिटाना मुश्किल होता है किन्तु इस कहानी में अनिल की दूसरी पत्नी नीमा उसकी पहली पत्नी अंजलि का प्रतिरूप बनकर अनिल के अतीत को वापस ला देती है।

कुछ कविताएँ ऐसी होती हैं जो कविता तो नहीं होती हैं किन्तु कविता होने का आभास दिला जाती हैं, इसे काव्याभास कहते हैं; वैसे ही कोई प्रेम प्रेम न होते हुए भी प्रेम का आभास दिला जाता है। अमरेन्द्र कुमार 'ग्वासी ' में प्रेम नहीं प्रेमाभास है। कथाकार ग्वासी के विवरण के क्रम में दीप्ति के अव्यक्त प्रेम की कहानी कह जाता है। पूर्णिमा वर्मन की 'मुखौटे',

मनीषा कुलश्रेष्ठ की 'एक ढ़ोलो दूजे मरवण .....तीजो कसुमल रंग' नासिरा शर्मा की 'मरुस्थल' आदि ऐसी ही कहानियाँ हैं, जिनमें अव्यक्त प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है। कैनेडा की संस्कृति में बेटे-बहू को बाप के 'डेट'लेने की चिंता होती है। सुमन कुमार घई की 'स्वीट डिश' ऐसी ही कहानी है, जिसमें विजय नामक विधुर और उसी की हमउम्र कुमारी विभा के बीच एक पार्टी में मुलाक़ात के दौरान प्रेम हो जाता है। इसका आभास पाकर उसकी बहू अभि उसे विभा से विवाह के लिए डेट लेने का परामर्श देती है। उसके कथन-"आपको विभा आंटी के साथ डेट पर जाना चाहिए। अगर आपको फ़ोन करने में शर्म आ रही है, तो मैं कर देती हूँ फ़ोन" पर विजय स्तब्ध रह जाता है और कह उठता है- "बच्चे इतने बड़े हो गए हैं कि बाप की डेट की चिंता कर रहे हैं! यह देश, यहाँ की संस्कृति"(पृष्ठ-110)। हंसा दीप की 'कॉफी में क्रीम' शीर्षक कहानी में कैनेडा के अलग-अलग शहरों में पले–बढ़े इबा और बॉब के बीच की नि:स्वार्थ भाव की दोस्ती का बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया गया है। इस प्रेम को कथाकार ने कोई नाम नहीं दिया है, फिर भी कहानी की अंतिम पंक्तियाँ -"गर्म हथेलियों की तपन ने इवा के जमे हुए आँसुओं को बहा दिया। शाम का धुँधलका अपने चरम पर था, काले बादलों का झुण्ड, सफ़ेद बादलों के साथ एकाकार होते, डूबते सूरज की लालिमा में विलीन हो रहा था"(पृष्ठ-118), सब कुछ स्पष्ट कर देती हैं। शैलजा सक्सेना की 'निर्णय' अपने ढंग की अनूठी कहानी है। इसमें विवाह के बाद तलाक़ और फिर पुनर्विवाह, वह भी अपने ही तलाक़शुदा पति से, का मनोहारी वर्णन हुआ है। माला का विवाह सुभाष के साथ होता है दोनों में तलाक़ होता है। किन्तु फिर दोनों 'लिव्ड हैपिली एवर आफ्टर' के साथ पुनर्विवाह करते है। नेहा और राकेश के वार्तालाप के माध्यम से कथाकार ने इसका विवरणात्मक ढंग से उल्लेख किया है। उषा राजे सक्सेना की 'मिस्टर कमिटमेंट' शीर्षक कहानी में स्टेज आर्टिस्ट बुरहान और इरान-इराक युद्ध में विस्थापित मुनीस के बीच के प्रेम का वर्णन हुआ है। इंग्लैंड की संस्कृति में दोनों साथ-साथ प्रेमालिंगन करते हैं और भारतीय संस्कृति में बुरहान मुनीस के रिंग फिंगर में बियर कैन का छल्ला पहनाकर उसे अपना बना लेता है। अर्चना पैन्युली की 'किसे चुनूँ' में भारतीय मूल की डेनमार्क में रहने वाली अणिता कथावाचन शैली में एक तरह से अपनी जीवन गाथा प्रस्तुत करती है। इसमें विदेश की धरती पर भी भारतीय संस्कृति को जीवंत बनाये रखने वाले भारतीय परिवार के आपसी प्रेम को अभिव्यक्त किया गया है। अणिता यद्यपि अपने ब्वाय फ्रेंड मोर्गन से प्रेम करती है किन्तु अनिल के साथ विवाह के बाद वह दाम्पत्य जीवन की रंगीनियों में खो जाती है। इस कहानी में प्रेम की बहुरंगी छटा छिटकी है-देश की संस्कृति से प्रेम, पारिवारिक प्रेम, दाम्पत्य प्रेम।

प्रेम जब लौकिक होता है तो श्रृंगार कहलाता है, जब आध्यात्मिक होता है तो भक्ति की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। शैल अग्रवाल की 'विसर्जन ' शीर्षक चिंतन प्रधान कहानी में प्रणव मुखर्जी की दुर्गा के प्रति अनन्य भक्ति के माध्यम से दुर्गा की महत्ता, पूजन विधि, लोगों की आस्था आदि की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। इसमें आध्यात्मिक प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है इसीलिए इसे 'भक्ति' कहा जा सकता है।

प्रेम करने की न ऋतु होती है न उम्र। प्रेम प्रेम होता है, जो हो जाता है। प्रेम शरीरी और आत्मिक होता है। शरीरी प्रेम अस्थाई होता है। वैसा प्रेम शरीर तक ही सीमित रहता है। शरीरी सौन्दर्य मिटते ही ऐसा प्रेम स्खलित हो जाता है। किन्तु आत्मिक प्रेम स्थाई होता है। आत्मिक प्रेम का संबंध शरीरी सौन्दर्य से नहीं, बल्कि आत्मा से होता है। वह शाश्वत होता है, चिरंतन। अरुण सब्बरबाल की 'इंग्लिश रोज़' शीर्षक कहानी में दोनों प्रकार के प्रेम का उल्लेख हुआ है। विधि का पति शरद विधि के केंसर से पीड़ित होने के पूर्व तक उसका प्रेम था। वह विधि से बेहद प्यार करता था। किन्तु जब केंसर के कारण विधि की एक छाती काट दी जाती है तब शरद उसे यह कहकर कि "अब तुम मेरे लिए व्यर्थ हो", घर से निकाल देता है। किन्तु विधि का दूसरा पति जॉन उससे आत्मिक प्रेम करता है और अंत तक प्रेम का निर्वाह करता है।

संकलन की कहानियों में प्रेमी-प्रेमिकाओं के निर्मल प्रेम की मार्मिक अभिव्यक्ति तो हुई ही है,इनमें जिस देश के कथाकार की कहानियाँ हैं या जिस देश की धरती पर के प्रेम पात्रों के प्रेम का वर्णन हुआ है,उस देश की सभ्यता,संस्कृति, परम्परा, रीति-रिवाज़ एवं उस देश के महत्त्वपूर्ण दर्शनीय एवं सार्वजनिक स्थलों का मनोमुग्धकारी वर्णन भी हुआ है, जिनका चित्रात्मक बिम्ब पाठकों को उन स्थानों की सैर करा देता है।

इन कहानियों में उन देशों की बोलचाल की भाषा के शब्दों का भी बहुल प्रयोग हुआ है। देश काल की सीमा में बँधी कहानियाँ बड़ी ही दिलचस्प और मनभावन हैं। यद्यपि कहीं-कहीं वर्णन-विस्तार से कहानियाँ भाव बोझिल हो गई हैं, तथापि ऐसे स्थल अंगुल गणनीय हैं। इन कहानियों में कल्पना की उड़ान, भावों की कमनीयता एवं भाषिक सौष्ठव है। यह संकलन हिन्दी कथा साहित्य को एक अनूठी और अप्रतिम देन है।

000

लेखकों से अनुरोध

सभी सम्माननीय लेखकों से संपादक मंडल का विनम्र अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मीडिया के किसी मंच जैसे फ़ेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें पत्रिका में प्रकाशन हेतु नहीं भेजें। इस प्रकार की रचनाओं को हम प्रकाशित नहीं करेंगे। साथ ही यह भी देखा गया है कि कुछ रचनाकार अपनी पूर्व में अन्य किसी पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ भी विभोम-स्वर में प्रकाशन के लिए भेज रहे हैं, इस प्रकार की रचनाएँ न भेजें। अपनी मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ ही पत्रिका में प्रकाशन के लिए भेजें। आपका सहयोग हमें पत्रिका को और बेहतर बनाने में मदद करेगा, धन्यवाद।

-सादर संपादक मंडल

पुस्तक समीक्षा

(कहानी संग्रह)

मैं फूलमती और हिजड़े

समीक्षक : रमेश शर्मा

लेखक : उर्मिला शुक्ल

प्रकाशक : नमन प्रकाशन, नई दिल्ली

रमेश शर्मा
92 श्रीकुंज बोईरदादर
रायगढ़, छत्तीसगढ़ 496001
मोबाइल- 7722975017
ईमेल- rameshbaba.2010@gmail.com

समकालीन साहित्य में कहानी आज की सबसे लोकप्रिय विधा है। साहित्य के भूगोल में कहानी का अपना एक व्यापक स्पेस है जहाँ बहुत कुछ कहना सुनना संभव हो पाता है। हर कहानीकार की अपनी एक लेखन क्षमता, भाषा और कहन शैली, कथ्य और शिल्प की व्यापकता होती है जिसके जरिए वह एक बहुसंख्यक पाठक समुदाय को अपनी रचनाओं से जोड़ पाता है। उर्मिला शुक्ल की कहानियों का संसार भी साहित्य के भूगोल में एक बड़ी जगह को घेरता हुआ इसलिए प्रतीत होता है क्योंकि उनकी कहानियों में पाठक के आसपास की दुनिया इस तरह शामिल होती चली जाती है जिसे रोज़मर्रा की ज़िंदगी में वह देखता सुनता और महसूस करता है और शायद इसी स्थानीयता की वजह से उनकी कहानियाँ पाठकों से सीधे संवाद करती हैं। " मैं फूलमती और हिजड़े " उर्मिला शुक्ल की कहानियों का पहला ही संग्रह है जिसमें उनकी दस कहानियाँ शामिल हैं। इस संग्रह की कुछ कहानियाँ तो पहले ही पत्र पत्रिकाओं के जरिए पाठकों के बीच पहुँचकर चर्चित भी हुई हैं। कहानी मैं फूलमती और हिजड़े संग्रह की सबसे महत्त्वपूर्ण कहानी है जिसमें उर्मिला शुक्ल के भीतर का कहानीकार कभी पाठकों से सवाल करते हुए उनसे जवाब माँगने की कोशिश करता है, कभी उन्हें हँसाता है, तो कभी उन्हें द्रवित भी करता है। यह कहानी दरअसल औरत के त्याग, समर्पण और उसके शोषण का आख्यान है जिसमें कई डायमेंशन हैं। औरत का खुद का अपना एक वजूद होता है इस बात को उर्मिला ने कहानी में शिद्दत से उठाने की कोशिश की है। पढ़ी-लिखी कही जाने वाली कथा नायिका सीमा का वजूद जो शादी के बाद कहीं गुम हो चुका है और उसकी शादी महज एक बिज़नेस डील होकर रह गई है, जबकि उसका पति मयंक उसकी नौकरी छुड़वाकर उसे पंगु इसलिए बना देना चाह रहा है ताकि उसके साथ वह मनमानी कर सके, उसके शरीर को सीढ़ी की तरह इस्तेमाल करके बिज़नेस में लाखों के टेंडर हासिल कर सके। उसी वजूद को फूलमती जैसी साधारण कही जाने वाली जुझारू स्त्री के भीतर पाकर वह नौकरी नहीं छोड़ने का साहसिक फ़ैसला लेती है, यह जानते हुए भी कि इसके बदले तलाक़ के रूप में उसे बड़ी कीमत चुकानी पड़ेगी। औरतें कई बार संरक्षण की आस में झूठी संवेदना पाकर उसे प्रेम भी समझ लेती हैं और धोखा खाती हैं। फूलमती बिहारी की झूठी संवेदना और प्रेम के चक्कर में पड़कर वेश्यावृत्ति के दलदल में जब धकेल दी जाती है तब उसके भीतर की औरत जाग जाती है और वह बिहारी को अपने जीवन से निकाल बाहर करके अपना रास्ता खुद चुनती है। इस रास्ते पर चलते हुए भले ही लोगों की संशय भरी नज़रों का सामना करना पडता है पर दरअसल यही उसकी मुक्ति का मार्ग होता है जहाँ उसे बेइंतहा प्यार जताने वाला एक साधारण सा आदमी मिलता है जिसे कमोबेश हर औरत अपने जीवन में पाना चाहती है।

और इसकी स्निग्धता ने फूलमती को मोह लिया था। वह फिर इसी की होकर रह गई थी।

फूलमती ने पहली बार जाना था कि प्रेम क्या होता है। प्रेम जिसके धोखे में उसने बिहारी का हाथ थामा था, वह तो अब उसे मिल रहा था। फूलमती ने अब जाना कि प्यार कितना कोमल और कितना मोहक होता है। फिर तो धीरे-धीरे सारे ग्राहक छूट चले थे। अब हर रोज़ यही आया करता। दिन-दिन भर हम्माली करता और रात को अपनी सारी कमाई फूलमती के हाथ पे धर देता, जैसे वही उसका पति हो। वैसा ही प्यार, वैसा ही संरक्षण।

फूलमती ने जान लिया था कि उसकी ख़ातिर कुछ भी कर गुज़रने का माद्दा सिर्फ इसी में है और वह इसकी होती चली गई थी। सारी दुनिया जिसे हिजड़ा कहती थी, फूलमती के लिए वही संपूर्ण पुरुष था। वह पुरुष जिसने उसे प्यार दिया, सम्मान दिया और अधिकार दिया था। उसे उस दलदल से बाहर निकाला जिसमें तथाकथित पुरुष ने धकेल दिया था उसे। "अब तहीं बता न दीदी, हिजड़ा कोन है? ये या कि वो जेन मोला बेसिया बना दिस?"

कहानी की इन पंक्तियों के माध्यम से उर्मिला मनुष्य के नैतिक हिजड़ेपन को उभारने में सफल दिखती हैं। एक औरत के जीवन में मनुष्य का नैतिक हिजड़ापन शारीरिक हिजड़ेपन से अधिक घातक साबित हो सकता है। उर्मिला इस कहानी में मनुष्य के हिजड़ेपन को बने बनाए ख़ाँचे से अलग एक नए रूप में प्रभावी ढंग से परिभाषित करने में सफल हुई हैं। मनुष्य का नैतिक हिजड़ापन औरतों के शोषण का कारण बनता है कहानी इस ओर भी इशारा करती है और इस नैतिक हिजड़ेपन के विरुद्ध संघर्ष के लिए पाठक को उकसाती भी है।

संग्रह की एक और कहानी बँसवा फुलाइल मोरे अंगना भी औरत के शोषण की ही कथा है। आधुनिकता की आड़ में मर्द अपनी औरत को बहला फुसलाकर किस तरह एक वस्तु के रूप में उसका उपयोग करने की कोशिश करता है इस बात को कहानी में प्रस्तुत करने की कोशिश की गई है। साथिया क्लब में खुले आम पुरुष अपनी इच्छानुसार महिला पार्टनर का चुनाव करते हैं, उनके साथ डांस कर सकते हैं यहाँ तक कि जिस्मानी रिश्ता बनाने की भी आज़ादी उनके पास है पर महिला को यहाँ भी अपनी इच्छानुसार पुरुष पार्टनर का चुनाव करने की आज़ादी नहीं है। पुरुष जिस महिला को अपना पार्टनर चुनता है, उस महिला का पति उस पुरुष की पत्नी का पार्टनर खुद बखुद बन जाता है। कहानी में इस बात को बताने की कोशिश की गई है कि दो पुरुषों में अपनी पत्नियों की अदला- बदली की आपसी सहमति के आधार पर पार्टनर तय होते हैं। यद्यपि कहानी में ऐसे रिश्तों को लेकर पाठक कहानीकार के उपर अतिश्योक्ति पूर्ण वर्णन का आरोप लगा सकते हैं पर आधुनिक समाज में जिस तरह औरत को एक बाज़ार की वस्तु के रुप में चारों तरफ प्रस्तुत करने की कोशिश हुई है ऐसे में लगता है कि ऐसी घटनाएँ भी समाज में संभव है। उर्मिला यहाँ ऐसी घटनाओं के बीच फँसकर मझधार में भी औरत की अपनी आज़ादी को बरकरार रखने की पक्षधर लगती हैं। भले ही आँगन में बाँस का फूलना अशुभ माना जाता है पर सीमा के गर्भ में पल रहे बच्चे से उसकी तुलना करते हुए उर्मिला यह दिखाने की कोशिश करती नज़र आती हैं कि इसमें औरत का कहीं कोई दोष नहीं है। इस कहानी में उर्मिला यह दिखाने में भी कामयाब लगती हैं कि आधुनिकता की आड़ में मर्द अपनी सुविधानुसार अपनी औरत को किसी गैरमर्द से रिश्ता जोड़ने हेतु बाध्य तो कर सकता है, पर इस रिश्ते से जन्में किसी बच्चे को स्वीकार करने में उसका अपना अहं आड़े आता है। मर्द के दोहरे चरित्र को यह कहानी बहुत संजीदगी से उघाड़ती है इस बात को कहानी की इन पंक्तियों के माध्यम से देखा महसूसा जा सकता है -

और कांत! उसके मन मस्तिष्क में अब बाँस का फूल ही घूम रहा था। उसने सुन रखा था कि जब बाँस फूलता है, तब भारी तबाही लाता है और वह आने वाली थी अब, वो आते हुए देख रहा था उसे। मगर जिस तरह बाँस फूलने के बाद कुछ नहीं किया जा सकता, बस नियति मान उसे स्वीकारना ही होता है, वैसे ही ....?

वह भीतर से दरक गया था, किसका होगा यह बच्चा - उसका ? या मल्होत्रा का ? या दीपांश या फिर दिवाकर का ? किसका ? किसका है? माना कि यह जानना आज के दौर में मुश्किल भी नहीं है मगर जानकर भी अब क्या होगा ? अगर बच्चा इन्हीं में से किसी का हुआ तो ? उसकी आँखों के सामने बंसवारी घूम गई और उसमें खिला बाँस का फूल, जो बाँस से भी ज़्यादा कंटीला होता है, मगर कहलाता है फूल-बंसफूल। उसके आँगन में भी तो ?

एक और कहानी नहीं रहना देश बिराने छत्तीसगढ़ से पलायन कर ईंट भट्ठों में काम करने वाले मंटोरा और इतवारी जैसे श्रमिकों की दारुण कथा है, जो हर तरह के शोषण के शिकार हैं और इस शोषण से मुक्ति चाहते हैं। अपना देश जहाँ आदमी जन्म के साथ अपनी भौगौलिकता में जीवन जीता है और अपनी जड़ों के भीतर रहकर संघर्ष करने को श्रेष्ठ मानता है, जब आजीविका के चक्कर में उसी भौगौलिकता से वह कट जाता है तब आदमी के जीवन में कई परेशानियाँ भी खड़ी हो जाती हैं, कुछ इसी तरह के हालातों से यह कहानी हमें साक्षात्कार करवाती है। आज जबकि रोज़गार के चक्कर में लोग अपनी भौगौलिक जड़ों से निरंतर कट रहे हैं ऐसे समय में यह कहानी भौगौलिक जड़ों से जुड़ने का संदेश भी देती है, इन पंक्तियों के माध्यम से इसे देख सकते हैं -

वह आज लौट रही है, अपने देश। वह विदेश में नहीं थी, वो जहाँ रहती थी वह भी इस विशाल देश का एक हिस्सा ही है। मगर उसकी दृष्टि में वह परदेश ही है। इसलिए परदेश से देश लौटने की उसकी व्याकुलता भी उतनी ही गहरी थी, जितनी विदेश में रहने वाले व्यक्ति में हुआ करती है।

संग्रह की अन्य कहानियाँ तिनका-तिनका कोशिश, अपनी नस्ल के लिए, एक सुहाग की मौत, फूलकुँवर तुम जागती रहना, तिरिया जनम, फूल गोदना के इत्यादि में भी महिलाओं की दुनिया की शोषण और अंतर्द्वंद्व की भिन्न-भिन्न तस्वीरें इस रुप में सामने आती हैं कि उसे हम जैसे अपनी आँखों के सामने घटता हुआ महसूस करते हैं। उर्मिला की

कहानियों की कथानक की एक विशेषता यह भी है कि इनमें सिर्फ शोषण का आख्यान ही नहीं गूँजता है बल्कि वहाँ एक मुक्ति का संदेश भी सुनाई देता है। तिरिया जनम कहानी की इन पंक्तियों में भी इसे परखा जा सकता है -

'मम्मी, पापा और सुधीर, सबके हिस्से थे उसके भीतर। नहीं था तो अपना कोई हिस्सा। उसने कभी सोचा भी तो नहीं कि इन सारे टुकड़ों से परे भी कुछ है। अपना निज भी होता है, उसने जाना ही न था। फिर भी ....? मगर आज वह महसूस कर रही है कि अपना निजत्व कितना कितना ज़रूरी होता है। वह देख रही थी अपने ही भीतर अपने ही टुकड़ों को!'

उर्मिला की कहानियों में महिलाओं की निजी स्वतंत्रता और शोषण से मुक्ति के लिए एक छटपटाहट है जो अलग से चिह्नित होती है। उनकी छटपटाहट सिर्फ उन तक ही सीमित नहीं है बल्कि इन कहानियों से गुज़रने वाले उन सभी पाठकों की भी छटपटाहट है, इसे इन कहानियों को पढ़ते हुए भलीभाँति देखा, समझा और महसूसा भी जा सकता है। यहाँ मुझे यह कहने में भी कतई संकोच नहीं है कि उर्मिला की कहानियों की ज़मीन को फेमिनीज़्म के खाद पानी से भरपूर सींचा गया है यद्यपि झीनी झीनी दे चदरिया जैसी कहानी ज़रूर इसकी अपवाद कही जा सकती है जहाँ चैतू और गनेशिया जैसे आम आदमी के शोषण को उभार मिला है।

इन कहानियों को लेकर एक बात का उल्लेख मैं यहाँ ज़रूर करना चाहूँगा कि इन कहानियों में एक ख़ास किस्म की मौलिकता इन अर्थों में है कि ये कहानियाँ अपने आसपास के पात्रों के जीवन को बिल्कुल छूते हुए चलती हैं। लोकजीवन की भाषा, उनकी जीवन शैली इन कहानियों में हू-ब-हू उतरती हुई सी भी लगती है, इसलिए वहाँ एक किस्म की स्वाभाविकता का बोध होता है और इससे कहानियों का संप्रेषण कई गुना बढ़ जाता है। बहरहाल उर्मिला की इन कहानियों को एक बार ज़रूर पढ़ा जाना चाहिए और उन पर चर्चा भी होनी चाहिए।

000

पुस्तक समीक्षा

(व्यंग्य संग्रह)

बंटी, बबली और बाबूजी का बटुआ

समीक्षक : सुरेश उपाध्याय

लेखक : दीपक गिरकर

प्रकाशक : रश्मि प्रकाशन, लखनऊ

"बंटी, बबली और बाबूजी का बटुआ" श्री दीपक गिरकर का रश्मि प्रकाशन, लखनऊ से प्रकाशित व्यंग्य संग्रह है। समसामयिक घटनाओं, राजनीतिक व सामाजिक विसंगतियों व विद्रुपताओं को उजागर करते इस संग्रह में 49 व्यंग्य संग्रहित हैं। संग्रह के व्यंग्य एक ओर राजनीति के खोखलेपन पर प्रहार करते हैं, तो दूसरी ओर बाज़ारवादी संस्कृति के मकड़जाल में जकड़े आमजन की पीड़ा को अभिव्यक्त करते हैं। सामान्य जनजीवन को प्रभावित करते शिक्षा, स्वास्थ्य, खेल, साहित्य, संस्कृति, फिल्म आदि विभिन्न क्षेत्र की व्यवसायिक लूट-खसोट, राजनीति, कुटिल चालों, दावपेंचों व बाबाओं के ऐयाशियों को भी व्यंग्य के माध्यम से निशाने पर लिया गया है। भाषा की सहजता व रोचकता पाठक को जोड़े रखने की क्षमता रखती है तथा दृश्यात्मकता आकृष्ट करती है।

व्यंग्य संग्रह मे शैली की विविधता एकरसता को तोड़ती है तथा फेंटेसी के प्रयोग ने कुछ रचनाओ के प्रभाव को अतिरिक्त धार दी है। संग्रह का पहला व्यंग्य "आउटसोर्सिंग एजेंसी द्वारा आत्माओं की शिफ्टिंग" इसका प्रबल प्रमाण है। धर्मराज, चित्रगुप्त, नारद, यमदूत आदि के संवाद के माध्यम से एक ओर चिकित्सकीय लूट तो दूसरी ओर सभी कार्यालयों, शिक्षा संस्थानों, चिकित्सालयों, धार्मिक व सामाजिक आयोजनों को आउटसोर्सिंग के नाम पर ठेकेदारी प्रथा लागू किए जाने तथा उसके दुष्प्रभावों को रेखांकित किया गया है। आत्माओं की शिफ्टिंग आऊटसोर्सिंग एजेंसी को दिए जाने में हुई गड़बड़ियों में समान नाम के दूसरे व्यक्ति की आत्मा शिफ्ट हो जाती है और एक संकटपूर्ण स्थिति का निर्माण हो जाता है। मादक पदार्थों / स्त्री-पुरुष / मानव अंगों / धातुओं की तस्करी, जनप्रतिनिधियों की ख़रीद-फरोख़्त, आउटसोर्सिंग में जवाबदेही के अभाव, नियमित कर्मियों की कार्य समय सीमा व सेवा शर्तों को सुधारने की ज़रूरत की ओर भी इंगित किया गया है। दृश्यबंध में पगे इस व्यंग्य के नाट्य रूपांतर की अच्छी सम्भावनाएँ है। "एक गिरगिट का सुसाइड नोट", "गायों को आधार कार्ड तो बंदरों को क्यों नहीं", "घोड़ों, क्रिकेट खिलाड़ियों और नेताओं की ख़रीद-फरोख़्त", "जुगाली करना भी एक कला है", "गर्दभ थेरेपी से तनाव मुक्त जीवन", "भांग की तरंग या केकड़ों की करामात" आदि व्यंग्य में विभिन्न पशुओं की वृत्ति को माध्यम बनाकर सामाजिक व राजनीतिक विसंगतियों को उजागर करने की कोशिश की गई है।

000

सुरेश उपाध्याय, गीता नगर (लालाराम नगर के पास), इंदौर – 452018 मप्र
मोबाइल- 9424594808

पुस्तक समीक्षा

(उपन्यास)

कैराली मसाज पार्लर

समीक्षक : डॉ. उमा मेहता

लेखक : अर्चना पैन्यूली

प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली

अर्चना पैन्यूली कृत 'पॉल की तीर्थयात्रा' उपन्यास का उत्तरार्ध 'कैराली मसाज पार्लर' है। 'पॉल की तीर्थयात्रा' का नायक पॉल इस उपन्यास में मौजूद है। वह डेनमार्क में सिद्धिविनायक मंदिर की 108 किलोमीटर की यात्रा कर अपनी पत्नी को श्रद्धांजलि देता है। 'पॉल की तार्थयात्रा' उपन्यास जहाँ पूर्ण होता है, वहीं से 'कैराली मसाज पार्लर' आगे बढ़ता है। थका हुआ पॉल कैराली मसाज पार्लर में ऑनलाइन बुकिंग करवा कर मसाज पार्लर पहुँचता है, जहाँ उसकी मुलाकात नैन्सी से होती है। नैन्सी इस उपन्यास का केन्द्रीय चरित्र है, जिसके आस-पास कथा के ताने-बाने बुने गए हैं। अर्चना जी नैन्सी और पॉल के माध्यम से तलाक़ की ट्रेजेडी और सुखी दाम्पत्य जीवन जीने की चाबी देते हुए दृष्टिगत होते हैं। पॉल दो बार तलाक़ की त्रासदी भुगत चुका है और अब वह तीसरी बार नैन्सी से शादी कर रहा है। नैन्सी भी तीन बार तलाक की त्रासदी झेल चुकी है और चौथी बार पॉल से विवाह करती है। आधुनिक सभ्य समाज में पति-पत्नी सुख की तलाश में रिश्तों को बनाए रखने के स्थान पर उसे तोड़ देते हैं। लेकिन किसी भी रिश्ते से भागने से समस्या का समाधान तो नहीं होता। उपन्यास की कथा भारत (एशिया) के मलप्पुरम् से शुरू करके केन्या (अफ्रिका), डेनमार्क (यूरोप) और संयुक्त राज्य अमेरिका (उत्तरी अमेरिका) तक विस्तृत फ़लक में वैश्विक संस्कृति से जुड़कर नैन्सी के जीवन के उतार-चढाव का कच्चा-चिटठा पेश करती है। विभिन्न देशों की संस्कृति और नया वातारण नैन्सी के जीवन को प्रभावित करता है।

कैराली मसाज पार्लर उपन्यास के सभी गौण पात्र लॉरा, फिलिप, रेचल, जॉर्ज, नील, जोशुआ, अप्पा, कुंजम्मा, बरनार्ड, अलिसा इत्यादि कथा को गति देकर रसप्रद बनाते हैं। अब्राहम, लार्स और मार्को की वजह से कथा में संघर्ष एवं नया मोड़ आता है। प्रत्येक पात्र का शब्दचित्र अंकित करने में अर्चना जी सफ़ल रही हैं। उपन्यास का मुख्य पात्र नैन्सी आत्मकथ्यात्मक शैली में अपने विगत जीवन की कथा अपने ग्राहक पॉल को कह सुनाती है। समग्र उपन्यास में पॉल मूक श्रोता बन कर हमारे सामने आता है, किन्तु कुछ स्थानों पर बीच-बीच में उसकी सार्थक टिप्पणियाँ जीवन दर्शन से भरपूर हैं। अंत में पॉल उपसंहार में जीवन जीने का सलीक़ा सिखाता हुआ पाठकों से अपने अनुभव साझा कर यथार्थ से परदा उठाता है। पति-पत्नी के बीच भावविहीन यांत्रिक जीवन की परतें खोलता हुआ स्वयं को और नैन्सी को कठघरे में खड़ा करता है।

नैन्सी व्यापक फ़लक में जीवन के अनुभवों से शिक्षा ग्रहण करती है; अंत में उसे ज्ञात होता है कि यदि उसने अनुकूलन साध कर जीवन संघर्षों से निपटने की कोशिश की होती तो उसे तीन बार तलाक़ न लेना पड़ता! नैन्सी पॉल के सामने अपनी जीवन-गाथा खोल कर रख देती है। नैन्सी खुद ईसाई है। उसका पहला पति अब्राहम जो पादरी है, वह उसे बहुत प्यार करता है। साथ-साथ उसे सारी स्वतंत्रता भी दे रखी है, वह स्वयं नैन्सी के तैराकी के शौक को पूरा करता

डॉ. उमा मेहता
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
एम.पी.शाह आर्ट्स एन्ड सायन्स कॉलेज,
सुरेन्द्रनगर-363001 गुजरात
दूरभाष- 9429647368
मेल- umhindi13@gmail.com

है। उसे एक बेटा भी है। किन्तु उन दोनों की खुशहाल ज़िंदगी में कब बवंड़र आ जाता है, यह नैन्सी स्वयं भी नहीं जानती। एक दिन नैन्सी को पता लग जाता है,कि अब्राहम व्यभिचारी है। वह दूसरी स्त्रियों से अवैध संबंध रखता है। वह भी किसी एक से नहीं, अनेक स्त्रियों से! नैन्सी ने अपने पति को बहुत समझाने की कोशिश की, किन्तु वह न माना। इसी दौरान अब्राहम को केन्या (अफ्रिका) जाना हुआ। नैन्सी, अब्राहम और उसका बेटा जोशुआ सब साथ में मोम्बासा आ गए, लेकिन अब्राहम की आदतें न बदली। नैन्सी को पता चल गया था कि 'वूमेनाइज़र' आदमी किस तरह अपनी बात मनवा लेते हैं। नैन्सी अपने पति से अपना हक माँगती है, "तुम भले ही मुझे मौत के घाट उतार दो किन्तु मेरा यह अपमान न करो। मैं इसे सहन नहीं कर सकती। मैं ही क्या दुनिया की कोई भी पत्नी यह स्वीकार नहीं कर सकती।"1 किन्तु नैन्सी की बातों का अब्राहम के उपर कोई असर न होता। वह अपनी निजी ज़िंदगी में किसी की दखल नहीं चाहता था। नैन्सी अब क्या करें, क्या न करें, कुछ पता नहीं चल रहा। पता नहीं वह किस भँवर में फँस गई है। फिर अपने भाई नील की सलाह पर नैन्सी अपने अस्तित्व को बचाने के लिए नई राह तलाशने लगी। तभी मोम्बासा में उसकी मुलाकात डेनिश आदमी लार्स हैनसन से होती है। किसी तरह अब्राहम से तलाक़ लेकर नैन्सी अपने बेटे को साथ लेकर लार्स के साथ डेनमार्क चली जाती है। वहाँ जाकर नैन्सी लार्स के साथ शादी करके नैन्सी हैनसन बन जाती है। वहाँ का घर, परिवेश, संस्कृति सब बिलकुल भिन्न थे। नैन्सी पॉल को बताती है कि "विभिन्न महाद्वीपों में रहते हुए मैंने महसूस किया कि हम चाहे कहीं भी रहें, हमें अन्याय, अपमान, विश्वासघात, नस्लवाद... और भी कितने तरह के पूर्वाग्रह सब सहना पड़ता है।" 2 दूसरा पति लार्स 'साइकोपैथ' था। लार्स नैन्सी को हर बार मारा-पीटा करता था। कभी-कभी उसके बाल खींचने लगता तो कभी उसकी बाँह मरोड़ देता। नैन्सी बताती है कि -"छोटी-छोटी बातों पर हिंसक होने और मुझ पर प्रहार करने की उसकी प्रवृत्ति बढ़ती गई। ...अक्सर अंतरंग क्षणों में प्यार जताने वाला कभी-कभी इतना क्रूर क्यों हो जाता है? कई बार मुझे शक होता कि वह मुझसे प्यार करता भी है या नहीं।"3 बिज़नेस ठीक से नहीं चलता तो उसका आरोप भी वह उस पर मढ़ देता है। बहुत बार लार्स ने नैन्सी को मारा-पीटा, यहाँ तक कि उसे लहुलुहान भी कर दिया। उसे अपनी किस्मत पर हैरानी होती है कि "पहला पति चर्च का पुजारी और अश्लील साहित्य का शौकीन...औरतों के साथ रंगरेलियाँ मनाता। दूसका पति एक सभ्य मुल्क का नागरिक और गँवारों की तरह मारपीट व गाली गलौज करता है। कैसी विडम्बना है!"4 दरअसल लार्स को बचपन से ही यह आदत लग गई थी कि वह अपने माता-पिता को मारता रहता था, किन्तु अब तक किसी ने उसे टोका नहीं था। अगर बचपन में ही उसे टोका होता तो शायद वह आज नैन्सी को न मारता। अंततः उसकी सास लॉरा के कहने पर नैन्सी लार्स से तलाक़ लेने को मजबूर हो जाती है।

अब उसे अब्राहम की याद आने लगती है; कि उसकी आदतें ख़राब थीं किन्तु उसने कभी नैन्सी को मारा-पीटा या गाली गलौज नहीं दी। जबकी दूसरा पति लार्स कभी हाथ से तो कभी जूते से उसे कहीं भी मारने लगता। वह गिड़गिड़ाती, फिर भी उसका असर लार्स पर नहीं होता था। अब उसे लगता है कि उसने अब्राहम को न छोड़ा होता तो अच्छा होता। हर नया रिश्ता समझौता और अनुकूलन माँगता है। कभी-कभी व्यक्ति अहं वश या निजता की दुहाई देते हुए रिश्तों को तोड़ देता है। कोई भी रिश्ता पूर्ण नहीं होता। अपूर्णता को अपना कर अपने प्रिय व्यक्ति के गुण-दोष दोनों स्वीकार करके चलेंगे तभी रिश्तों को टूटने से बचा सकते हैं। कब तक और कितने रिश्ते तोड़ेंगे? क्योंकि कोई भी संपूर्ण नहीं होता। अतः समझदारी से काम लेकर रिश्तों की उलझन को सुलझाना चाहिए, वर्ना बार-बार रिश्तों के टूटन की त्रासदी से गुज़रना पड़ेगा। इस बात को नैन्सी बहुत बाद में समझती है। अर्चना जी इस उपन्यास के माध्यम से पति-पत्नी के बीच के रिश्तों की अपूर्णता की ओर ध्यान आकर्षित कर पाठकों को जीवन की प्रेरणा देते हैं, कि वर्तमान में पति-पत्नी बार-बार तलाक़ लेकर सुख को खोजते हुए स्वयं को और अधिक दुःख के सागर डूबो देते हैं। किन्तु दोनों में से कोई समझौता करने को तैयार नहीं होते। समस्या से भाग कर उसका समाधान नहीं होता। जिससे भी रिश्ते जोड़ते हैं, उसमें पूर्णता तो होगी ही नहीं। हर नया रिश्ता नई समस्याएँ और नए समझौते लेकर आता है।

नैन्सी तीसरे पति के साथ अपनी ज़िंदगी शुरू करती है, किन्तु यहाँ भी "घूम-फिर कर बात तालमेल बैठाना, समझौते और सामंजस्य पर ही आ जाती है।"5 मार्को के साथ रहते हुए उसे उसके पूर्व ससुराल वाले और लार्स याद आ जाते हैं। मार्को उसे एक-एक पाई के लिए तरसाता है। उपर से बेटे नील का जो बाल भत्ता मिलता, उसका भी हिसाब माँग कर उस पर बच्चे के पैसे खा जाने का आरोप लगाता। मार्को ने नैन्सी के डेनिस क्लास की फीस भी नहीं भरी थी, जबकि उसने नैन्सी को बताया था कि वह समय-समय पर फीस भरता रहेगा। आत्मनिर्भर नैन्सी ने मार्को के लिए अपनी नौकरी छोड़ी थी, किन्तु अब वह पूर्ण रूप से मार्को पर आश्रित हो गई थी। उसे अपने पूर्व पति अब्राहम और लार्स से मार्को बहुत ख़राब प्रतीत हुआ। उन दोनों ने नैन्सी को कभी पैसे के लिए नहीं तरसाया। वह भारत जाना चाहती है, लेकिन इतने पैसे लाए भी तो कहाँ से। चाहे कैसी भी स्थिति क्यों न हो स्त्री को आर्थिक रूप से स्वतंत्र रहना चाहिए। पता नहीं जीवन में कब कौन से संघर्ष से गुज़रना पड़े। वह अब्राहम, लार्स और अब मार्को को भी तलाक़ दे रही है। उसे यह भी डर है कि कहीं लोग उसे ही ग़लत न ठहरा दें। उसकी बहन रेचल को जब यह बात पता चलती है तो वह भी कहती है कि "जो हम अपनी शादी में टिके हैं, यह मत समझो कि हमें कोई दिक्कत नहीं है। लेकिन हम प्रॉब्लम को सॉल्व करते हैं, भागते नहीं हैं...। "6 नैन्सी को हर बार शादी के बाद अपने पूर्व पति और पूर्व ससुराल वाले अच्छे लगते हैं। वह हर बार सोचती है कि लार्स से अब्राहम अच्छा था, मार्को से लार्स! इससे पता

चलता है कि पति-पत्नी जिस पूर्णता कि मृगतृष्णा में फिरते रहते हैं, वह कहीं नहीं है। नैन्सी पूर्णता की खोज में हर बार नए पति के साथ और भी उलझ कर रह जाती है और पूर्व पति वर्तमान पति से अच्छा लगने लगता है।

अंततः दोनों पॉल और नैन्सी अनुभव के आधार पर जान लेते हैं कि संबंधों को बचाकर रखना पड़ता है। कभी- कभी उसे बचाने की कोशिश भी करनी पड़ती है, अन्यथा हर किसी से संबंध टूटते चले जाते हैं। समायोजन और अनुकूलन साधकर ही सुखी जीवन जिया जा सकता है। मत भेद तो होते ही रहते हैं और समस्याएँ भी आती रहती हैं। इसका मतलब यह तो नहीं कि हम रिश्ते तोड़ दें, तलाक़ ले लें और उससे भागने लगे। तभी उपसंहार में पॉल स्वयं की ग़लती स्वीकार करता है। पॉल जब नैन्सी की कथा कैराली मसाज पार्लर में मसाज के दौरान सुनता है उससे वह यह भी अनुमान लगाता है कि नैन्सी भी संपूर्ण निर्दोष नहीं है। कहीं न कहीं नैन्सी ने भी ग़लतियाँ की हैं, और रिश्तों को बचाने का प्रयास नहीं किया। यहाँ तक की वह अपने बेटों के साथ भी रहने का प्रयास नहीं करती। किसी हद तक वह स्वार्थी भी हो जाती है। तभी पॉल स्वीकार करता है कि "अधिकतर हमारी समझ की कमी, अपरिपक्वता हमारे संबंधों को बिगाड़ती है और दाम्पत्य में विष घोलती है। सूझबूझ- समझदारी से काम लें तो नब्बे प्रतिशत संभावना है कि हम अपनी वैवाहिक ज़िंदगी को बचा सकते हैं। संबंधों को 'टेकन फॉर ग्रांटेड' नहीं ले सकते। संबंधों को बनाए रखने के लिए हमारी कोशिश होनी चाहिए और चाह भी।"7

000

संदर्भ-सूची:- 1.कैराली मसाज पार्लर, अर्चना पैन्यूली, प्रकाशक- भारतीय ज्ञानपीठ, लोदी रोड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण- 2020, पृ.49

2.वही, पृ. 95

3.वही, पृ.97

4.वही, पृ.99

5.वही, पृ.153

6.वही, पृ.203, 7.वही, पृ. 231-232

पुस्तक समीक्षा

(कविता संग्रह)

मध्यरात्रि प्रलाप

समीक्षक : शैलेन्द्र चौहान

लेखक : कैलाश मनहर

प्रकाशक : बोधि प्रकाशन, जयपुर

कवि कैलाश मनहर का कविता संग्रह "मध्यरात्रि प्रलाप" अनेक दृष्टि से विचार करने योग्य हैं, ऐसा मुझे लगता है। इसमें जो कविताएँ, गीत और ग़ज़लें संग्रहीत हैं, वे अधिसंख्य फेसबुक पर लगाई गई हैं। और कवि का कहना है कि चूँकि ये रात्रि के सोने के पहले लिखी गई हैं अतः इन्हें "मध्यरात्रि प्रलाप" कहा गया है। मुझे लगता है यह एक तरह का सरलीकरण हैं कविताएँ किसी भी जगह, किसी भी समय क्यों न लिखी जाएँ अगर वे पाठक को प्रभावित करती हैं तो वे अच्छी कविताएँ हैं। फिर कवि ने चाहे किसी भी स्थिति में क्यों न लिखी हों ? दूसरी बात प्रलाप की, तो पंत जी बहुत पहले कह चुके हैं कि "आह से उपजा होगा गान"। सो आह, आक्रोश, चिंता और परिवर्तन की चाह, बेहतर दुनिया बनाने के लिये, यह सभी कुछ प्रलाप के अवशेष की तरह हो सकता है।

कैलाश मनहर को मैं कब से जानता हूँ मुझे याद नहीं है। मेरा परिचय उनकी कविताओं के माध्यम से अधिकतम तीन वर्ष पुराना हैं। मैं उन्हें निकट से नहीं जानता। एक घटना मुझे याद आ रही है कि एक निकट कवि मित्र की कविता पुस्तक पर टिप्पणी करते वक्त मैंने यह कह दिया कि 'मैं उन्हें वर्षों से जानता हूँ लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि उन्हें असल में जानता हूँ।' यानि उनके चंद एक पक्ष ही समझता हूँ। पत्रिका संपादक को यह टिप्पणी रास नहीं आई और उन्होंने वह समीक्षा कवि मित्र को अपनी इस समझ के साथ लौटा दी कि वह ठीक नहीं है। किसी संपादक की भी आलोचकीय समझ की सीमा हो सकती है। बहरहाल जबसे कैलाश मनहर की कविताओं को देखना प्रारम्भ किया तो निश्चित रूप से उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। कैलाश मनहर की कविताएँ उनके व्यक्तित्व से भिन्न हैं, जैसा मुझे लगा है। वे किसी भी समूह में और किसी भी मंच पर दिख सकते हैं, उन्हें किसी से कोई परहेज नहीं है।

कैलाश मनहर का कवि अपने समय की तमाम खलबलियों से रू-ब-रू है। वह तमाम विद्रूपताओं और विसंगतियों का विरोध करता है, आत्ममंथन भी करता है और दूसरों के लिए एक संदेश छोड़ देता है। एक और महत्त्वपूर्ण बात जो कैलाश मनहर में है, वह है उनका सुगठित शिल्प, सधी हुई भाषा और प्रभावी प्रस्तुति। समानता और मानव-मूल्यों के लिये प्रतिबद्धता तो है ही। उनकी कविता की समझ भी बहुत गहरी है। अतः उनकी कविताओं को पढ़ना अपने आपको भी समृद्ध करना है।

000

शैलेन्द्र चौहान, 34/242, सैक्टर-3, प्रतापनगर, जयपुर-302033

मोबाइल- 7838897877

(उपन्यास)

एस फॉर सिद्धि

समीक्षक : मेधा झा

लेखक : संदीप तोमर

प्रकाशक : डायमंड बुक्स, नई दिल्ली

किताब हाथ में है और देख रही हूँ इसके मुखपृष्ठ को। शायद सिद्धि को उकेरने का प्रयास किया गया है - उसकी एकटक देखती आँखें और चेहरे पर छपे बारीक ढेरों शब्द। मुखपृष्ठ उसके मन की ढेरों इच्छाओं और सवालों को दर्शाता प्रतीत हो रहा है। आगे बढ़ती हूँ तो समर्पण ध्यान आकृष्ट करता है "उनको जिनके लिए पात्र जीवंत हो उठते हैं"। ऐसी कहन जिस लेखक के पास है, उस उपन्यास को पढ़ना और अधिक दिलचस्प हो उठता है।

फिर कथाकार के उद्‌गार द्वारा उपन्यास की एक झलक मिलती है जिसमें उन्होंने ज़िक्र किया है व्लादिमीर नोबोकोव के उपन्यास लोलिता का और दावा किया है कि लेडी नोबोकोव का जन्म हो चुका है, तब थोड़ा आभास मिलता है कि लेखक स्त्री की दृष्टि से कथा कहने जा रहा है। वैसे भी मेरा तो यह मानना है कि लेखक स्त्री, पुरुष, धर्म, जाति से ऊपर होता है, जब वह सृजन कर रहा होता है, क्योंकि जन्म के वक्त कोई भी निरा शिशु ही होता है, जिसका हम बाद में धर्म, मूल्य इत्यादि निर्धारित करते हैं। पढ़ना शुरू कर चुकी हूँ। चाह रही हूँ भूलना कि किसी पुरुष द्वारा रचित है यह स्त्री पात्र, फिर भी जेहन में अटकी है कहीं यह बात। एक बात और लेखक ने कही है कि यह आत्मकथ्यात्मक शैली में लिखा गया उपन्यास है।

शुरूआत मेरी जगह से होती है, पटना के जय प्रकाश नारायण हवाई अड्डे से, तो मेरा पूरा ध्यान आकृष्ट किए हुए है। कथा के साथ दिल्ली, धनवाद, हैदराबाद, मसूरी, मुंबई सब जगह भ्रमण कर रही हूँ और सारे दृश्य आँखों के सामने आते जा रहे हैं। लेखक जो भी लिख रहा है, उसका एक रेखाचित्र खिंचता हुआ चलता है आँखों के सामने। कहना न होगा कि सिद्धि एकदम परिचित सी लग रही है। उसकी जीवन यात्रा में एक साथ कई जानी-पहचानी अपने दम पर खड़ी लड़कियों की छवि नज़र आती रहती है। कई बार कई चेहरे एक-दूसरे से कितने गड्डमड्ड से हो जाते हैं। लेखक कि यही ख़ूबी भी है कि उसने लेखन प्रक्रिया जो भी अपनाई, छोटे-बड़े शहरों कि कितनी ही सिद्धियों को एक सिद्धि के चरित्र में गूँथ दिया है।

लेखक महीन से महीन, छोटी से छोटी बातों का वर्णन इस तरह करता है कि पढ़ते हुए लगता है जैसे अपने आस-पास की ही कहानी है, जिसके पात्र जाने-पहचाने से हैं। सिद्धि के बाहर से आने पर उसे वैसा ही व्यवस्थित कमरा मिलना, बाथरूम में छूटे फेसवाश के पुराने एक्सपायर्ड

मेधा झा
मोबाइल - 9999694463
ईमेल- medha04@gmail.com

ट्यूब का ज्यों का त्यों रखा मिलना, लखानी की चप्पलों को बारिश में तैराने का ज़िक्र –यही छोटी छोटी बातें लिख देना लेखक की तीक्ष्ण दृष्टि को दिखाता है।

बारिश के साथ फिल्मों ने हमेशा प्रेमियों की याद को ही चित्रित किया है। पाठक को अच्छा लगता है यहाँ स्त्री मनोविज्ञान को समझते हुए सिद्धि का अपनी मित्रों को याद करना और फिर फ़ोन लगाना। सिद्धि के मनोविज्ञान को लेखक ने जिस तरह से प्रस्तुत किया है, ऐसा शायद सिद्धि स्वयं अपनी गाथा लिखती तो भी इस स्तर तक व्याख्या न कर पाती।

प्रेम एक ऐसा शब्द है, जिसके नाम पर सबसे ज़्यादा धोखे हुए हैं, फिर भी हरेक भावुक इंसान प्रेम करता ही है और बहुत बार धोखा खाता है। सिद्धि चाहे कितनी भी आधुनिक हो, भावुक भी उसी दर्जे की है। तभी उसने आभासी प्रेम के लिए एक लाख अस्सी हज़ार के गहने बेच दिए। आम लोगों को ये मज़ाक लग सकता है क्योंकि उन्हें पता नहीं होता कि आत्मनिर्भर स्वतन्त्र स्त्री प्रेम में क्या कर सकती है। उसे रोकना किसी के लिए संभव नहीं। इस बात की यथार्थता को उसी स्तर के स्त्री या पुरुष समझ सकते हैं। ऐसा नहीं है कि उस स्त्री को उस क्षण पता नहीं होता कि यह प्रेमी उसके साथ छल भी करेगा। लेकिन जब ऐसी स्त्रियों में प्रेम का वेग प्रचण्ड होता है, तो ये स्वनिर्मित, आर्थिक रूप से स्वतन्त्र स्त्रियाँ झटके में प्रेम के पक्ष में निर्णय लेती हैं, उस समय वे कदापि उसके परिणाम को नहीं सोचती। यहाँ लेखक उसी स्त्री मन की पड़ताल करता है।

स्त्रियों के कई प्रेमियों की कल्पना सामान्य तौर पर हम कर नहीं पाते क्योंकि जिस तरह से पुरुष गर्व से अपनी सहस्त्र प्रेमिकाओं का वर्णन करते हैं, स्त्रियाँ नहीं करती। और इसलिए इस ग़लत धारणा को बल मिलता रहा है कि स्त्रियाँ ताउम्र एक प्रेमी / पति को समर्पित रहती हैं। हर सम्वेदनशील स्त्री के मन में एक आदर्श प्रेमी भी अवश्य होता है और जिस स्त्री का जितना विस्तार होता जाता है, उसके जीवन में प्रेम की बुभूक्षा उतनी तीव्रतर होती है। शुरूआत में ही लेखक ने लिखा है कि सिद्धि कोई एक व्यक्ति नहीं, बल्कि उस जैसी कई व्यक्तित्वों का समन्वय है। ज़ाहिर है प्रेम उसके जीवन का अत्यावश्यक तत्व है जिसका आस्वादन वह स्वाभाविक रूप से विभिन्न समय में विभिन्न तरीके से करती जाती है।

साहित्य का पठन-पाठन व्यक्ति को स्वतन्त्र करता है और मुक्त करता है अपराधबोध से कि मैंने यह सोच कर / करके ग़लत किया। इस उपन्यास को पढ़ने के क्रम में पाठक का परिचय बहुत से ऐसे लोगों से होता है, जो उसे अपने से लगते हैं। उनकी सोच, उनका कर्म उसे आश्वस्त करता है कि यहाँ कुछ भी अस्वाभाविक नहीं है। सिद्धि की बात की जाए तो उसने विश्व साहित्य पढ़ा है और उसे अपनी किसी भी स्वाभाविक इच्छा पर कोई ग्लानि नहीं। वह हरेक दिन को अपने तरीके से जीती है। उसकी यही स्वछंदता इस उपन्यास को नए स्त्री विमर्श की गाथा के रूप में प्रस्तुत करती है। कहा जा सकता है कि लेखक सिद्धि के माध्यम से नारी- विमर्श की पुरज़ोर वकालत करता है, देखना ये होगा कि इस नारी-विमर्श को लेखिकाएँ और समीक्षक किस रूप में लेते समझते हैं। हाँ एक बात अवश्य है कि स्त्री मन को अच्छे से प्रस्तुत करते हुए भी कुछ बातों पर लेखक उसी धारणा का अनुकरण करता दिखाई देता है जो आज तक चला आ रहा। लेखक लिखते हैं - "पुरुष मन की एक बड़ी विडंबना है, वह कभी एकनिष्ठ प्रेम नहीं कर पाता। एकनिष्ठ प्रेम में उसे स्त्री होना होता है, जो उसके लिए नितांत मुश्किल है।" यहाँ लेखक से असहमति दर्ज की जानी चाहिए। एकनिष्ठता वैयक्तिक गुण है, जिसका स्त्री-पुरुष होने से कोई लेना-देना नहीं। एक बात और महत्त्वपूर्ण है कि कथा में सिद्धि के जीवन संघर्ष के समय के भावनात्मक पक्ष को लेखक ने ज़्यादा तवज्जो दी है, उसके संघर्ष के अन्य पक्षों को थोड़ा और बताया जाता तो रोचकता में और वृद्धि होती।

उपन्यास शुरू से अंत तक रोचकता बनाए रखता है। यही इस उपन्यासकार की विशेषता भी है कि वह बढ़िया क़िस्सागोई पैदा करता चलता है, और पाठक एक बार पढ़ना शुरू करता है तो पूरा पढ़े बिना किताब रखने का मन न करे। उपन्यास के कथाक्रम में निरंतरता ही पाठकों को बाँधे रखती है। यदि कथा में ठहराव नहीं आता तो पाठक और लेखक के बीच एक अंजाना सा रिश्ता कायम हो जाता है। संदीप तोमर इस रिश्ते को कायम करने में सफल साबित हुए हैं, कथोपकथन में भी स्वाभाविकता है। भाषा-शैली की बात की जाए कहना होगा कि भाषा सरल, सुबोध और सुगम्य है, शैली में प्रवाह है। लेकिन लेखक कहीं-कहीं सीमा से परे जाकर भी कुछ शब्दों का प्रयोग करता है, यह उपन्यास के कथानक के चलते भी हो सकता है और नायिका की जीवन शैली भी उसकी एक वजह हो सकती है लेकिन अगर बोल्ड लेखन पर बात की जाए तो कृष्ण सोबती के उपन्यास मित्रो मरजानी या फिर मृदुला गर्ग के उपन्यास चितकोबरा की भी पड़ताल की जा सकती है। हाँ अत्यधिक अंग्रेज़ी के शब्दों का प्रयोग हिन्दी के पाठक को अवश्य ही थोड़ा चकित कर सकता है, कुछ जगहों पर उनकी जगह हिन्दी शब्दों का प्रयोग अपेक्षित था। उपन्यास में अत्यधिक पात्रों के चलते कहीं-कहीं पाठक नाम भूल जाने कि ग़लती भी कर सकता है। लेकिन जागरूक पाठक अधिक पात्रों के साथ भी वहीं रोमांच महसूस करेगा जो कम पात्रों की रचनाओं के साथ यात्रा करते हुए महसूस करता है। पात्र संख्या का निर्धारण अमूमन लेखक कथानक की माँग के हिसाब से ही तय करते हैं।

कहना न होगा कि साहित्य-जगत् में नायिका के दृष्टिकोण से लिखे गए आत्मकथ्यात्मक उपन्यास पुरुष लेखकों द्वारा कम ही देखने को नज़र आते हैं। यौन-संबंधों को विषय बनाकर लिखे गए उपन्यासों में सामाजिक, राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक मापदंडो को अकसर नज़रअंदाज़ किया जाता है, लेकिन संदीप तोमर ने इन सब पर भरपूर कलम चलायी है। लेखक के इस उपन्यास का साहित्य जगत् में स्वागत किया जाना चाहिए।

000

पुस्तक समीक्षा

(कविता संग्रह)

इसी से बचा जीवन

समीक्षक : डॉ. नीलोत्पल रमेश

लेखक : राकेशरेणु

प्रकाशक : लोकमित्र, नई दिल्ली

कवि राकेशरेणु का 'रोज़नामचा' के बाद दूसरा कविता - संग्रह 'इसी से बचा जीवन' हाल ही में प्रकाशित हुआ है। लंबे अंतराल के बाद आया यह कविता-संग्रह कवि राकेशरेणु के काव्य-विवेक के प्रति उनकी प्रतिबद्धता को दर्शाता है। राकेशरेणु का यह संग्रह 25 वर्षों के बाद आया है, फिर भी कवि कम लिखकर ही संतुष्ट है। उनकी संतुष्टि ही कविता को सार्थकता प्रदान करती है। वे अपनी कविताओं में वर्तमान को पूरी शिद्दत से महसूस करते हैं, और पाठकों को भी महसूस करने पर विवश कर देते हैं।

जिस प्रकार हमारे शरीर का निर्माण पाँच तत्वों से हुआ है - 'क्षिति-जल-पावक-गगन-समीर' से, उसी प्रकार राकेशरेणु की कविताओं का निर्माण भी इन्हीं पाँच चीज़ों के संयोग से हुआ है। वे चीजें हैं - जल, मिट्टी, हवा, बादल और स्त्रियाँ, यानी 'इसी से बचा जीवन'। कवि की कविताएँ जीवन को बचाने की ज़िद करती हैं। वह जानता है कि अगर जीवन शेष रह जाएगा, तो सब कुछ बचा रह जाएगा। प्रकृति और वातावरण के संतुलन से ही नए जीवन की आस बनती है। इसी जीवन की आस को बचाने के लिए कवि अपनी कविताओं में जीवन की रवानगी को बनाए रखना चाहता है।

भारत यायावर ने राकेशरेणु के बारे में लिखा है कि "राकेशरेणु एक ज़रूरी कवि हैं। धरती, हवा और जल की तरह उनकी कविताएँ जीवन के आधार और आवश्यकताओं की उन तमाम शिराओं को अवलंब देती हैं जिनकी चेतना से समकालीन जीवन का वैभव वंचित है। वे मातृ चेतना से समृद्ध भाव सत्ता को अपनी कविताओं में जगह देते हैं और उसकी महत्ता को स्थापित करते हैं। उनकी कविताएँ सहजता के छंद में प्रवाहित उदात्त चेतना की सरल अभिव्यक्ति हैं।"

'इसी से बचा जीवन' कविता-संग्रह में राकेशरेणु की 74 कविताएँ संकलित हैं जिनमें कवि ने स्त्री, लहरें, अप्सरा, प्रेम और शुभकामनाएँ कविताओं के माध्यम से इन्हें कई कोणों से चित्रित करने की कोशिश की है। 'स्त्री' सीरीज़ में 6 कविताएँ हैं, जिनमें स्त्री के विभिन्न रूपों को कवि ने देखा, सुना और महसूसा है। स्त्री और प्रकृति को कवि ने एक-दूसरे के सहयोगी के रूप में देखा है। प्रकृति ने भी स्त्री से ही जीवन-सृजन की कला सीखी है। 'स्त्री - दो' शीर्षक कविता में कवि ने कहा है कि 'यह जो जल है' इसी ने जीवन को रचा है, इसी ने सृष्टि को रचा है। यानी पृथ्वी पर सम्पूर्ण चीज़ों का निर्माण इसी ने किया है। राकेशरेणु ने लिखा है - "क्या पृथ्वी, जल, / अकास, बतास ने सीखा / सिरजना स्त्री से / याकि स्त्री ने सीखा इनसे ? / कौन आया पहले / पृथ्वी, जल, अकास, बतास / या कि स्त्री ?"

'स्त्री - छह' कविता में कवि स्त्री होना चाहता है। वह स्त्रियों के दुख-दर्द को समझना चाहता है, महसूसना चाहता है और स्त्री मन की पुरुषवादी प्रवृत्ति से वाकिफ़ होना चाहता है। कवि स्त्रियों की पीड़ा से रू-ब-रू होना चाहता है और उस पीड़ा की दहन-भट्ठी में जलना चाहता है। कवि ने लिखा है - / "महसूस करना चाहता हूँ / वह तेज़ाबी दहन / अपने वजूद में भरोसे का हासिल है जो / योनि में ठूँसा सड़ा डंडा / गलनशील परंपरा की मर्दानगी है जिसमें / मैं स्त्री

डॉ.नीलोत्पल रमेश
पुराना शिव मंदिर, बुध बाज़ार
गिद्दी -ए, जिला - हजारीबाग
झारखंड - 829108
मोबाइल- 09931117537,08709791120
ईमेल- neelotpalramesh@gmail.com

होना चाहता हूँ। / अपने पुरुषों के किये का संताप झेलना है मुझे / अपनी स्त्रियों का दुख / हमारी संस्कृति की सड़न कौन झेलेगा ? / जो तुम नहीं, मैं नहीं / मैं स्त्री होना चाहता हूँ।"

'दशरथ मांझी' कविता में कवि ने दशरथ मांझी के जिजीविषा को अंदर से महसूस किया है। उसके अंदर पत्नी के प्रति समर्पण की भावना कूट-कूट कर भरी पड़ी थी जिसके बल पर ही उसने प्रेम की निशानी के तौर पर पहाड़ को काटकर रास्ता बना दिया था। मनुष्य जो चाह लेता है, वह करके दिखा देता है। दशरथ मांझी के संदर्भ में कवि कहता है - / "वह खड़ा होता / झरने लगते पहाड़ / तड़प उठता चट्टान का हृदय / आँखों की कौंध से / पैरों के आसपास आ खड़े होते शिलाखंड।"

'बचा रहेगा जीवन' कविता के माध्यम से राकेशरेणु ने समाज में बढ़ रही हृदयहीनता को मुखर करने की कोशिश की है। यह समाज अपनेपन को खोता जा रहा है। एक नई और डरावनी सभ्यता विकसित हो रही है, जो पूरी मनुष्यता को ही एक दिन में निगल जाएगी। हम साथ-साथ रहते हैं, लेकिन अपरिचित की तरह ही। इसमें जीवन को बचाने की संभावना ही नहीं है। रिश्तों में गरमाहट से नए जीवन का निर्माण होगा। यही जीवन नई सृष्टि का निर्माण करेगा। राकेशरेणु कहते हैं - "केवल बची रहे यह गर्मी / बचा रहे अपनापन / बचा रहेगा जीवन / अपनी पूरी गरमाहट के साथ।"

'उत्तर सत्य - दो' कविता के माध्यम से कवि ने भारतीय संस्कृति की देन को रेखांकित किया है। वह कहता है कि हम एक जनतांत्रिक देश के नागरिक हैं। यहाँ किसी के साथ भेदभाव नहीं किया जाता है। हम जो कहते हैं, वही करते हैं। हमारे कथनी और करनी में कोई फ़र्क़ नहीं है। अपने अतीत को याद करते हुए कवि कहता है - / "हजारों साल पहले / हमने दिए दुरूह शल्य कौशल / आणविक शक्ति रही हमारे पास / हमने ही बनाए विमान, राकेट, मिसाइलें / पहले-पहल / हमने कहा केवल ध्रुव-सत्य,किया सदैव सर्वश्रेष्ठ / सत्य से परे कुछ न था / श्रेष्ठता हमारी रही प्रश्नातीत!"

'अप्सरा' सीरीज की कविताओं में राकेशरेणु ने अप्सरा के माध्यम से समाज में नई अप्सराओं के उद्भव की ओर पाठकों का ध्यान दिलाया है। ये अप्सराएँ ही समाज पर काबिज हो रही हैं और सत्ता के नए मानदंड निर्धारित कर रही हैं। 'अप्सरा - तीन' में कवि कहता है - / "वह मुक्त होती है अपनी / तरलता और सरलता से / अंतरित होती नवीन काया में / नई व्यवस्थाएँ रचती है / नि:सृत होती है काम मार्ग से ।"

'अनुनय' कविता में राकेशरेणु ने संभावनाओं की तलाश की है। उम्मीद और विश्वास से सब कुछ संभव है। वह चाहता है कि सब कुछ यथावत होता रहे। प्रकृति जिस प्रकार अपनी नियति से अलग नहीं हो सकती, उसी प्रकार कवि को अनुनय में उम्मीद की नई किरण दिखाई पड़ती है। वह अनुनय करते हुए कहता है - "लौटो / पेड़ों पर बौर की तरह / थनों में दूध की तरह / जैसे लौटता है साइबेरियाई पक्षी / सात समुंदर पार से / प्रेम करने के लिए इसी धरा पर / प्रेमी की प्रार्थना की तरह / हहराती लहरों की तरह लौटो / लौटने से ही संभव हुई / ऋतुएँ,फसलें, जीवन, दिन-रात / लौटो लौटने से सिमटी हैं संभावनाएँ अनंत।"

'जड़ें' कविता में राकेशरेणु ने जड़ों की विशालता और उसके महत्त्व को बहुत ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। जड़ें जितनी नीचे होती हैं, उतनी उसकी शाखाएँ ऊपर होती हैं। दोनों का अपना-अपना महत्त्व व अस्तित्व है। माँ का प्यार और पिता का स्नेह जड़ों की तरह ही है। वे पूरे परिवार को बाँधे रहते हैं। कवि कहता है - / "जड़ें बताती हैं / वे प्रेम हैं स्वयं / बाँधे रखना चाहती हैं पृथ्वी / बाँधे रखना चाहती हैं जीवन / वे थामे रखती हैं / चट्टान, माटी, रेत / अपने स्नेहिल पाश में"

'अंधेरे समय की कविता' में कवि की चिंता कविता को बचाए रखने के लिए है। वह ऐसे दौर में जी रहा है, जहाँ जीवन मुश्किल होते जा रहा है। जब जीवन पर ही आफत आई हो, तो कविता के लिए किसके पास समय बचेगा। लेकिन समाज की स्वस्थ परंपरा के लिए साहित्य का होना आवश्यक है। वह कहता है - / "दोस्तों, यह तब हो रहा था, ठीक उसी समय / जब घना अंधकार, बेचैनी और कोलाहल पसरा था - आर्यावर्त में / इतने विकल्पहीन कभी नहीं थी दुनिया / साहित्य और समाज में।"

'संताप' कविता के माध्यम से कवि समाज में बढ़ रही अनैतिक घटनाओं से चिंतित है। वह ऐसे कार्यों से अचंभित है जो समाज को नोच-नोचकर ख़त्म करने पर तुले हैं। वह कहता है - / "उसकी चीख में शामिल / अबोध लड़की का दुख / नोच लिए जिसके फ्राक के फूल, आँखों की रोशनी / हमारे समय के पिशाचों ने / वे यहीं हैं, हमारे बीच।"

'तुम्हें प्यार करता हूँ' सीरीज की कविताओं में कवि ने प्रेम को नई भावभूमि में परिभाषित करने की कोशिश की है। वह स्त्री के प्रेम को प्रकृति के संपूर्ण सत्ता में महसूस करता है। कवि कहता है - / "तुम्हें प्यार करता हूँ / क्योंकि तुम पृथ्वी से प्यार करती हो / मैं तुममें बसता हूँ / क्योंकि तुम सभ्यताएँ सिरजती हो।"

इसी सीरीज़ की दूसरी कविता में कवि प्रेम में पड़कर अपनी प्रेमिका का नाम वर्णमाला के प्रत्येक वर्ण से एक नाम रखना चाहता है। लेकिन कवि ने 49 वर्णों का ज़िक्र किया है, जबकि हिन्दी में कुल वर्णों की संख्या 52 हैं। 49 की जगह 52 वर्णों का ज़िक्र सार्थक और सही होगा।

'इसी से बचा जीवन' कविता - संग्रह में राकेशरेणु ने प्रेम के विविधवर्णी रंगों का प्रयोग किया है, जो नि:स्वार्थ प्रेम की सत्ता का निर्माण करता है। ये रंग प्रेम के उदात्त भाव की स्थापना करते हैं। राकेशरेणु की कविताएँ समकालीन कविता में ज़बरदस्त हस्तक्षेप करती हैं। समकालीन कविता की कोई भी चर्चा या बात राकेशरेणु की कविताओं के बिना अधूरी ही रह जाएगी। 'इसी से बचा जीवन' कविता - संग्रह पेपर-बैक में आता तो ज़्यादा-से-ज़्यादा पाठकों तक पहुँचता। वैसे इसमें प्रूफ की ग़लतियाँ नहीं हैं।

000

पुस्तक समीक्षा

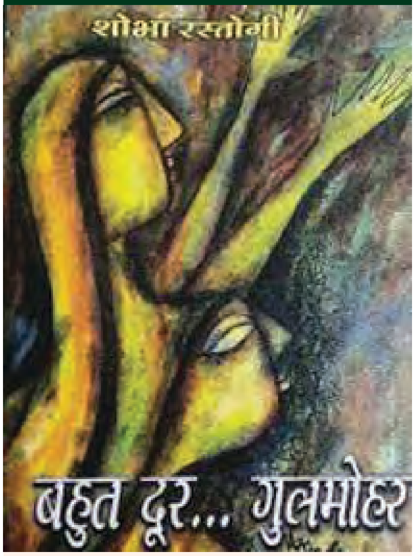

(कहानी संग्रह)

बहुत दूर गुलमोहर

समीक्षक : डॉ. उपमा शर्मा

लेखक : शोभा रस्तोगी

प्रकाशक : शिल्पायन प्रकाशन, नई दिल्ली

'बहुत दूर गुलमोहर' शोभा रस्तोगी का पहला कहानी संग्रह है। इससे पूर्व उनका लघुकथा संग्रह 'दिन अपने लिए' पाठकों एवं मनीषियों के हृदय में भरपूर स्थान पा चुका है। इस कहानी संग्रह में तेरह कहानियों का पुष्प गुच्छ अपनी महक इस तरह से बिखेरता है कि पाठक के मन पर अपनी स्थायी छाप छोड़ जाता है। भाषा का सरल सहज और आंचलिक माधुर्य रस कहानियों के आस्वाद को निश्चित ही बढ़ाता है।

यशपाल ने कहा है "कहानी सदैव समाज में रहनेवाले मनुष्य की होती है,कहानी के माध्यम से मनुष्य अपने समाज में अपनी समस्याओं पर चिंतन करता है।"

शोभा रस्तोगी भारतीय संवेदना की कथाकार हैं। इसलिए इनकी कहानियों में भारतीय परिवेश, यहाँ की समस्या और वातावरण की गमक बख़ूबी समाहित हैं। लेखिका के कहानी संसार की मुख्य धुरी मनुष्य और मनुष्यता ही है। इनकी कहानियों के पात्र जीवन की जद्दोजहद को आत्मविश्वास एवं दृढ़ता से निभाते नज़र आते हैं। वे स्वयं कहती हैं "मेरी कहानियों में जंग है, जीत है या हार -ये बात अलहदा है। उम्मीद है कहीं समाधान तो कहीं खुला प्रश्न है।"

जब कोई कहानी सिर्फ प्रश्न न उठाकर समाधान की ओर ले जाती है, तो वह पाठकों के हृदय पर व्यापक असर छोड़ती है। इस कहानी संग्रह की कई कहानियाँ प्रश्न के साथ-साथ समाधान भी छोड़ती हैं। और जहाँ खुला प्रश्न है, वो पाठक के हृदय की संवेदना को बखूबी झिंझोड़ देता है।

कहानी संग्रह की पहली कहानी बहुत दूर गुलमोहर मूलत: प्रेम कहानी है। कहानी में प्रेम के प्रति जितना तीव्र सम्मोहन है, उतना ही उस सम्मोहन से मुक्त होने की अकुलाहट भी। नायिका ये मुक्ति अपने कर्त्तव्य के लिए चाहती है। कहानी अपनी पूरी लय में आगे बढ़ती है और पाठक को अपने प्रवाह में नदी की रवानी सी पूरी तरह बहा ले जाती है। प्रेम की मीठी पींगो में झूलता पाठक कहानी की नायिका के साथ स्वयं भी पूरे रेनकोट की सैर कर आता है। प्रेम की अलमस्त बहती नदी में वो स्वयं भी पानी के बहाव सा बहता जाता है। नायिका की खुशी में खुश हो पाठक नायिका के प्रेम पर कर्त्तव्य को तरजीह में दुखित हो गर्व से ताली भी बजाता है।

"प्रेम भी किसी कुनैन की गोली से कम नहीं, जो दुनिया में रहते हुए भी इसके बोध से दूर करा देती है।"

नायिका प्रेम के अनगिनत पल कुछ लम्हों में ही भरपूर जी लेती है। वो नायक की स्मृति को पलकों में छुपा उससे विदा लेती है और इस मीठी कसक को सदा साथ रखती है।

सच ही है "प्रेम अलमस्त पहाड़ी नदी की शीतलता की छुअन सा होता है।"

नायिका भी नदी की शीतलता की इस छुअन से बच नहीं पाती और प्रेम के इस रस में भीग ही जाती है। ये कहानी यथार्थ संवेदना की आत्मचेतना पर आधारित है इसलिए इसकी गहनता और तीव्रता मस्तिष्क को झिंझोड़ देती है। पाठक कहानी के अंत में नायिका का दुख में नायिका के साथ पूरी तरह डूब जाता है। इस कहानी की नायिका अपनी चेतना से जूझते हुए दिखाई देती है। यह हृदय चेतना ही उसे उसके अतीत से साक्षात्कार कराती है और वो फेसबुक फ्रेंड रिक्वेस्ट भेज उसकी स्वीकृति की प्रतीक्षा करने लगती है।

शोभा रस्तोगी की कहानियों का आयाम व्यापक है। इन्होंने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक

डॉ. उपमा शर्मा
यमुना विहार
नई दिल्ली
110053
मोबाइल- 8826270597

विसंगतियों को कहानी का विषय बनाया है। इन्होंने जिन क्षेत्रों में समस्या देखी उन्हें अपनी रचना संसार में शामिल किया, चाहे प्रेम संबंधी समस्या हो या पितृप्रधान समाज में स्त्री की समस्या। उन्होंने धार्मिक अंधश्रद्धा से भी समाज की मुक्ति का प्रयास किया। इनके लेखन में स्त्री विमर्श का प्रमुख स्थान है। नारी और समाज में नारी की दशा पर इन्होंने खूब कलम चलाई है। इन्होंने मध्यवर्गीय मानसिकता को भी दर्शाने की कोशिश की है। इनकी संवेदना शोषितों व स्त्रियों के साथ हैं। लेखिका का रचना संसार विपुल है। निकाह कहानी की नायिका नर्गिस यही संदेश देती है कि शोषितों को समाज में जीने का वैसे ही अधिकार है जैसे की सुविधा सम्पन्न लोगों को।

स्त्री विमर्श पर समय की नब्ज़ पकड़ने में लेखिका की क्षमता अद्वितीय है।

समाज में अंधविश्वास और कुरीतियाँ फैलाकर कैसे पुरुष सत्ता नारी को बेबस और लाचार बना कर उसका दोहन कर रहा है, ये डायन कहानी में लेखिका की कलम ने बखूबी दर्शाया है। गाँव, देहात में कोई एक औरत को गाँव वाले डायन, चुड़ैल साबित करने पर लग जाते हैं। किसी की बीमारी से होने वाली मृत्यु हो, चेचक निकल आये, सूखा पड़ जाए, बाढ़ आ जाए, प्रत्येक परेशानी के लिए ये तथाकथित चुड़ैल या डायन ही तथाकथित कारण होती हैं। ये कोई विधवा, अकेली या दीन-हीन स्त्री होती है, जिसका सब कुछ छीन उसे गाँव से अलग कर दिया जाता है। इस डायन पर पत्थर भी बरसाए जाते हैं। अंधविश्वास का फ़ायदा उठा ऐसी स्त्री का भरपूर शोषण किया जाता है।

लेखिका के ही शब्दों में "स्त्री की विवशता उसकी व्यथा वेदना बन जाती है।" डायन कहानी की नायिका को डायन बता उसकी ज़मीन और बेटी छीन उसे घर परिवार से दूर कर देते हैं। शोभा रस्तोगी ने कहानियों में सिर्फ समस्या ही नहीं दिखाई हैं, यथासम्भव उन समस्याओं का समाधान भी लेखिका ने अपनी कहानियों में कुशलता से किया है। इस कहानी में नायिका की बेटी न सिर्फ अपने परिवार का पर्दाफाश करती है अपितु उसे डायन जैसे अंधविश्वास से छुटकारा दिला सम्मान भी दिलाती है।

ऐसी ख्वाहिशें जिनके पूरा होने की संभावना कम होती है उन्हें इंसान आमतौर पर दबा ही देता है। नारी तो ऐसे भी ममता और त्याग की मूर्ति होती है। कहानी 'अपने पराये' की सरोज भी अपना पूरा जीवन भाई बहन और माता पिता के लिए समर्पित कर देती है लेकिन आधुनिकता के इस दौर में रिश्तों पर स्वार्थ की काई ऐसे लिपट गई है कि साफ निश्चछल मन और समर्पण की कोई कीमत ही नहीं रह जाती। सारी उम्र अपने जीवन को समर्पित करने का प्रतिकार सरोज को सिर्फ और सिर्फ उपेक्षा के रूप में मिलता है। लेकिन आज की नारी अबला नहीं सबला है। सरोज इस रोज़ के तिरस्कार और घुटन की जगह ओल्ड ऐज होम को चुनती है। वो अपने दु:ख (अकेलेपन)को कम करने के लिए दूसरों के दु:ख बाँटने का फैसला कर लेती है।

जहाँ एक ओर इस संग्रह में गहन स्त्री विमर्श की कहानियाँ हैं वहीं दूसरी ओर 'उसका कमरा' जैसी हल्की-फुल्की प्रेम कहानी भी है। कहानी की नायिका के प्रवाह में पाठक स्वयं कब डूब जाता है उसे पता ही नहीं चलता।

कहानी 'उधड़ी सीवन' भी आज के युग के स्वार्थपरक रिश्तों की कलई उघाड़ती है। ये कहानी 'बाप बड़ा न भैया सबसे बड़ा रुपैया' कहावत को पूरी तरह चरितार्थ करती है।

पुरुष सत्तात्मक इस समाज में पुरुष की मानसिकता आज भी नहीं बदली है। जो सदियों से होता आ रहा है वो आज भी जस का तस है। परंतु शोभा रस्तोगी की कहानी 'अपनी बिटिया' की नायिका इस शोषण के ख़िलाफ़ अपनी आवाज़ उठाती है। वो चुप रहकर सब सहती नहीं अपितु शोषण करने वाले की अंतरआत्मा भी अंत में झिंझोड़ ही देती है जब वो कहती है "आपके कोई बेटी है?" और वो पुरुष अंत में सॉरी बहन बोलकर चला जाता है। कहानी अपने चरमोत्कर्ष पर पूरी तरह पाठक को प्रभावित करने में सफल होती है।

आत्महत्या कहानी बालमनोविज्ञान की शानदार कहानी है। इसमें लेखिका ने बच्ची की सहज स्वाभाविक मानसिकता को उकेरा है। मध्यमवर्गीय और निम्नवर्गीय घरों में बाहर काम करने वाली माँ अनजाने ही बच्चे का बचपन दबा देती हैं। इन परिवारों के बच्चे छुटपन से ही कर्तव्य के बोझ से दब जाते हैं। इस कहानी में बच्ची की कशमकश को लेखिका ने बहुत अच्छी तरह दर्शाया है और अंत में जीत माँ के प्यार की ही होती है। बच्ची आत्महत्या का विचार त्याग रोज़मर्रा के काम में लग जाती है।

कथा सृजन के कई मानक होते हैं और कथाकारों की कई श्रेणियाँ। कहानियों के माध्यम से अपनी व्यापक उपस्थिति दर्ज कराना भी एक जीवंत कथाकार की लेखन शैली की मौलिकता पर निर्भर करता है।

कहानी उजास का सहृदय नायक पुरुषों की सत्ता में एक अपवाद ही प्रतीत होता है जो उसके संवेग और संवेदनाओं को सम्मान देता है।

'इमारत मेरी है' कहानी का ताना-बाना वास्तव में सामाजिक यथार्थ पर केन्द्रित है जो बहुत ही प्रभावित करता है। आज भी हमारे समाज में लड़कियों को पराया धन कहकर ही संबोधित किया जाता है। कहानी की नायिका जीवन पर्यन्त परेशानी और घुटन से जूझती माँ को पिता की मृत्यु के बाद अपने पास ले आने के संकल्प से दृढ़ हो उठती है।

काली लकीरों की उजली किरन आपसी प्रेम और सौहार्द्र की कहानी है। गंगा जमुनी तहज़ीब की प्रतीक यह कहानी एक सौंधी छाप पाठक के मन पर छोड़ देती है।

यह एक पठनीय पुस्तक है। इसकी कहानियाँ रुचिकर हैं। पर वे आपके दिलो-दिमाग़ पर एक गहरा असर छोड़ जाती हों, ऐसा नहीं है। इस किताब को पढ़ते हुए आप अपनी ज़िंदगी के किसी ऐसे लम्हे में ज़रूर पहुँच जाते हैं, जिनके साथ आपकी अविस्मरणीय खट्टी-मीठी यादें जुड़ी हों, जो पुस्तक को सार्थक बना देता है।

ये कहानी संग्रह पाठक जगत् के मन में अपनी जगह बनायेगा ये मेरा ध्रुव विश्वास है।

000

पुस्तक समीक्षा

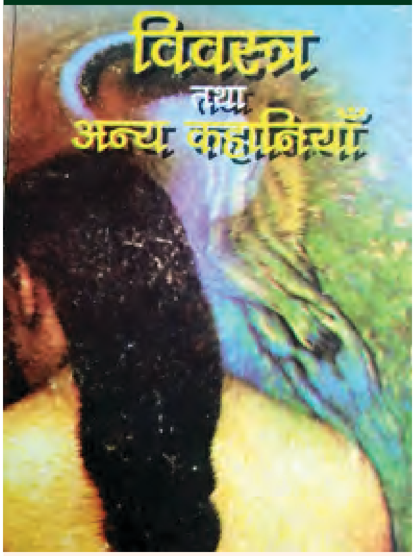

(कहानी संग्रह)

विवस्त्र तथा अन्य कहानियाँ

समीक्षक : श्रीनाथ

लेखक : प्रताप दीक्षित

प्रकाशक : साहित्य संस्थान, गाजियाबाद

अभावों और तनावों से उपजे विलगाव और अजनबीपन की चरम परिणति व्यक्तित्व विभाजन के रूप में प्रकट होती है और यही हुआ है 'गुमशुदा' में। असुरक्षा और भविष्यहीनता की पीड़ा झेलते निम्नमध्यवर्गीय गृहस्थ रघुवीर शरण के साथ। दस हज़ार की पुरस्कार राशि के लिए एक अन्य वृद्ध पुरुषोत्तम लाल को खोजने निकले रघुवीर शरण की विकट जीवन स्थितियाँ किस तरह उन्हें अपने परिवार से मुक्त कर देती हैं, यह सब इस मर्मान्तक कथा में अत्यंत कुशलता और संलग्नता से चित्रित हुआ है। औत्सुक्य का आद्यांत निर्वाह और विश्वसनीय चरमोत्कर्ष कला के तीनों क्षणों को प्रवीणता में रूपायित करते हैं। बहुमुखी अव्यवस्था, चारित्रिक अवमूल्यन से प्रदूषित मानसिकता झेलने वाले व्यक्ति की पल-पल रंग बदलती संवेदना के गतिमय वर्णों का पुनर्सृजन करने वाली प्रवाहमयता और बेधक कहानी 'तमाचा' अपनी संक्षिप्तता, क्षिप्रता और कल्पनाशीलता के गुणों के कारण अभीष्ट प्रभाव छोडती है। अनायास अभिव्यक्त व्यंग्यपरकता (जब शहर का यह हाल है ..इन कष्ट के क्षणों में भी उसे देश, समाज की चिंता थी) पूरी कहानी के मंतव्य/केन्द्रीय भाव का पूर्व संकेत दे जाता है। ठगे जाने की आशंका, भीरुता, गुंडई, काइयाँपन और धूर्तता के मनोभावों को चित्रित करने वाली भाषा और स्वत:-कथन इस अद्वितीय रचना की शक्ति है।

परोपकारी के छद्मवेष में अधेड़ और खुद की बेरोज़गारी झेलते 'भाई साहब' के व्यक्तित्व का रहस्योद्घाटन 'निर्वासित में अत्यंत कुशलता और कारुणिकता से किया गया है। औत्सुक्य का निर्वाह, चरित्र चित्रण, स्थिति संयोजन सभी कुछ जीवंत और मर्मस्पर्शी चित्र उकेरते हैं।

'फेयरवेल' में वर्गीय भेद के आधार पर सम्मान और प्रतिष्ठा के स्तरों का प्रभावशाली अंकन हुआ है। ट्रांसफ़र, पोस्टिंग, प्रमोशन और विदाई जैसे अवसरों पर की जाने वाली पार्टियों में किस सीमा तक यांत्रिकता, दाँवपेंचों और काइयाँपन के खेल खेले जाते हैं, यह सब इस रचना में बख़ूबी चित्रित हैं। अपनी 'अनहुई' विदाई पार्टी में भाग लेकर (बच्चों और पत्नी हेतु प्रमाण के रूप) रामसेवक का घर लौटना व्यथित करता है।

'नरक में लोग नहीं मरते' के केन्द्रीय पात्र आशुतोष बाबू पर अस्पताल के वार्ड में जो अनहोनी बीती, उसका क्रमिक, विश्वसनीय और मार्मिक चित्रण अस्पतालों/नर्सिंग होम के संवेदनहीन, क्रूर, स्वार्थी और लुटेरे तंत्र की सुपरचित व्यवस्था से साक्षात कराता है। अंत में 'बापू ज़िन्दा हैं' का चरमोत्कर्ष झकझोर देता है। इस तरह की कहानी लिखना बिना गहरी संलग्नता और लेखकीय प्रतिबद्धता के संभव नहीं।

श्रीनाथ
एमडीएच 2/33, सेक्टर-एच
जानकीपुरम, लखनऊ 226021, उप्र
मोबाइल- 9956398603

किसी व्यक्ति की असामयिक मृत्यु उसके अपने परिवार के सदस्यों के लिए भीषण त्रासदी बनकर आती है – पत्नी के लिए एकाकी, असुरक्षित और जीवनयापन तथा दायित्व निर्वहन की अनगिनत दुश्चिंताओं के रूप में तथा संतान के लिए एक पथ-प्रदर्शक, स्नेह वत्सल तथा आदर्श पालक-पिता की अनुपस्थिति के रूप में। यह त्रासदी स्वार्थी, निंदक तथा सर्वाधिक, संयुक्त परिवारीजनों के घृणित तथा क्रूर व्यवहार के चलते और भी विडंबनामय स्थितियों को जन्म देने वाली सिद्ध होती है। 'अनुत्तरित' इन्हीं पीड़क स्थितियों का अंकन करने वाली कहानी के अंत में सुमेधा द्वारा पूछा गया मासूम सवाल 'मम्मी पोस्टमार्टम क्या होता है?' संबंधियों के आचरण पर वेधक टिप्पणी कफ़नखसोट करता हुआ संवेदना से गहरे जुड़ता है। हिंसक गुर्राहटों के बीच सुधा का सशक्त तथा सही निर्णय कहानी के तार्किक तथा अपेक्षित निष्कर्ष के रूप में चित्रित हुआ है, जो इस कहानी को संग्रह की श्रेष्ठ कहानियों की पंक्ति में रखता है।

'उस शहर में आख़िरी शाम' कथावाचक 'वह' की अपनी शहर में बिताए गए लम्बे जीवन की स्मृति-यात्रा है, जिसे उसने पूर्ण निजता, संलग्नता, निरीक्षण क्षमता और गहरी संवेदना के साथ अंकित किया है। हाईस्कूल के छात्र के रूप में टाइप स्कूल के सीखते समय सिमी वाटसन नामक युवती से परिचय, अंतरंगता, सिमी का मंगेतर ओलिवर से प्रणयभंग, सिमी का अकेलापन, बेकारी, बनामी, बीमारी, प्रताड़ना और अंततः गुमनाम मौत यानी जीवन से मृत्यु तक के सारे चरण लेखकीय प्रतिबद्धता, विश्वसनीय कथा वाचन और संवेदनात्मक जुड़ाव के सहारे पूर्ण मार्मिकता एवं वेधकता में रूपायित हुए हैं। सिमी की प्रेमाभिव्यक्ति के छोटे-छोटे पर गहरे सघन क्षणों का पुनर्सृजन इस जीवंत रचना की शक्ति बने हैं।

'बस कि मुश्किल है हर काम का आसाँ होना। आदमी को भी मयस्सर नहीं इन्सां होना।' इन्सां होना, यानी एक कर्त्तव्यशील, ईमानदार, सहज, निस्वार्थ, उचित, स्वाभिमानी और प्रतिदान निरपेक्ष व्यक्ति होना और अपने परिवेश में ऐसे ही अन्य व्यक्तियों, स्थितियों की अपेक्षा करना, लेकिन 'विवस्त्र' के सदाशिव जैसे इन्सां के हिस्से में जो आया है, वह सिरे से आख़िर तक (परिवारजन, अख़बार वाला, वह राशन दुकानदार, टेम्पो ड्राइवर, सिपाही, विधायक, चड्ढा) स्वार्थ और उपयोगितावादी संबंधों की घेराबंदी है, जिसमें उसका महत्त्व / निजता /स्वाभिमान आदि आत्मिक मूल्य बस चूसकर फेंक देने से अधिक गिनती नहीं रखते। खीझे-थके-टूटे-पराजित सदाशिव को उसकी पहचान एक प्रयुक्त गर्भरोधक वास्तु से भी निचली स्थिति के रूप में होती है। जो पाठक को एक गहरी पीड़क और अवसाद-भरी स्थिति से गुज़रने को विवश करती है। बहुत ही सहज भाव से चित्रित स्थितियाँ और घटनाएँ गहरा असर छोडती हैं।

'गंधमादन पर एक दिन' प्रेम के बहुरंगी वर्णन के एक अत्यंत दुर्लभ, अवर्णीय, अलौकिक, दिव्य वर्ण की चित्रमय कथा है। आशीष की पुंसत्व विहीनता का रहस्योद्घाटन और हरीश का गुर्दा देने से मना करना, दो विपरीत स्थितियाँ हैं, जिनके संयोजन ने बहुचर्चित विषयवस्तु के इस विशिष्ट निरूपण ने इस प्रेमकथा को गंधमादन पर्वत से उतारकर यथार्थ के चरित्रों, जीवन स्थितियों और निष्कर्ष द्वारा अविस्मर्णीय, उद्वेलक और मर्मस्पर्शी कलाकृति बना दिया है।

अकर्मण्यता, चापलूसी, भ्रष्टाचार और जातीय भेदभाव के पंक में आकंठ धँसी प्रशासनिक कल्याणकारी व्यवस्था के आधीन कार्यरत एक सच्चरित्र, ईमानदार और कर्तव्यपारायण को पूरे कार्यस्थल में 'मूस्गंध' बसी हुई अनुभव होती है, पर उन्हें नहीं जो जो भ्रष्ट व्यवस्था के स्थायी अंग बन चुके हैं। उनके लिए तो किसी का इस गंध का अनुभव करना ही व्यंग्य और कटाक्ष का हेतु बन जाता है। एक सुयोग्य (अनुसूचित जाति के) युवक की मन:स्थिति का रूपांकन करने वाली यह अनुपम कथाकृति 'गुमशुदा', 'निर्वासित', 'फेयरवेल', 'विवस्त्र' आदि रचनाओं की परंपरा की पुष्टि करती है।

'रेबाक के जूते' निम्नमध्यवर्गीय जीवन स्थितियों और फैक्ट्री-जगत के प्रमाणिक, जीवंत और संलग्नतापूर्वक चित्र उपलब्ध कराने वाली एक और कथा बनकर रह जाती, अगर उसमें रेबोक नामी बहुराष्ट्रीय जूता-कंपनी के उल्लेख के माध्यम से भूमंडलीकरण रूपी महा व्याधि द्वारा त्रस्त, आतंकित सामान्य जन की प्रतिरोध क्षमता प्रदर्शित न की गई होती। कथा के अंत में सदाशिव की 'अकृतग्यता' का उल्लेख और खान, सतवंत और सतविंदर जैसे 'माध्यमों' के प्रति घृणा की ज्वाला का अन्दर ही अन्दर सुलगना और दिखना लेखक की प्रवीणता को स्थापित करता है। उदारीकरण और भूमंडलीकरण के नाम पर थोड़े में गुज़ारा कर लेने में संतुष्ट भारत की बहुसंख्यक जनता का भावनात्मक शोषण करने और हीन भावना से ग्रसित करने के आक्रमण के विरुद्ध पहल करने वाली रचनाओं में इस कहानी का अवश्य उल्लेख होगा।

अपेक्षित दहेज़ में कमी के कारण श्वसुर-गृह में उत्पीड़ित, अवमानित, कमाऊ होने पर भी पैसे-पैसे के लिए तरसायी जाने वाली, 'मर्द' पति के अपमानजनक, मर्यादाहीन और स्वार्थी यौन व्यवहार के चलते हर रात 'अतृप्ति के रेगिस्तान' में भटकता तन-मन और आत्मा लिए घिसटती ज़िंदगी जीने वाली संवेदनशील युवती और 'अब क्षमा याचना नहीं' की अद्भुत आत्मबल की स्वामिनी 'वह' जब परिस्थितियोंवश सामूहिक बलात्कार की शिकार होती है, तो पाखंडी समाज के अहं को तोड़ने के लिए 'घिनौने खेल' को देखकर खिलखिला उठती है और समाज और परिवार के आशानुरूप दयनीय, आत्महंता सहानुभूतिकामी अथवा अपराधी स्वभाव न अपनाकर एक नया संकल्प लेकर, अंतर्मन की आशंकाओं को झटक देती है और आत्मविश्वास के साथ मुस्कराकर नया जीवन जीने के लिए तैयार हो जाती है। इस उद्वेलक, सार्थक और सफल कहानी का आधार है छोटी- छोटी गतिमय और मर्मान्तक जीवनस्थितियों का चित्रण, जिनका अंतिम परिणाम 'उस' के सम्पूर्ण रूपांतरण हेतु बना

है। पति के निर्लज्ज शय्या-प्रकरणों की सापेक्षिता में बलात्कारी किशोरों का शर्माना और चित्रांकन 'उसे' तोष देता है और स्त्री-पुरुष संबंधों की सीमा और संभावना का मूल्याँकन करने का अवसर देता है। इस जीवंत कथा ने विवाह, अर्थ की अर्थवत्ता, मध्यवर्गीय पाखंड, यौन विज्ञान और दर्शनशास्त्र जैसे कई क्षेत्रों में पैठने का अद्भुत प्रयास किया है।

अंतर्धार्मिक विवाह के दुष्परिणामस्वरूप पारिवारिक और सामाजिक बहिष्कार, निंदा, कटोक्ति और प्रतिशोधात्मक व्यवहार को साहसपूर्वक सहने वाले कुलश्रेष्ठ- ज़ीनत दंपति की अनुपम जीवन-गाथा 'अँधेरे के ख़िलाफ़' प्रगतिशील विचारों को जीवन में उतारने के जोखिमों का परत- दर- परत उद्घाटन करती है। विवाह के बाद ज़ीनत के परिवार वालों की मुश्किलें, अंसारी साहब द्वारा तबलीग़ (मज़हबी तालीमा) और धर्म-संस्थान परिषद् द्वारा शुद्धि का प्रयास, पारिवारिक जीवन में संक्रमण तलब और दूरी, ज़ीनत को आत्मनिर्भरता से दूर रखने वाली स्थिति और उसका निरर्थकता-बोध आदि स्थितियाँ पूर्ण विश्वसनीयता और गतिमयता में चित्रित हुई हैं। अंध साम्प्रदायिकता के उभार का सांकेतिक, क्षिप्र और संक्षिप्तता में प्रभावपूर्ण वर्णन हुआ है। दंगे के परिणाम स्वरूप ज़ीनत के परिवार की तबाही और ज़ीनत की मानसिक स्थिति की कारुणिकता का अंकन पाठक की संवेदना को झकझोरकर रख देता है। ख़ुशबू की संवेदना के माध्यम से साम्प्रदायिकता की विभीषिका से परिचय, उसकी भयग्रस्तता और उसकी समस्या (पर यह क्या है?) का उद्घाटन लेखकीय सामर्थ्य की पुष्टि करता है और पाठक के मन में कई अनुत्तरित सवालों को सुलगता हुआ छोड़ जाता है।

'डबल बेड' की कथा सुपरिचित स्थितियों (अभावों, अतृप्त इच्छाओं, असुरक्षा) को संलग्नता, प्रखर निरीक्षण-क्षमता के कुशल चित्रांकन के सहारे आगे बढ़ती हुई एक अमानवीय पर पूर्ण तार्किक निष्कर्ष पर पहुँचकर समाप्त होती है। माँ के कमरे में अंटा सामान, बबली की बुझी आँखें और नायक का रुदन सभी कुछ बहुत सहज, स्वाभाविक और संतुलित रूप से हुआ है।

प्रेम के विविध रूपों में से हर एक अतुलनीय, अलभ्य और दिव्या है। 'निन्नी कब मरी थी' के प्रभास का ममेरी बहन नेहा उर्फ़ निन्नी के प्रति प्रेम का चरमोत्कर्ष देखिए – उसके इलाज के लिए हर संभव उपचार उपलब्ध कराने, भाई-भाभी के व्यंग्य-बाणों के सहने और अंततः उसकी मृत्यु के बाद का सच स्वीकार करने को तैयार नहीं प्रभास। इस क्रम में वह शिजोफ्रेनिया का मरीज़ बन जाता है। अंततः स्वाभाविक अवस्था में आने पर पूछता है – 'निन्नी वास्तव में कब मरी थी?' इस प्रश्न के माध्यम से कथानक निन्नी के बचपन से लेकर अंत तक के हर मोड़ पर उसके प्रति किए उसके प्रति किए अन्याय को सापेक्षता में रखकर उसकी व्यथा को प्रतीकात्मकता में घनीभूत करता है और इस करुण कथा को अविस्मर्णीय बना देता है।

भिखारिन युवती के ट्रेन से कटकर मरने के बाद उसकी अर्धनग्न लाश की पुष्ट छातियाँ देखकर कुत्सित यौनेच्छा से भर उठे रमेश और सिसकती पत्नी का आक्रोश ('वह बच्चे के दूध के लिए पैसे माँग रही थी। न तुमने दिए, न मुझको देने दिए') के बीच का विरोधाभास चित्रित करने वाली कहानी 'राग विषाद' भीड़भाड़ भरी भागमभाग और महानगर की यांत्रिकता से उपजी संवेदनहीन जीवनस्थितियों का बख़ूबी पुनर्सृजन करती है। निर्वाह कथ्य के अनरूप खरा और साहसिक है। 'विवस्त्र' की ये कहानियाँ सामान्य जन-जीवन के विविध प्रसंगों, उनकी संवेदना, तनाव, आर्थिक- सामाजिक- मनोवैज्ञानिक समस्याओं का यथार्थ चित्रण करती हैं। विश्वसनीय और तार्किक निष्पत्ति तक पहुँचने का प्रयास करती हैं। चरित्र-चित्रण, संवेदना की पुनर्प्रस्तुति, कथ्य के निर्वाह, भाषा-सौंदर्य, स्थिति-संयोजन, कथोपकथन और अंतिम निष्कर्ष अर्थात कथ्य-रचना के हर अंग की दृष्टि से उल्लेखनीय और स्मरणीय हैं।

000

नई पुस्तक

(यात्रा संस्मरण)

नर्मदा के पथिक

लेखक : ओमप्रकाश शर्मा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

मध्यप्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री तथा सांसद श्री दिग्विजय सिंह द्वारा की गई नर्मदा परिक्रमा पर आधारित यात्रा संस्मरण की यह पुस्तक उनके निजी सचिव ओम प्रकाश शर्मा ने लिखी है। पुस्तक को लेकर श्री दिग्विजय सिंह कहते हैं- "यह पुस्तक सिर्फ एक यात्रा वृत्तांत ही नहीं बल्कि एक ऐसा साक्षी दस्तावेज़ भी है जिसमें नर्मदा के तट पर बसने वाले लोगों के जीवन, धर्म, सामाजिक रीति-रिवाज, परंपराएँ, मान्यताएँ, उत्सवों और त्योहारों से जुड़े सभी पहलुओं का अद्भुत समावेश किया गया है। पुस्तक को पढ़ते समय उस यात्रा की स्मृतियाँ सजीव होकर आँखों के सामने आ जाती हैं और नर्मदा की मानसिक परिक्रमा हो जाती है। श्री ओ.पी. शर्मा ने अपनी शब्द साधना से लगभग 400 पृष्ठों के इस वृहद् यात्रा वृत्तांत में समूची नर्मदा परिक्रमा को समाहित कर दिया है, जो आनी वाली पीढ़ियों को न सिर्फ नर्मदा परिक्रमा करने के लिये बल्कि नर्मदा के संरक्षण और उसके प्रति अपने दायित्वों के निर्वहन हेतु भी प्रेरित करती रहेगी।"

000

पुस्तक समीक्षा

(कविता संग्रह)

हमारे गाँव में हमारा क्या है

समीक्षक : डॉ.रामनिवास

लेखक : अमित धर्मसिंह

प्रकाशक : बोधि प्रकाशन, जयपुर

हमारे गाँव में हमारा क्या है! शीर्षक काव्य संग्रह के माध्यम से युवा कवि डॉ. अमित धर्मसिंह ने हिन्दी कविता में एक नया प्रयोग किया है- काव्य शैली की आत्मकथा। इसकी कविताएँ कल्पना प्रसूत नहीं बल्कि भोगे गए यथार्थ को अत्यंत मार्मिकता से समाज के सम्मुख प्रस्तुत करती है। समाज व्यवस्था में जब धनवानों का वर्चस्व और निर्धनों का हर तरह का शोषण इस सीमा तक चला जाए कि जीवन जीने की अनिवार्य ज़रूरतें भी पूरी न हो सकें, तब जीवन जीना कितना दुष्कर हो जाता है। उसकी बानगी के तौर पर 'बचपन के पकवान' कविता में व्यक्त कंगाली से जूझते हुए भूखे बचपन का यथार्थ देखिए - "घर के सारे बर्तन टटोले जाते/खाली पाकर पटके जाते/ ग़ुस्से में तमतमाते हुए/जंगल गई माँ पर बड़बड़ाते।" बात यहीं पर ख़त्म नहीं होती। भूख एक ऐसा रोग है प्राणियों में, कि इसका उपचार स्वयं ही किसी न किसी प्रकार करना ही पड़ता है। यह भी सच है कि भूख किसी भी आदमी से कुछ भी करा सकती है। यहाँ भूख से संघर्ष करने की बेबाक अभिव्यक्ति इस प्रकार हुई है - "दो-तीन यार मिलकर/जंगल में निकल जाते/अमरूद, कच्चे आम, जामुन, रेंटे (लिसोड़े) शहतूत/गाजर, मूली, छोटी-छोटी हरी सरसों की डंठल/मौसम के अनुसार जो भी मिल जाता/चुराते और नमक के साथ चटखारे लेते।" गाँवों में काम का अभाव और बेरोज़गारी के साथ-साथ मज़दूरों को श्रम के बदले पर्याप्त मज़दूरी न मिलना भी समस्या है। लोकतांत्रिक व्यवस्था होते हुए निर्धन सर्वहारा वर्ग, समाज में सामाजिक आर्थिक न्याय दिलाने का ज़ोर-शोर से प्रचार किया जाता है। सरकारें आती-जाती रहती हैं। ग़रीब व्यक्ति वहीं का वहीं खड़ा रहता है जहाँ उसे उसके बाप-दादा छोड़कर जाते हैं। ग़रीबों के हक पर दबंगों का कब्ज़ा एक सामान्य बात है। यह सब प्रशासन की नाक के नीचे होता रहता है। ईश्वर और संविधान की शपथ लेकर सत्य और न्याय की रक्षा करने वाले बड़े अधिकारी, राजनेता सब मूकदर्शक बने रहते हैं। मानो कुछ हुआ ही नहीं। ग़रीब समाज को न्याय मिले यह प्रशासन के स्वभाव में प्राय: कम ही है। 'ज़मीन' शीर्षक कविता की ये पंक्तियाँ प्रत्येक राजनेता और बड़े-बड़े अधिकारियों की सेवाभावी कथित सोच का सत्य प्रकट करने में सक्षम हैं। देश के अधिकांशत: गाँवों में यही सब हो रहा है - "इसी प्रधान ने किसी योजना के तहत/सरकारी ज़मीन में सौ-सौ गज के प्लाटों की रसीदें काटी/एक रसीद पापा के नाम से काटी/मगर वहाँ भी दलालों और दबंगों के चलते/ किसी को कब्ज़ा न मिला/ ज़मीन की रसीदें रखी रह गई।"

जीवन का मनोविज्ञान कुछ ऐसा होता है कि सुख आएगा तो व्यक्ति, घर-परिवार को चारों ओर से आकर आनंद से लबालब भर देगा; ऐसे ही दु:ख आएगा तो वह भी चारों ओर से घेरकर अपना पीड़ा भरा कठोरतम रूप दिखाकर व्यक्ति परिवार को आहत कर देता है। अपने निकटतम संबंधियों का असमय साथ छूट जाना, व्यक्ति को मर्माहत कर देता है। कवि अभाव

डॉ. रामनिवास
एसोसिएट प्रोफेसर
हिन्दी क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान
(एन. सी. ई. आर. टी)
कप्तान दुर्गा प्रसाद चैधरी मार्ग, अजमेर
305004, राजस्थान
मोबाइल- 9549737800

और असुविधा के कारण अपने छोटे चंचल शरारती और नटखट भाई को बारात में नहीं ले जा सका। उसे घर पर ही बहका दिया हाथ में गुड़ देकर। वह नाराज़ हुआ रोता रहा खाट पर बैठकर। दुर्भाग्य से उसी रात वह बालक मृत्यु को प्राप्त हो गया। सबसे छोटा और प्रिय अचानक ऐसे साथ छोड़ देगा। यह किसी ने सोचा भी नहीं था। उसकी अंतिम स्मृति किस प्रकार झकझोरती है। कवि के शब्दों में - "सुबह सवेरे कोई/ गाँव से आया/ख़बर दी/कौसम का लौन्डा पिन्नू मर गया/सुनकर होश उड़ गए/पिन्नू आँखों के सामने तैरने लगा/टुरेल में डुबकी, हाथ में गुड़/आँखों में आँसू, खाट पर बैठा/सुबकता हुआ पिन्नू/ रह-रहकर याद आने लगा।" पेट में पर्याप्त रोटी नहीं सिर पर अपनी छत नहीं। ऐसे जीवन से क्या आशा या अपेक्षा की जा सकती है? समाज में आज भी ऐसे व्यक्ति, परिवार हैं जो ग़रीबी रेखा के नीचे जीवन जीने के लिए विवश हैं। आज भी हम देखते हैं कि धनवानों की पूरी संवेदना अपने व्यवसाय और धन के प्रति है। निर्धनों, मज़दूरों से उन्हें कोई विशेष लगाव नहीं। विभिन्न उद्योग धंधों में श्रमिक दुर्घटना के शिकार होते रहते हैं, यह सब हम दूरदर्शन और समाचार पत्रों में देखते और पढ़ते रहते हैं। दुघर्टना की जवाबदेही और ज़िम्मेदारी कोई भी लेता हुआ दिखाई नहीं देता। ऐसा क्यों हो रहा है? लोग इस पर विचार करने के लिए तैयार क्यों नहीं होते?

जिनके हाथ में सत्ता है, क्या वे इस ज़िम्मेदारी से बच सकते हैं? 'शिकंजा' शीर्षक कविता में एक युवा मज़दूर की ठेकेदार के द्वारा दर्दनाक हत्या सारी मानवीय संवेदना को ही ख़त्म कर देती है। यही है धनी और निर्धनों के जीवन का अंतर जो कवि की दृष्टि से बच नहीं पाया है- "हरियाणा के भट्टे पर/ कुछ मजदूर आँवे पर चढ़कर/आँवा चेक कर रहे थे/ तभी एक हट्टा- कट्टा जवान लड़का/आँवे में घुटनों तक सरक गया/वह चिल्लाया/ मगर ठेकेदार और उसके साथियों ने/उसे जबरन आँवे में ही धकेल दिया।" ग़रीबी एक ऐसा दु:ख दर्द है जिसमें कोई साथ नहीं देता। निकटतम सगे संबंधी भी साथ छोड़ देते हैं। रिश्तेदार भी कोई सहायता नहीं करते। डूबती नाव पर कौन सवार होना चाहता है? ऐसे में मुख्य प्रश्न यह है कि- 'ग़रीबी' को कैसे ख़त्म किया जाए? आख़िर, ग़रीब लोग किस प्रकार ग़रीबी से उपर उठ सकते हैं? इसके लिए निर्धनता के विभिन्न रूप और उनकी पहचान करना ज़रूरी है, क्योंकि आर्थिक निर्धनता और मानसिक निर्धनता की पीड़ा संपूर्ण भारतीय समाज में एक समान नहीं पायी जाती। कथित उच्च जाति की आर्थिक निर्धनता वैसी दु:खदायी नहीं है; जैसी कि छोटी जातियों में पायी जाती है। शोषित वंचित छोटी जातियों को ग़रीबी में मार तिरस्कार किस प्रकार झेलता पड़ता है इसकी एक व्यथा कथा की एक बानगी देखिए- "आज तो हद ही हो गई/एक गांडा तोड़ने पर घटानिया ने/सोनबीरी बुढ़िया पर बजाते-बजाते/गांडा ही तोड़ दिया।"

गाँवों में आज भी सर्वहारा निर्धन वर्ग, समाज और व्यक्ति अपमान, अभाव, उपेक्षा, तिरस्कार और यहाँ तक कि मारपीट तक का जीवन जीते हुए आसानी से देखे जा सकते हैं। इसमें किसी को संदेह नहीं है कि देश में एक वर्ग समाज ऐसा है जो कि जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में दूसरे वर्ग समाज का शोषण करता है और साथ ही वैचारिक मक्कारी से उसे सही ठहराता है। इस सोच का क्या किया जाए? इसलिए आज अनिवार्य हो गया है कि सभी को एक समान शिक्षा मिले। श्रमिकों से संबंधित कानूनों को ठीक ढंग से व्यवहार में लाया जाए। प्रस्तुत काव्य संग्रह का उद्देश्य भी यही है। गाँवों में अभावग्रस्त मनुष्यों के जीवन से खिलवाड़, बड़े किसान और धनी परिवार के व्यक्ति करते ही हैं; जिस पर दृष्टि प्राय: कम ही जाती है। परिणामस्वरूप शोषण और अत्याचार का दुष्चक्र चलता रहता है। कविता में दर्ज उदाहरण देखिए - "पानी से तरमतर गठड़ी/सुब्बड़ ने बेद्दू को ज़ोरामारी उठवायी/ ज़रूरत से ज़्यादा भारी गठड़ी लेकर/ बेद्दू रिपटनी डोल पर चल न सका/वह लड़खड़ाकर गिर पड़ा/बेद्दू और गठड़ी को/ नाले के पानी में डूबता छोड़कर/सुब्बड़ अपने घर आ गया।"

प्रस्तुत काव्य कृति में व्यक्ति, परिवार, समाज से लेकर व्यक्तिगत जीवन के अनेक अभाव भरे पीड़ादायी मार्मिक चित्र उकेरे गए हैं। काव्य शैली में लिखी गई यह एक लघु आत्मकथा है जो लेखक के जीवन संघर्ष को समाज के सम्मुख प्रस्तुत करती हुई अनेक प्रश्न पाठकों के मन में छोड़ती है। इसका शीर्षक स्वयं ही प्रश्न है। क्या ऐसा जीवन सभ्य शिक्षित समाज में जीवन कहा जाएगा? यदि नहीं तो पुन: एक बार फिर मनुष्य जीवन और उसके उद्देश्यों पर विचार करना होगा। यहाँ पर कवि ने बड़ी साफगोई से अपने जीवन की दु:ख भरी कथा का सच प्रकट किया है और उसमें कोई संकोच भी नहीं किया है। जीवन जैसा जिया ठीक वैसा ही लिखा भी है। यह बड़े हिम्मत की बात है। बहुत कम लेखक ऐसा लिख पाते हैं, जिसमें प्रमाणिकता हो और सहज स्वीकार हो। परिश्रम और संघर्ष दोनों एक साथ किए जाएँ तो मनुष्य सफलता प्राप्त करता है। यह अनकहे रूप में प्रत्येक कविता से किसी न किसी रूप में प्रकट हो रहा है। सभी कविताएँ आत्मकथा शैली में लिखी हैं जो कवि के अपने जीवन के साथ-साथ शोषित वंचित वर्ग समाज के जीवन की कठोरता को भी वाणी दे रही हैं। यह पूरा काव्य संग्रह ही विडम्बना, विवशता और कलेजा हूलने वाली निराशाओं से गुज़रकर रचा गया है।

प्रस्तुत काव्य संग्रह कविता के क्षेत्र में कल्पना से परे, भारतीय ग्रामीण जीवन के वास्तविक स्वरूप के दर्शन कराता है। हिन्दी खड़ी बोली की ठेठ ग्रामीण लोक जीवन की शब्दावली कथ्य को ऐसा धारदार और साकार बनाती है कि सब कुछ मन मस्तिष्क में छप जाता है। फिर भी स्थानीय कठिन शब्दों के मानक हिन्दी रूप भी दे दिए जाएँ तो पूरे हिन्दी क्षेत्र में इसकी स्वीकार्यता सहज ही हो जाएगी। अगले संस्करण में इसकी अपेक्षा है। मानवीय संवेदना से ओतप्रोत होकर जब पाठक कवि के साथ-साथ चलने लगता है तो यह किसी भी कृति की श्रेष्ठता और सफलता होती है।

000

पुस्तक समीक्षा

(कविता संग्रह)

कविता फिर भी मुस्कुराएगी

समीक्षक : डॉ. नीलोत्पल रमेश

लेखक : भारत यायावर

प्रकाशक : लोकमित्र प्रकाशन, नई दिल्ली

'कविता फिर भी मुस्कुराएगी' भारत यायावर का हाल ही में प्रकाशित छठा कविता - संग्रह है जिसमें अरसठ कविताएँ संकलित हैं। इस संग्रह की ख़ासियत है कि इसमें चित्रावली के अंतर्गत भूले - बिसरे यादों को ताज़ा करने के लिए अन्य महत्त्वपूर्ण क्षणों के गवाह रहे भारत यायावर के अनेक चित्र दिए गए हैं, जिसके सहारे कवि अपने अतीत को भी जी लेना चाहता है। यह चित्र भारत यायावर के व्यक्तित्व को उद्घाटित करते हैं। उनके व्यक्तित्व के अनेक अनछुए पहलुओं को इन चित्रों के द्वारा समझा जा सकता है। संग्राह में आठ आलोचकों की समीक्षाएँ भी दी गई हैं, जिसमें कवि भारत यायावर को अपने-अपने ढंग से आलोचकों ने देखा है, परखा है। वे आलोचक भारत यायावर की कविताओं की पड़ताल करते हुए उनकी महत्ता को व्याख्यायित करने में सफल हुए हैं। इसमें शामिल समीक्षाएँ समय-समय पर साहित्य की महत्त्वपूर्ण पत्र - पत्रिकाओं में प्रकाशित और प्रशंसित हुई हैं। ये समीक्षाएँ हैं - गणेश चंद्र राही, परमानंद श्रीवास्तव, वीरेंद्र सिंह, स्वप्निल श्रीवास्तव, गोपाल उपाध्याय, दीप नारायण ठाकुर, दिलीप कुमार अर्श और अजीत प्रियदर्शी की।

'कविता फिर भी मुस्कुराएगी' के माध्यम से भारत यायावर ने जीवन की जिजीविषा को बचाए रखने की बात की है। कविता का मुस्कुराना जीवन के लय को बरकरार रखना है। जीवन में जिस प्रकार अनेक बाधाएँ व रुकावटें आती हैं, उसी प्रकार कवि के कविता - रूपी जीवन में अनेक रोड़े हैं जिनसे सभी को सामना करना पड़ता है। इसमें कवि का मुस्कुराना कविता का मुस्कुराना है। यानी भावबोध के धरातल पर जीवन के रागात्मक भाव की अभिव्यक्ति ही कविता का जीवन है। कवि दुनिया के फेरे में न पड़कर अपनी कविता के प्रति समर्पित है। यही समर्पण कवि को अन्य कवियों से अलग करता है। इस कविता में कवि कहता है कि दुनिया का अस्तित्व भले ही मिट जाए, लेकिन कविता का मुस्कुराना जारी रहेगा। कवि कहता है -"टहनियाँ सूख

डॉ.नीलोत्पल रमेश
पुराना शिव मंदिर, बुध बाज़ार
गिद्दी -ए, जिला - हजारीबाग
झारखंड - 829108
मोबाइल- 09931117537,08709791120
ईमेल- neelotpalramesh@gmail.com

जाएँगी / हमारा अपना होने का अर्थ मिट जाएगा / कविता फिर भी मुस्कुराएगी।"

'यह भी एक युद्ध है' कविता में कवि कहता है कि बुद्ध और गांधी के देश में भाईचारे के लिए लड़ा जाना भी एक युद्ध ही है। शांति के लिए हरेक प्रयास एक युद्ध से कम नहीं है। कवि कहता है -"यह भी एक युद्ध है / जो कटुता और शत्रुता के खिलाफ लड़ा गया / यह भी एक युद्ध है / जो भाईचारा बहाल करने के लिए लड़ा गया / यह भी यह युद्ध है / जो डर और आशंका के खिलाफ लड़ा गया।"

'यह विश्वास' कविता में कवि आश्वस्त है कि मनुष्यता को रौंदने वाले लोग कवि की आस्था और आत्मविश्वास को डिगा नहीं पाएँगे। इसीलिए कवि कहता है - "कभी बुद्ध, कभी कबीर, कभी गांधी / अवतरित होते हैं हमारे अंदर।"

आस्था, विश्वास और मनुष्यता के विजय रूप में" 'यह सही दिशा नहीं है' कविता में कवि हिंदू और मुसलमान के भारत को अलग-अलग नज़रिए से न देखने की बात करता है। यह अलग-अलग नज़रिया ही हिंदू - मुस्लिम दंगे करवाते हैं। इससे फ़ायदा दोनों समुदायों में से किसी को नहीं होता है, बल्कि सत्ता के गलियारे के लोग लाभान्वित होते हैं। इस कविता में कवि कहता है - "तुम मुसलमान नहीं हो, सलीम भाई / मैं हिंदू नहीं हूँ / हम दोनों मज़हब या धर्म के सिक्के नहीं हैं / हम आदमी हैं / एक ही धरती पर जन्मे, एक ही अनाज को खाकर विकसित / हम सिर्फ मनुष्य हैं / जब तुम इस्लामी जिन्न हो जाते हो / और मैं हिंदुत्व का प्रेत होकर / तुमसे भीड़ जाता हूँ / तो हम से परे का आदमी / अट्टहास लगाता है / क्योंकि वह लड़ाई को भटका देता है / आर्थिक लड़ाई को धर्म के दलदल में फँसा देता है यह सही दिशा नहीं है सलीम भाई / यह सही दिशा नहीं है।"

'पहाड़' कविता के बहाने कवि दशरथ मांझी को याद करता है। वह कहता है कि पहाड़ का भी अपना जीवन है। वह भी आम आदमी की तरह ही है। पहाड़ की सार्थकता सड़क होने में ही है। दशरथ मांझी ने जिस आत्मविश्वास के बल पर पहाड़ के सीना को चीरकर रास्ता बनाया था वह कथा - कहानियों में जीता - जागता पात्र लग रहा है। कवि कहता है - "कल तक जहाँ पहाड़ था वहाँ सड़क है / सड़क की आँखों से देखकर / अब पहाड़ ने समझा / कि सड़क को अवरुद्ध कर वह अपने डर को जीतता रहा / पर सड़क होने में ही तो उसकी सार्थकता है!" 'कदमा की माटी से' कविता के बहाने कवि अपने गाँव को याद करता है। जहाँ कवि का जन्म हुआ, जहाँ कवि का बचपन बीता, जहाँ की माटी में लोटपोट कर वह बड़ा हुआ। उस माटी को कवि माँ कहता है। इसे कवि ने इस रूप में व्यक्त किया है - "हजारीबाग की नाक / कदमा है मेरा गाँव / यही मेरा ठाँव / इसी की धूल - मिट्टी से नहाया / बाहर जाकर कितना - कुछ गँवाया / अपनी माटी / माटी कहाँ होती है / वह तो माँ होती है"

'हजारीबाग शहर' कविता में कवि अपने गाँव कदमा को छोड़कर हजारीबाग आकर बसने, फिर वहीं के होकर रह जाने की बात करता है। इस बीच आए अनेक उतार-चढ़ाव का भी कवि गवाह रहा है। कवि कहता है - / "फिर समय बदला,रूप बदला, दृश्य बदला / डुगडुगी बजाई आकाश ने / मौसम ने घोषणा की / एक अपरिचित,अनोखा / न जाने किस देश का कवि / अवतरित हुआ मेरी आत्मा में / इस शहर को यह मेरा पहला देखना था / और मैं इसी शहर का हो गया"

'कैसे जीता है आदमी' कविता में कवि चिंतित है - अपने देश में व्याप्त अराजकता की स्थिति से। चारों तरफ का वातावरण ऐसा बना हुआ है कि इस माहौल में जीना मुश्किल होते जा रहा है। पग-पग पर बाधाएँ रास्ता रोके खड़ी हैं। उनका सामना करना और कठिन होते जा रहा है। तभी तो कवि चिंतित है - आदमी के ज़िन्दा रहने को लेकर। कवि कहता है - "अकाल में भूख से बिलखते / बाढ़ में तहस-नहस होते / संसद में चलते प्रहसन / दंगे, मार - काट / झूठ,फरेब, घृणा / के बीच / कैसे ज़िन्दा है आदमी"

'ज्वालामुखी के शीर्ष पर' कविता में कवि विश्वभर में फैलते आतंकवाद को लेकर चिंतित है। आतंकवाद पूरी मानवता के लिए घातक है। यह मानवता का दुश्मन है। इन्हें अपने मिशन के लिए प्रशिक्षित किया जाता है जिसे पूरा करने के लिए ये स्वयं को भी होम कर देते हैं। पूरी मानवता आतंकवाद से त्रस्त है। कवि कहता है - "प्रतिगामी शक्तियों का स्रोत / साम्राज्यवादी देह की बदबू / ज्वालामुखी के शीर्ष पर / बिठला रहे क्यों विश्व ?"

कवि की बेचैनी, तड़प भारत को लेकर है, वह अपने भारत को खोजता है, जिसकी कल्पना उसने की है। वह कहता है - "सबने लायक समझा, वे नालायक निकले, / जनता के तारक तो खलनायक निकले / ढूँढ़ रहा कब से यायावर उस भारत को / आम आदमी से ही कोई नायक निकले।"

'कविता फिर भी मुस्कुराएगी' में अनेक कविताएँ हैं जो पाठकों को बाँधे रखने में सक्षम हैं। वे कविताएँ हमारे आस-पास और वातावरण को ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करती हैं।

कवि की वे कविताएँ हैं -'आँखें', 'आत्मवृत्त', 'बेटे के जन्मदिन पर', 'नारी', 'कैसे कहूँ', 'आ गए हैं हम कहाँ', 'गांधी दर्शन', 'अपना अंदाज़ बदलना होगा' तथा 'धूल धक्कड़ से भरे हैं दिन'।

'कविता फिर भी मुस्कुराएगी' में भारत यायावर की कविताएँ हीं सिर्फ रहतीं, तो पाठकों की पहुँच के अंदर रहती। पाठकों को चित्रावली और परिशिष्ट से कोई ख़ास मतलब नहीं रहता है। उन्हें तो कविताएँ ही कविताएँ चाहिए। इसी की वजह से इस संग्रह का मूल्य ज़्यादा रखा गया है। ख़ैर, जो भी हो, भारत यायावर की कविताएँ पाठकों के अंदर जीवन का संचार करती दिखाई पड़ती हैं। जिसके सहारे पाठकों का एक नया संसार निर्मित होता है। शब्दों की सत्ता की शक्ति का एहसास भी ये कविताएँ कराने में सफल रही हैं। छपाई साफ-सुथरी है और प्रूफ की ग़लतियाँ नहीं हैं। इस संग्रह का स्वागत किया जाना चाहिए।

000

पुस्तक समीक्षा

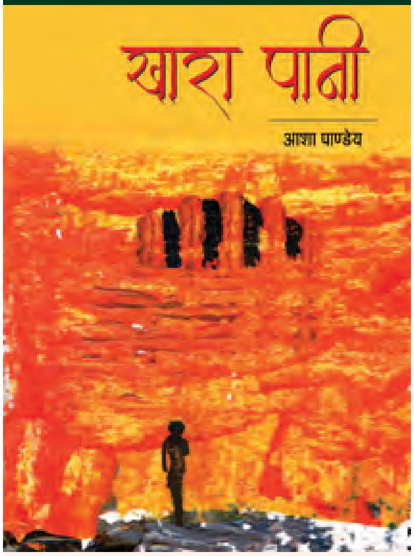

(कहानी संग्रह)

खारा पानी

समीक्षक : नीरज नीर

लेखक : आशा पाण्डेय

प्रकाशक : बोधि प्रकाशन, जयपुर

कहानियाँ सिर्फ यथार्थ का चित्रण ही नहीं बल्कि यथार्थ की कलात्मक व रोचक अभिव्यंजना होती हैं। आशा पांडे की कहानियों से गुज़रते हुये हम पाते हैं कि उनका कथ्यात्मक कौशल बहुत ही संवेदनशील तरीके से ग्रामीण जीवन में व्याप्त असमानता, भूख, ग़रीबी, जहालत और बदहाली की तार्किक पड़ताल करते हुये मनुष्यता के लिए स्पेस की तलाश करता है, लेकिन इस तलाश में ये कहानियाँ कहीं भी अभिव्यंजना व रंजकता की सतह पर कमज़ोर नहीं पड़ती हैं। जीवन की विसंगतियों के बीच इंसानियत के लिए थोड़ी सी जगह की तलाश करने के क्रम में आशा पांडे अपनी कहानियों का जो गझिन ताना-बाना बुनती हैं, वह पाठकों के अन्तर्मन में अन्त: सलिला की भाँति प्रवाहमान होने लगता है।

"खारा पानी" शीर्षक से आए आशा पाण्डेय के नवीन कहानी संग्रह की कई कहानियाँ स्त्री विमर्श की धारदार कहानियाँ हैं, जो बहुत ही मज़बूती से से न केवल स्त्रियों के स्त्री होने की पीड़ा व यंत्रणा की विवेचना करती हैं बल्कि उनसे जूझना, लड़ना और जीतना भी सीखाती है। इनमें ज़्यादातर कहानियाँ ग्रामीण परिवेश की हैं, लेकिन गाँव से शहर जाने के प्रवास की पीड़ा भी कुछ कहानियों में बहुत ही मुखर होकर प्रतिबिम्बित हुई हैं।

यूँ तो किसानों की स्थिति सम्पूर्ण देश में एक सी ही है एवं सभी जगह वे अनेक तरह की कठिनाइयों से जूझ रहे हैं, लेकिन महाराष्ट्र में लगातार होती किसानों की आत्महत्या ने सभी को चिंतित एवं द्रवित किया है। विडंबना यह है कि किसानों की जो मूल समस्या है, उसकी ओर ध्यान नहीं देकर उसे ख़ैरात देने की कोशिश की जाती है। अगर किसानों को उनकी उपज का उचित मूल्य मिले, उन्हें सस्ते दर पर बीज मिले, कीटनाशकों का छोटा डोज़ उपलब्ध हो, अनाजों के भंडारण व ट्रांसपोर्टेशन की उपयुक्त व्यवस्था हो, तो किसानों को ख़ैरात देने की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। किसान इस देश का सबसे स्वाभिमानी समुदाय है, जो देश के लिए सर्वाधिक योगदान देता है, न केवल अपने श्रम एवं कृषि उत्पादों के द्वारा बल्कि सीमा पर लड़ने वाले अपने सैनिक बेटों के द्वारा भी। संग्रह की एक कहानी "जागते रहो" इस विषय को बहुत ही पैने तरीके से उद्भाषित करती है। व्यापारियों द्वारा संतरा उगाने वाले किसानों को अनेक वर्षों से एक ही तरीके से छला जा रहा है और किसान यह सब जानते हुये भी हर बार छले जा रहे हैं। यह कैसी मजबूरी है.. कैसी बेचारगी? जितनी पूँजी वे लगाते हैं, जब उतना भी वापस नहीं मिलता, तो कर्ज में डूबा हुआ किसान अत्महत्या करने को मजबूर हो जाता है। जिस तरह से किसी जानवर के मरने पर लाश के कीड़े चले आते हैं, उसी तरह किसी किसान की आत्महत्या पर झुंड के झुंड मीडिया वाले चले आते हैं, जिनको मृतक से या मृतक के परिवार जनों से ज़रा भी संवेदना नहीं होती। वे तो लाशों के व्यापारी हैं ... लाशों से उनकी टीआरपी बढ़ती है। एक जगह एक किसान आत्म हत्या कर रहा था, कुछ लोग उसकी विडियो बनाते रहे, किसी ने उसे बचाने की कोशिश नहीं की। यह कैसा अधम समाज है, पढ़े-लिखे लोगों का, तथाकथित सभ्य लोगों का समाज? कोट, टाई लगाए लाश के कीड़ों का समाज। आशा पांडे की यह कहानी आज के भारतीय गाँव की एक दारुण कहानी है, एक भयावह सच, एक ऐसा सच जिससे आज का हिन्दी साहित्य नज़रें चुरा रहा है, जो आज के मध्य वर्गीय समाज का केंद्र बिन्दु नहीं है, जिसकी पीड़ा अलग है, जिसका दुख अलग है। किसानी जीवन की इस पीड़ा को प्रकट करती कहानी में प्रथमेश और नन्दा की एक प्रेम कहानी भी गुथी हुई है, जो मुख्य कहानी के साथ साथ चुपचाप चलती रहती है। एक ऐसी कहानी जो यद्यपि संसार के लिए शुरू होने से पहले समाप्त हो गई लेकिन आत्मा के स्तर पर जो कभी समाप्त नहीं हुई, नन्दा की मृत्यु के बाद भी प्रथमेश के जीवन के अँधियारे कोने में सुबकती हुई दुबकी हुई ज़िन्दा रही।

आशा पांडे के इस इस नए कहानी संग्रह की कई कहानियाँ नारी के अन्तर्मन की गहरी व

नीरज नीर
आशीर्वाद, बुद्ध विहार, पो अशोक नगर,
राँची – 834002 झारखंड
मोबाइल- 8797777598

सूक्ष्म पड़ताल करती है। ऐसी ही एक कहानी है, संग्रह की पहली कहानी "यही एक राह", जो एक ग्रामीण विधवा वैदेही की कहानी है। गाँव में आज भी एक विधवा को अपनी ज़मीन और अपनी देह दोनों बचानी होती है। कभी कभी देह की लूट, ज़मीन लूटने का साधन बन जाती है तो कभी ज़मीन हड़प लेना देह लूटने का साधन। इन दोनों को बचाकर चलना एक तनी हुई रस्सी पर चलने के समान होता है और इस पूरे प्रकरण में व्यवस्था दर्शक के रूप में खड़े रहकर ताली पीटने का काम करती है। आशा पाण्डेय की यह कहानी न केवल एक स्त्री की अंतर्शक्ति की पहचान कराती है बल्कि उसके संकल्प के आगे कैसे एक निकृष्ट, कायर व स्वार्थी समाज झुक जाता है यह भी दिखाती है।

इसी तरह से एक कहानी है "चीख", गाँव की एक परित्यक्ता हंसा की कहानी, जिसके जीवन में तमाम तरह के दुख, तकलीफ और कड़वाहट के बीच प्रेम मीठे जल के सोते की तरह फूटता है और उसकी ज़िंदगी को सराबोर करने लगता है, वह अपनी तकलीफ़ों को कम तकलीफदेह पाने लगती है, उसकी पीड़ा कम पीड़ादायक होने लगती है। लेकिन समाज को प्रेम भला कब मंज़ूर हुआ है .....? कहते हैं प्रेम की समाज में सबसे ज़्यादा ज़रूरत है लेकिन विडम्बना देखिये कि प्रेम समाज के लिए सबसे अवांछित तत्व है। हंसा की लाश एक दिन अपने ही बगीचे के कुएँ में पाई जाती है। प्रेम में मार दी गई स्त्री की लाश दरअसल स्त्री की लाश नहीं बल्कि समाज की लाश होती है। जब-जब एक स्त्री प्रेम में मारी जाती है, तब-तब समाज थोड़ा और मरता है। स्त्री मन की अंतरतम परतों को उधेड़ती कहानीकार की यह कहानी आद्यांत मन के कोरों को भिगोती रहती है। दुनिया में स्त्री को प्रेम से वंचित करने की ऐसी न जाने कितनी कहानियाँ लिखी गई होंगी, लेकिन आशा पाण्डेय की यह कहानी अपने विशिष्ट कलेवर और भावनाओं के मर्मांतक उत्स के लिए अलग से पहचान बनाती है।

शहर में रहने वाले बड़ी-बड़ी गाड़ियों में घूमने वाले तथाकथित सभ्य समाज के बरक्स जंगल में रहने वालों की मानवीय संवेदनाओं से परिचित कराती एक कहानी है "जंगल"। नागरीय सभ्यता जंगल में रहने वालों के प्रति एक पूर्वाग्रही अवधारणा से ग्रसित है, जो उन्हें उनके प्रति भय, शंका और घृणा से भर देती है। लेकिन कहानी का मुख्य पात्र, जो होटल में प्लेटें धोने वाला एक लड़का है जब उनके बीच फँस जाता है या यूँ कहें कि शहरी सभ्यता के सबसे चमकदार पात्रों के द्वारा छोड़ दिया जाता है तो उसे इस बात की अनुभूति होती है कि असल में जो शहर है वही जंगल है और जंगल में इंसानी सभ्यता का वास है। इस संदेश के हेतु से रचित इस कहानी में कहानीकार अपने उद्देश्य में पूर्णतया सफल रही हैं। बहुत ही ख़ूबसूरती से बुनी गई यह कहानी पूर्वाग्रह की बेड़ियों को तोड़ने व शहरों में संवेदना शून्य होती युवा पीढ़ी के चरित्र को अभिव्यक्त करने का अत्यंत सार्थक प्रयास है।

भूख जीवन की सबसे बड़ी सच्चाई है लेकिन यह भी सच है कि जैसे ही पेट की भूख मिटती है, अन्य तरह की भूख जन्म लेती है और साथ ही जन्म लेने लगते है संदेह, संशय, ईर्ष्या, लोभ, और लालच के कीड़े जो आदमी को आदमी नहीं रहने देते। संग्रह की कहानी "दंश" गाँव से शहर आए एक ऐसे परिवार की कहानी है, जिसमें पेट भरने का इंतजाम होने के बाद एक पति अपनी पत्नी पर व्यर्थ के संदेह करने लगता है और इसके कारण जमी जमाई गृहस्थी बिखर जाती है।

आशा पाण्डेय यद्यपि महाराष्ट्र में रहती हैं पर उत्तर प्रदेश उनके दिल के करीब है। रोज़गार हेतु उत्तर प्रदेश के लोगों के प्रवास की पीड़ा वह अपने दिल में महसूस करती है। संग्रह की कहानी "खारा पानी" जिसके नाम पर इस किताब का शीर्षक भी है ऐसे ही एक प्रवासी मज़दूर बच्चे की कहानी है। लड़का नौकर है। नौकर की उम्र पर ध्यान बाद में जाता है, उसके काम पर पहले। वह डाँट खाता है, झिड़की खाता है, खाना खाता है। लड़का सब कुछ पचाता है। एक चमक-दमक से भरे घर में कीमती सामानों व छोटे दिल वाले घर में वह कई कारणों से डाँट खाता है। डाँट खाते-खाते वह भ्रम में रहने लगता है कि क्या सही है और क्या ग़लत। जिसे वह सही समझता है वह ग़लत हो जाता है। एक छोटे बच्चे की जिज्ञासा को, उसके मनोभावों को, उसकी पीड़ा को एवं घरवालों का उसके साथ के व्यवहार को आशा पांडे ने जितनी सूक्ष्मता से पकड़ा है उतनी ही ख़ूबसूरती से उसे बयान भी किया है।

आशा पाण्डेय की कहानियों की विशेषता है कि वे अपनी कहानियों के कथ्य कहीं बाहर नहीं तलाश करती बल्कि अपने वर्तमान व विगत जीवन से यादों के मोती सँजोती है और उन्हें कल्पनाओं के धागों में गूँथकर कहानी रूपी माला में प्रस्तुत करती हैं।

संग्रह की एक कहानी "वसीयत" वर्तमान काल के महानगरीय जीवन में स्वार्थों एवं भौतिक लिप्सा के मध्य आपसी पारिवारिक रिश्तों के दरकने की मर्मस्पर्शी कहानी है। महानगरों में छोटे होते घरों के आकार के साथ ही लोगों के हृदय भी छोटे होते जा रहे हैं जो पारिवारिक संबंधों की मर्यादा को भी अपने भीतर समा पाने में समर्थ नहीं है।

आशा पांडे की कहानियों की विशेषता है कि ये सिर्फ समस्या गिनवाकर पाठकों की करुणा नहीं बटोरतीं बल्कि समस्याओं के समाधान भी प्रस्तुत करती हैं।

संग्रह में कुल जमा बारह कहानियाँ संकलित हैं और सभी बारह की बारह कहानियाँ पठनीयता एवं कथ्यात्मकता की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। इन कहानियों को अवश्य ही पढ़ा जाना चाहिए।

आजकल कई किताबों को पढ़ना हुआ है, सभी किताबों में प्रिंटिंग, व्याकरण दोष एवं वाक्य विन्यास की इतनी ग़लतियाँ देखने को मिलीं कि पढ़ने का मन ही उचाट हो जाता है। जबकि सभी तथाकथित बड़े प्रकाशकों की किताबें थी। यह देखकर अत्यंत प्रसन्नता हुई है कि इस कहानी संग्रह में ऐसी कोई दिक्कत नहीं है। प्रिंटिंग त्रुटिहीन है एवं प्रिंटिंग की गुणवत्ता भी अच्छी है। आशा पाण्डेय को इस कहानी संग्रह की लिए बारंबार बधाई। मैं यह आशा करता कि यह कहानी संग्रह पाठकों को अवश्य ही पसंद आएगा।

000

पुस्तक समीक्षा

(व्यंग्य संग्रह)

उफ्फ! ये एप के झमेले

समीक्षक : नवीन कुमार जैन

लेखक : अरुण अर्णव खरे

प्रकाशक : इंडिया नेटबुक्स, नोएडा

व्यंग्यकार अरुण अर्णव खरे के नवीन व्यंग्य संग्रह "उफ्फ ! ये एप के झमेले" नाम के अनुरूप सोशल मीडिया की विसंगतियों पर लिखे गए प्रहारक व्यंग्यों का संकलन तो है ही, वर्तमान को प्रभावित करने वाले अनेक विषयों को भी अपने में समेटे हुए है। व्यंग्य संग्रह में कोरोनाकाल से जुड़े व्यंग्यों में हैं - मेघदूत की वापसी, कोरोना गोष्ठी वाया व्हाट्सएप, एक शाम इनके नाम भी थाली बजाएँ और ग्यारह रस होंगे अब ज़िंदगी में। 'मेघदूत की वापसी' मिस्टर एंड मिसेज मुरारी के विदेश से लौटने पर सेल्फ क्वारंटीन होने पर मिस्टर मुरारी की मेघदूत से सुकुमारी मिसेज मुरारी तक संदेश पहुँचाने, उनका ख़याल रखने को लेकर व्यंजनात्मक वार्तालाप है। इसे मेघदूत रिटर्न्स भी कहा जा सकता है।

'कोरोना गोष्ठी वाया व्हाट्सएप' कोरोनाकाल में व्हाट्सएप समूह में सर्वाधिक चर्चित कोरोना पर आयोजित गोष्ठी पर आधारित है। इसमें साहित्यिक गोष्ठियों और उनकी साहित्यिक सामग्री, टिप्पणियों पर तंज़ भी है। बहुत सी अच्छी पैरोडीज़ भी हैं जैसे - 'कोरोना कैसी ये पहेली हाय, जो कभी न हँसाए सदा ही रुलाए।' 'एक शाम इनके नाम भी थाली बजाएँ' इस व्यंग्य में कोरोनाकाल में महिलाओं के बढ़े काम पर तंज़ है। एक वाक्याँश देखिए - "कोरोना काल की बंदियों के बीच अगर कुछ बंद नहीं है तो है महिलाओं के काम और कान बल्कि उनका काम और कानों का काम और बढ़ गया है। बिना उफ़्फ़ किए कर्तव्य समझकर किए जा रहीं हैं सब काम।" ग्यारह रस होंगे अब ज़िंदगी में कोरोना संक्रमण जैसी भयानक महामारी और इसके वीभत्स परिणामों के आधार पर इसे जीवन में ग्यारहवें रस के रूप में देखा है।

कोरोनाकाल के व्यंग्यों के साथ ही कुछ चुनिंदा शीर्षकों के साथ रोचक और मारक व्यंग्य, व्यंग्य संग्रह में समाहित हैं - ब्रह्मलोक में आउट सोर्सिंग, एक बुज़ुर्ग दंपत्ति का वैलेण्टाइन, ऑनलाइन और ऑफलाइन के दरमियाँ, ब्लू व्हेल गेम और किसान, उफ्फ ये एप के झमेले, फेसबुक चैलेंज, के. वाई. सी. ही क्यों के. वाई. बी क्यों नहीं और बाज़ारवाद की चिंता में दुबले होते बुद्धिजीवी।

'ब्रह्मलोक में आउट सोर्सिंग' में मुरारी जी और नारद जी के वार्तालाप के माध्यम से आउट सोर्सिंग पर तंज़ है साथ ही ब्रह्मलोक में आउटसोर्सिंग से तैयार माल अर्थात् मनुष्यों की धरती पर डिलेवरी और विभिन्न कैटेगरी को विभिन्न पंच के माध्यम से दर्शाया गया है। "उस पुतले को क्या हुआ जिसमें अभी जान ही नहीं पड़ी लेकिन उछल रहा है .. उसमें कुछ गड़बड़झाला है .. बगल में रखे महिला के पुतले को देखकर उछल रहा है। इसे किसी आश्रम का हेड बनाकर भेज देते हैं ...।"

'बुज़ुर्ग दंपत्ति का वैलेण्टाइन' रामविभूति सिंह और उनकी पत्नी सुहासिनी के जीवन सफ़र और पारिवारिक माहौल पर मार्मिक व्यंग्य है। यह उम्रदराज दंपत्तियों की भावनाओं उनके प्रति पारिवारिक-सामाजिक रवैये को पूरी संजीदगी के साथ चित्रित करता है। 'ऑनलाइन और ऑफलाइन के दरमियाँ' में व्यक्ति सोशल मीडिया से कितना प्रभावित है और उसके सोचने की दशा और दिशा में कैसे परिवर्तन होता है यह प्रश्न बहुत मुखर तरीके से उठाया गया है। 'ब्लू व्हेल गेम और किसान' में ब्लू व्हेल की तरह मिलने वाले घातक, असहनीय टास्क जो किसान को करना पड़ते हैं उस पर मार्मिक चर्चा है। अंतिम टास्क में जब वह हार जाता है तो टीवी पर आत्महत्या की ख़बरें चलने लगती हैं।

शीर्षक व्यंग्य 'उफ्फ ये एप के झमेले' आई.टी. सिटी में रहने लगे बटुक जी के सामने तकनीक के बढ़ते चलन के कारण किस तरह समस्याएँ पैदा होती हैं और तरह-तरह के एप्स

नवीन कुमार जैन
ओम नगर कॉलोनी, वार्ड नं.-10,
बड़ामलहरा, जिला - छतरपुर, मध्यप्रदेश,
पिन - 471311
मोबाइल- 8959534663

कैसे नकारात्मक रूप से उनके जीवन में हलचल पैदा करते हैं, उनका रोचक और तथ्यपरक विवरण इस व्यंग्य में है। व्यंग्य में गुदगुदाहट है, मर्म है, आशा है, प्रेरणा है और अंततः सुकून की तलाश करते बटुक जी हैं।

'फेसबुक चैलेंज' में एक सप्ताह तक फेसबुक से दूर रहने का चैलेंज है, जो बटुकनाथ जी तमाम कोशिशों के बाद भी नहीं निभा पाते हैं। सोशल होने के ताने-बाने में आदमी कितना उलझ गया है, इस व्यंग्य के माध्यम से एक अप्रत्यक्ष अपील भी है अपने मन पर नियंत्रण की। 'के. वाई. सी. ही क्यों के. वाई. बी क्यों नहीं' में नो योर कस्टमर की तरह नो योर बैंक की जानकारी के माध्यम से बैंकों की धांधली, दिवालियापन पर तंज़ है। 'बाज़ारवाद की चिंता में दुबले होते बुद्धिजीवी' में बाज़ार व्यवस्था, उसके जन जीवन पर प्रभाव और बुद्धिजीवियों की बेसिर-पैर की चिंता पर व्यंग्य है।

संवेदना के स्तर पर जो व्यंग्य झकझोरते हैं, उनमें हैं - 'नन्हे-मुन्ने तेरी मुठ्ठी में क्या है', 'बच्चों की ग़लती', थानेदार और जीवनराम', 'चयन', 'मानव बमों का पश्चाताप', 'मूल्यों की लड़ाई', 'राजपथ और तोता मैना संवाद', 'झूठ बोलना कला है', 'लोचा लाइफ सर्टिफ़िकेट का', 'बेमानी होती सीमा' और 'ग़रीबी बड़े काम की चीज़ है'। इन व्यंग्यों में पीड़ा है .. बदहाल अस्पताल में पड़े किसी नन्हे-मुन्ने की मुठ्ठी में चंद साँसें हैं .. तो असंवेदनशील व्यवस्था के मायाजाल में कोई थानेदार किसी दुष्कर्म पीड़िता को नेता के बच्चे की ग़लती को अपराध मुक्त करने जीवनराम जैसे मूर्खों को मोहरा बनाते हैं। कहीं योग्यता पर वंशवाद, जातिवाद का चयन भारी है, तो कोई आत्मघाती आतकंवादी अपने कृत्य पर पश्चाताप करने को मजबूर है। कोई नेता आचार संहिता का उल्लंघन अनैतिक मानता है, तो उसके कार्यकर्ता नैतिक आचरण के चलते उसे छोड़ कर चले जाते हैं पर जब वह मूल्यों पर अडिग रहता है, तो पुनः कुछ सत्य के साथ खड़े हो जाते हैं।

'राजपथ और तोता मैना संवाद' में चुनावी मौसम की ज़हरीली हवा पर तीखा व्यंग्य है। 'झूठ बोलना कला है' में झूठ बोलने की मनोदशा, हावभाव के विश्लेषण के साथ ट्रम्प और झूठ के आँकड़ों पर गम्भीर व्यंग्य है। 'लोचा लाइफ सर्टिफ़िकेट का' अच्छे-भले आदमी का जीते जी जीवन प्रमाण पत्र और पिछले वर्ष का भी प्रमाण पत्र माँगने वाली व्यवस्था पर व्यंग्य है। 'बेमानी होती सीमा' में ध्वस्त होती सीमा, टूटती मर्यादाओं पर लेखक का चिंतन व्यंग्य के रूप में उभरा है। 'ग़रीबी बड़े काम की चीज़ है' में अच्छे पंचों के माध्यम से वर्गभेद की विसंगति दर्शाई गई है। नारों, वोटों, संवेदनाओं, योजनाओं और अब तो शोध के लिए भी ग़रीबी ज़रूरी है।

कुछ चटक रंगों जैसे खिले- खिले, गुदगुदाते हुए व्यंग्य जो इस संग्रह को एक अलग टच देते हैं, उनमें प्रमुख हैं - 'बसन्त, मोहतरमा और मैं', 'विशेषण का संज्ञा हो जाना', 'पाओ बेशरम हँसी अनलिमिटेड', 'एक गीत की ताक़त', 'चड्डी का ग्लोबल होना', 'प्रेरित होने का आनंद', 'मुरारी जी और मी टू', 'ज़ुबान रिपेयर सेंटर', 'रचना की मार्केटिंग', 'मुरारी जी का रोड शो', 'ऊँची फेंकने का उत्सव है चुनाव', 'खेलों की दुनिया के रायचंद', 'प्रेक्टिकल रिश्ते', 'नेता जी की शोकसभा', 'न्यूटन का तीसरा नियम और इंटरव्यू', 'स्मार्ट होने का दुख', 'औरतों को समझना आसान नहीं', 'वास्तु का नया फंडा', 'तपस्या से तौबा', 'कच्चा चिट्ठा पक्का चिट्ठा', 'हम सब थोड़े-थोड़े बुद्धु हैं', 'एक कवि की प्याज डायरी' और 'अजब मुहावरे, ग़ज़ब मुहावरे।'

रसिक स्वभाव के एक साहित्यकार को सोशल मीडिया की उसकी दोस्त कैसे चूना लगाती है उसपर रोचक व्यंग्य है - 'बसन्त, मोहतरमा और मैं'। 'विशेषण का संज्ञा हो जाना' में संज्ञा सर्वनाम की उलझन के बीच 'सुशील' बहू के रूप में समलैंगिकता पर बात है। 'पाओ बेशरम हँसी अनलिमिटेड' में ब्रेस टूथपेस्ट में इपोमोएया अर्थात बेशरम के मिलावट से निर्लज्ज हँसी, पाने एवं एडवरटाइजिंग की विसंगति पर व्यंग्य है। 'एक गीत की ताक़त' में संगीत से दूर भागते पति पर संगीत के सकारात्मक प्रभाव को गुदगुदाते अंदाज़ में बयाँ किया गया है तो वहीं ऑक्सफ़ोर्ड शब्दकोश में चड्डी शब्द के शामिल होने से उपजा व्यंग्य है - 'चड्डी का ग्लोबल' होना है।

'प्रेरित होने का आनंद' में जिनका कोई नहीं होता उनका मोबाइल होता है और किसी मित्र के प्रेरणात्मक स्टेटस को कैसे कॉपी पेस्ट करके प्रेरित होकर दूसरों को प्रेरित किया जा सकता है इस प्रवृत्ति पर व्यंग्य है। 'मुरारी जी और मी टू' में टीनएज में मुरारी जी की नादानियों और उनके प्रौढ़ावस्था में मी टू के आरोप के डर का हास्यास्पद चित्रण है। 'ज़ुबान रिपेयर सेंटर' में कंठव्य, तालव्य आदि चुनावी मौसम की गालियों को ज़ुबान में नियोजन के माध्यम से इलाज पर व्यंग्य है।

रचना की मार्केटिंग, मुरारी जी का रोड शो, ऊँची फेंकने का उत्सव है चुनाव, नेता जी की शोकसभा, एक कवि की प्याज डायरी इन व्यंग्यों में बात है कविता के प्रोडक्ट होने की, कविता की चोरी और उसकी मार्केटिंग की। चुनावी चहल पहल में नेताओं के कारनामों, रोड शो की प्लानिंग की। नेताजी जी की शोक सभा में व्यंग्य बाणों से उनके व्यक्तित्व की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। कवि ने प्याज के बढ़ते दामों पर डायरी में मार्मिक दोहे लिखे हैं। एक उदाहरण -

"नहीं भाग्य में दाल थी, प्याज रही इतराय। रूखी-सूखी रोटियाँ डुबो, नीर से खाय"

खेलों की दुनिया के रायचंद, प्रेक्टिकल रिश्ते, न्यूटन का तीसरा नियम और इंटरव्यू, स्मार्ट होने का दुख, लोचा लाइफ सर्टिफिकेट का, औरतों को समझना आसान नहीं, वास्तु का नया फंडा, तपस्या से तौबा, कच्चा चिट्ठा पक्का चिट्ठा, हम सब थोड़े-थोड़े बुद्धू हैं, अजब मुहावरे, ग़ज़ब मुहावरे, ये व्यंग्य मानव स्वभाव की विभिन्न प्रवृत्तियों पर आधारित हैं। इनमें तकनीक, समसामयिक नेटीजन प्रवृत्ति, गेम्स, सोशल मीडिया इनकी शब्दावली पर लेखक का अध्ययन, अनुभव और भाषा की संप्रेषणीयता पर लेखक का कौशल नज़र आता है।

000

पुस्तक समीक्षा

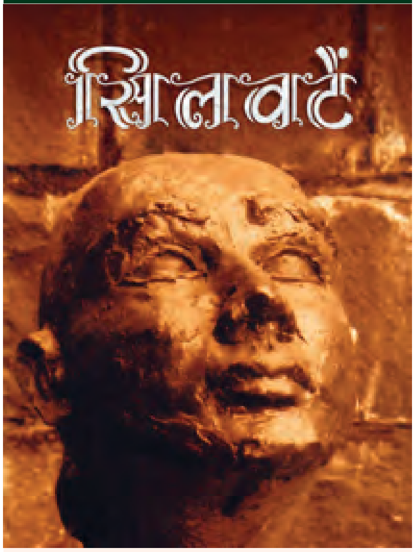

(कहानी संग्रह)

सिलवटें

समीक्षक : सरोजिनी नौटियाल

संपादक : विकेश निझावन

प्रकाशक : प्रलेक प्रकाशन प्रा. लि., मुम्बई

सरोजिनी नौटियाल
176, आराघर, देहरादून
उत्तराखंड 248001
मोबाइल- 9410983596

विकेश निझावन का कहानी संग्रह 'सिलवटें' की कहानियाँ मन के बंद कपाटों में भूली-बिसरी या अधिक सही बोलें, तो दफ़न हुई ख़ामोशियाँ, जिनको हम सुन कर भी अनसुना कर देना चाहते हैं, को सुनने की कशिश पैदा करती हैं। फिर हम बड़ी देर तक खुद को सुनते हैं, जो हुआ, वह क्यों हुआ। हमने कहाँ पर खुद को खुद से छिपाया, क्या-क्या बंद आँखों से देखा, इसकी पड़ताल करने लगते हैं।

संग्रह की अधिकांश कहानियाँ काल की दृष्टि से आज़ादी के बाद के दो दशकों के बीच की हैं। स्थान पंजाब का इलाका है। वातावरण गाँव, खेतों में बिखरी तथा क़स्बे, शहरों की गली-मुहल्लों में रेंगती ज़िंदगियों की जीने की जद्दोजहद का। नई-नई मिली आज़ादी और पंजाब, स्वाभाविक है कि मुल्क के बँटवारे के दर्द से भी भीगी हैं कहानियाँ। कहानियाँ बहुत कुछ कहती हैं। कई विषयों को उठाती हैं। पाठक पढ़ता चला जाता है। कहानीकार की अपनी विशिष्ट शैली में छू कर गुज़र जाने वाली अनुभूतियों का स्पर्श कराती कहानियाँ, बीते वक्त की राख को ढोती कहानियाँ, झाँकते पैबंदों की कहानियाँ, मृत्यु से संवाद करती कहानियाँ, उजाले के अंदर के खौफ़नाक अँधेरों की कहानियाँ, अपनों के छल को बयाँ करती कहानियाँ, व्यवस्था की संवेदन शून्यता से लहू जमाती कहानियाँ, अपने-अपने हिस्से की धूप बटोरती जिंदगियों की कहानियाँ और अनकहे जज़्बात को शब्दों में पिरोती कहानियाँ।

संग्रह की हर कहानी कुछ अलग प्रस्तुत करती है, जीवन के कई रंग बिखरे हैं कहानियों में, विषय-वस्तु अलग है लेकिन उनकी आत्मा एक ही है, कहानी दर कहानी बदलने से व्यंजन भले ही अलग हो जाता है, लेकिन ज़ायका वही रहता है, बस तस्वीर बदल जाती है, शेड वही रहता है। स्लेटी, कुछ धुँधला-धुँधला, मगर मर्म यह है कि संवादों की धुंध भी सत्य को ढाँप नहीं पाती। सत्य अपनी समूची विद्रूपता और भयावहता से कहानी में पसर जाता है और पात्र के साथ पाठक भी ख़ामोश हो जाता है। उदासी घेर लेती है उसे। हमने कब इतना कुछ इकट्ठा कर लिया कि बोझ बना दिया है खुद के लिए।

कहानियों में औरत है, उसकी पारिवारिक स्थिति है। विसंगतियाँ हैं, लाचारी है। बेटी की बेबसी जब-जब घर की लाचारी से जा मिलती है, तो परिवार के मनोविज्ञान में डर और आशंका की जो घुटी-घुटी हवा व्याप्त हो जाती है, उसकी घुटन पाठक को भी अपनी गिरफ़्त में ले लेती है। मन का भय असंवाद की अभेद्य गुफा में ढकेल देता है घर के लोगों को। सामना करने का साहस कहीं ढूँढ़े नहीं मिलता। ओट और आड़ की लुका-छिपी चलती रहती है। सब कुछ किसी चमत्कार की आस के भरोसे रह जाता है। और, बेटी के मायके आने की आहट से ही घर को साँप सूँघ जाता है। कहीं बेटी मजबूर है तो कहीं माता-पिता। बिट्टो, रज्जो, विभा दी हमारे समाज के हर चौथे घर में मिल जाएँगी। उनकी दशा जानने के लिए किसी संवाद की ज़रूरत नहीं है। उनकी चाल ही सब कुछ बता देती है। वे चलती नहीं फड़फड़ाती हैं। और, इसी फड़फड़ाहट से घर में भूचाल आ जाता है।

एक वो औरत भी है जिसका पति उसको पहरेदारी में बैठा कर दूसरी औरत के साथ ऐयाशी करता है। दोनों औरतें मजबूर हैं। अपने अस्तित्व के लिए दोनों को उस आदमी की ज़रूरत है।

एक किस्म उन औरतों की भी है जो घर में हुई मुखिया की असामयिक मौत से उपजे हालात से दो-दो हाथ कर रही हैं। ज़िंदगी के कई तकादे होते हैं तो मौत के भी कम नहीं। पिता की

तेरहवीं-बरसी में उजड़ी माँ और शून्य में ताकती विधवा भाभी बेटियों-बहनों को दान देती हैं या मृतात्मा की ओर से उनके तकादे को चुकता कराती हैं?

संग्रह में एक औरत वह भी है जो पति की साँसों पर भी पहरा बैठाए है। पति जाने क्या-क्या दाँव पर लगाता रहता है-माँ-बाप, यार-दोस्त, यहाँ तक कि अपनी साँसों को भी, और जब कुछ नहीं बचता तो अपने खोखले वजूद को भी लगा देता है। 'सिलवटें' में पत्नी के व्यवहार से पति कुंठित ही नहीं, आतंकित भी रहता है। समझौतों के बोझ से वह टूट जाता है। 'एक टुकड़ा ज़िंदगी' में पत्नी के रवैये के कारण दिवंगत छोटे भाई की विधवा की यथोचित और यथेच्छ सहायता नहीं कर पाता। बस मन मसोस कर रह जाता है।

कहानियों में एक औरत 'कीड़ा' और है। दो नावों पर सवार। छल की पतवार से ज़िंदगी के रुके पानी को ठेलती हुई। कभी भी डूब सकती है। समझ में नहीं आता कि वह अपाहिज पति से झूठ बोल रही है या खुद से?

कहानियों में बनती हुई औरत भी है। 'केवल एक सीढ़ी की जगह' में माँ विहीन घर में सब की, यहाँ तक कि खुद की भी माँ बनती बेटी है तो 'चीरहरण' में पिता विहीन घर में अपनों से ही अपनी इज़्ज़त का मखौल बनता देख बेटी। पिता और भाई विहीन घर को बाहर वालों के लिये बंद तो किया जा सकता है लेकिन जब अपने ही आते-जाते गाड़ी मोड़ कर जब-तब धमकने लग जाएँ, वह भी सोद्देश्य, तब घर की बेटी चौराहे पर लगी प्रतिमा हो जाती है। उसमें कोई कालिख लगाएगा तो वही मैली होगी, लगाने वाले का तो पता भी नहीं चलता।

'गुल्लक' में उस औरत की बात कही गई है जिसे पति पैसा कमाने की मशीन समझ बैठा है। वह उसे तब भी नौकरी करने के लिये विवश करता है जबकि औरत ने नौकरी के कारण बच्चों से दूर रहने के नफ़े-नुकसान की सच्चाई जानने के बाद नौकरी छोड़ने का साहसिक निर्णय ले लिया था। माँ के नौकरी करने की कीमत कभी-कभी कितनी अधिक होती है। माँ का साथ न होना बच्चों के लिये कितना डरावना हो सकता है, कहानी बड़ी संजीदगी से इस हक़ीक़त को बयाँ करती है।

कहानियों में केवल स्त्री विमर्श है, ऐसा नहीं है। पुरुष विमर्श की भी बड़ी सशक्त व्यंजना हुई है। हमारे आस-पास केवल ऐसे परिवार ही नहीं हैं जहाँ केवल स्त्रियों का ही दम घुटता है बल्कि बहुत सारे ऐसे घर भी हैं, जहाँ, पिता, पति, भाई या फिर बेटे के रूप में पुरुष अपने उत्साह-उमंग, चाह-इच्छा और विवेक-क्षमता का गला घोंट कर लाश बन कर जी रहा है। गाँठ जैसी कहानियाँ पुरुष विमर्श के कई अनचीन्हे पहलुओं की पड़ताल करती हैं।

संग्रह में ऐसी कहानियों की भी अच्छी-ख़ासी संख्या है जिनमें किशोर और युवा मन की ग्रन्थियों की पड़ताल की गई है। घर की समस्याएँ, ऊँच-नीच, माता-पिता की लाचारगी, पारिवारिक-सामाजिक परिवेश का दबाव और स्वयं की असमर्थता युवा होते बेटे को कितने कशमकश में रखते हैं कि वह हर आहट से मायने निकालने लगता है। 'न चाहते हुए' का बिट्टू, 'एक लकीर दर्द की' का अतुल, 'महादान' का अंशुमन, 'एक और इबारत' का प्रफुल्ल, 'जाने और लौट आने के बीच' का बिट्टू और 'उसकी मौत' के अतुल की घुटती साँसें और धुआँ-धुआँ मन युवाओं की उस मनोदशा को सामने रखता है जिसे हमारे परिवार चर्चा का विषय तक नहीं समझते, समाधान निकलना तो बहुत दूर की बात है। नतीजा अवसाद, आत्महत्या।

सामाजिक सरोकारों पर लिखी 'मज़मेबाज' और 'आश्रम' मानवीय चेतना-शून्यता और सामाजिक मनीषा के पाखंड को उजागर करती हैं तो 'मछलियाँ' वर्तमान साहित्य-लोक' की कृत्रिम और खोखली नफ़ासत का पर्दाफाश करती है।

समग्रता से देखें तो कहानियाँ नितान्त वैयक्तिक अनुभूतियों और सामाजिक चेतना के विस्तार के बीच अलग-अलग कोणों से जीवन का चित्र उपस्थित करती हैं। कहानियों में अधिकांशत: परिस्थितियों से समझौते की विवशता है, जो मन को बोझिल करता है। कुछ कहानियों जैसे 'मातृछाया' और 'आश्रम' में प्रतिकार का स्वर है जो बुझे चित्त को ऊर्जा देता है। एक ख़ास बात जो हृदय को रुलाती है और डराती भी है, वह है बेटियों का दर्द। कहानियों में बेटियों की जो तस्वीर उभरी है, वह सामाजिक चिंतन को नई दिशा में मोड़ने के लिये झकझोर रही है। कुल मिला कर 'सिलवटें' समाज के मनोविज्ञान में पड़ी उन सिलवटों को दिखाती है जो दस्तूर और रवायत के नाम पर खुद के ख़िलाफ़ चलने से पड़ती हैं।

कथ्य के अनुरूप शिल्प भी पाठक को कथाप्रवाह से बाँध लेता है। कहानीकार वर्णन के फेर में न पड़ कर, संकेतों से काम चलाता है। छोटा-सा इशारा, बाकी पाठक की कल्पना और अनुभव पर, आख़िर पाठक भी तो इसी समाज का चर है, लेखन का यह शिल्प कहानी को कस देता है और बहुत कम शब्दों में ही पात्र बहुत कुछ बयाँ कर देते हैं। लेकिन कहीं-कहीं शब्दों की यह कंजूसी कहानी में उलझाव लाती है।

कहानियों की भाषा आम बोलचाल की है। भाषा में स्थानीयता की छाप दिखाई देती है। लेखन में स्वाभाविकता है। कहीं अतिरंजना नहीं। घटनाक्रम को अपनी गति से चलने देने का धैर्य है। संवाद चुस्त और चुटीले हैं।

विकेश जी ने कम शब्दों में बहुत कुछ कहने-समझाने के अपने अद्‍भुत कौशल का परिचय दिया है। कोई शब्दाडम्बर नहीं, कोई क्लिष्टता नहीं। सीधी-सादी भाषा और बेबाक शैली में गहरी बात कहने का कौशल दिखते ही बनता है। 'जैसे ताबूत से आवाज़ आई हो' या 'कब्र से आई हो जैसे' वाक्यांश बात की पूरी भूमिका बाँध देते हैं और पात्र के साथ-साथ पाठक भी स्वयं को तैयार कर लेता है- किसी विस्फोट के लिए। कहानियाँ फैली हुई नहीं, बँधी हुई हैं जिनके माध्यम से कहानीकार ने जीवन सत्य के मनोवैज्ञानिक पहलू का संप्रेषण किया है, कहानियाँ सोचने को विवश करती हैं। विश्लेषण के लिए प्रेरित करती हैं और अनायास पाठक चर्चा करने के लिए उद्यत हो जाता है।

000

केंद्र में पुस्तक

(उपन्यास)

दृश्य से अदृश्य का सफ़र

लेखक : सुधा ओम ढींगरा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

प्रकाश कांत
155, एल. आई. जी.
मुखर्जी नगर, देवास 455011 मप्र
मोबाइल- 9407416269
ईमेल- prak.kant@gmail.com

उर्मिला शिरीष
ई-115/12, शिवाजी नगर, भोपाल-462016,
मो.-9827062211
ईमेल : urmilashirish@hotmail.com

मनीष वैद्य
11 ए, मुखर्जीनगर, पायनियर चौराहा,
देवास (मप्र) पिन 455 001
मोबाइल - 98260 13806
ईमेल - manishvaidya1970@gmail.com

डॉ. रश्मि दुधे
15, राम गंज, जैन मन्दिर रोड
खण्डवा (म.प्र.) 450001
मोबाइल- 9479432226, 7987642051

प्रकाश कांत

उर्मिला शिरीष

मनीष वैद्य

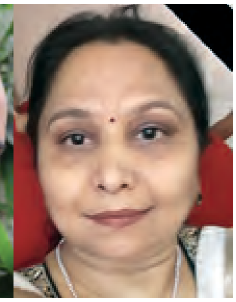
रश्मि दुधे

कोरोना महामारी की पृष्ठभूमि और एक उपन्यास !

प्रकाश कान्त

वैसे प्रवासी लेखन काफ़ी समय से होता रहा है। जो भी भारतीय पिछले ढाई-तीन सौ साल में विभिन्न कारणों से अलग-अलग देशों में जाकर बसे मन से या बेमन से उन्होंने अपनी जड़ों से उखड़ने के दर्द से धीरे-धीरे ख़ुद को मुक्त कर नए देश-काल, वातावरण में ढालना शुरू किया था। प्रवासी भारतीयों की एक श्रेणी उन लोगों की भी रही जो औपनिवेशिक दौर में अंग्रेज़ों द्वारा मज़दूरी के लिए जबरन नहीं ले जाए गए थे बल्कि रोज़गार के बेहतर अवसरों की तलाश में ख़ुद गए थे और फिर वहीं के नागरिक हो गए। उन देशों के आर्थिक निर्माण में उनका भी छोटा-मोटा योगदान रहा। इन दोनों तरह के प्रवासी भारतीयों ने अपने जीवनानुभवों को रचनाओं की भी शक्ल दी। जिसे मोटे तौर पर प्रवासी साहित्य कहा गया। अफ़सोस कि इस साहित्य पर शुरू में उतना ध्यान नहीं दिया जा पाया जितना कि दिया जाना चाहिए था! कमलेश्वर ने विगत सदी के सातवें दशक में 'सारिका' के माध्यम से इस दिशा में महत्त्वपूर्ण काम किया! अब तो ख़ैर प्रवासी लेखन बड़े पैमाने पर हो ही रहा है इसके अलावा वह मुख्य धारा के पाठकों तक पहुँच भी रहा है! प्रवासी लेखन पर पत्रिकाओं के विशेषांक निकल रहे हैं! वैसे, लेखन को प्रवासी-अप्रवासी जैसे खानों में बाँटना आपत्तिजनक लग सकता है, लेखन आख़िर लेखन होता है। लेकिन, कभी-कभी सिर्फ़ पहचाने जाने की सुविधा के लिए इसे इस तरह वर्गीकृत नामों से देखा जाने लगता है! हिन्दी के प्रवासी लेखन ने एक बड़ा काम किया है, उसने भाषा के रूप में हिन्दी की पहुँच में विस्तार तो किया ही है साथ ही विदेशों के भिन्न जीवनानुभवों से पाठकों को परिचित करवाया है! ज़ाहिर है, इससे साहित्य के समृद्ध होने के साथ पाठकों के अनुभव संसार का भी विस्तार हुआ है! वरिष्ठ लेखिका सुधा ओम ढींगरा की नवीनतम कृति 'दृश्य से अदृश्य का सफ़र' (उपन्यास) इसी कड़ी में है। बतौर एक रचनाकार सुधा जी के पास कविता, कहानी, उपन्यास, निबंध, आलोचना, अनुवाद एवं संपादन जैसी कई विधाओं का अनुभव रहा है जो बाजवक्त उनके हर तरह के लेखन में नज़र भी आ जाया करता है। ख़ैर।

उनका ताज़ा उपन्यास वैश्विक स्तर पर फैली कोरोना (कोविड-19) महामारी की पृष्ठभूमि में आया है। हालाँकि जब इसे पढ़ना शुरू किया तो पहले यही लगा कि यह इस महामारी की विभीषिका को लेकर लिखा गया है। लेकिन बाद में जा कर देखा कि महामारी तो सिर्फ़ पृष्ठभूमि में है। हालाँकि, उसका आतंक शुरू से आख़िर तक बना रहता है। उसकी प्रेतछाया मँडराती महसूस होती रहती है।

मोटे तौर पर उपन्यास का कथा-समय महामारी के पहले दौर की संक्षिप्त अवधि का है। कथा के केंद्र में है डॉ. लता जो मनोचिकित्सक और फ़ैमिली काउंसलर हैं। उनके पति डॉ. रवि

इनफ़ेक्शियस डिज़िज़ीस के स्पेशलिस्ट हैं। दोनों बचपन के मित्र भी हैं और चालीस साल की नौकरी के बाद सेवानिवृत्त हैं। दोनों के दो बच्चे हैं- रविश और लतिका! वे दोनों और उनके जीवन साथी भी डॉक्टर हैं। सेवानिवृत्त होने के बाद उन दोनों की विश्वभ्रमण वग़ैरह जैसी कुछ ख़ास योजनाएँ हैं। लेकिन, इसी बीच वायरस कोविड-19 का संक्रमण फैलता है। न्यूयार्क, कैलिफ़ोर्निया जैसे शहरों में स्थिति तेज़ी से बिगड़ने लगती है। डॉ. रवि को भी ड्यूटी पर बुलाया जाता है। इस बीच डॉ. लता को उनके कुछ पुराने मरीज़ों के फ़ोन आने लगते हैं। उन्हें अपने कुछ ख़ास केस याद आने लगते हैं। वह अपने पास आये विशिष्ट केसों को कहानी की शक्ल में डायरी में नोट करती रही हैं। कोरोना की विभीषिका के बीच वह अपनी वही डायरियाँ उलटने-पुलटने लगती हैं। और तीन विशेष केस तीन कहानियों की तरह सामने आते हैं। तीनों भारतीय महिलाओं के हैं। उपन्यास का बड़ा हिस्सा इन तीन अलग-अलग कहानियों से ही घिरा है। या यूँ कहा जाना चाहिए कि अलग-अलग तीन कहानियों से उपन्यास की मूल कथा बुनी गई है। तीनों महिलाएँ उपचार के लिए उनके पास चिंताजनक हालत में लाई गई थीं।

पहला केस है मिसेस हुड्डा का! जिसका दैहिक शोषण पति के परिवार के लोगों ने ही किया और इस बात से उसका पति ही अनजान रहा बल्कि ख़ुद भी उससे अमानुषिक दुर्व्यवहार करता और तरह-तरह की यातना देता रहा। परिणामत: उसका मनोरोगी होना स्वाभाविक था। अन्तत: उपचार के लिए डॉ. लता के पास लायी गई। दूसरी कहानी में लाड़-प्यार से बिगड़ी एक ज़हीन लड़की सायरा है जो तेज़ाब के हमले का शिकार हुई, अपमान और कई-कई ऑपरेशन की यातना से गुज़री। जिसका दिल और दिमाग़ पर गहरा असर हुआ। तीसरे केस या 'रानी या दासी' नाम की कथा में एक कुचिपुड़ी नृत्याँगना है। जिसका विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध एक ऐसे प्रवासी परिवार में कर दिया गया जहाँ उसकी कला तो छूट ही गई इसके अलावा कई तरह की शारीरिक और मानसिक यातनाएँ भी भुगतना पड़ीं। लेकिन, डॉ. लता की काउंसिलिंग और उपचार के बाद वह भी मिसेस हुड्डा और सायरा की तरह ठीक हो गईं। इस बीच ड्यूटी के दौरान डॉ. रवि भी संक्रमित होते हैं। वे घर आकर क्वारंटीन होते हैं। उपचार करवाते हैं और ठीक हो जाते हैं।

उपन्यास की मूल कथा कुल जमा इतनी ही है। पृष्ठभूमि में कोरोना महामारी की दहशत है। हालाँकि, उसका उपन्यास की मूल कथा में शामिल उपर्युक्त तीनों कथाओं से कोई संबंध नहीं है। उन तीनों का घटना-समय कोरोना के काफ़ी पहले का है। वे सिर्फ़, कोरोना काल में अपनी डायरियों के ज़रिये डॉ. लता को याद आती हैं! वे इतना खुलासा तो करती ही हैं कि कई प्रवासी भारतीय परिवारों में भी स्त्री की दशा सारे पढ़े-लिखे पन और आर्थिक बेहतरी के बावजूद अच्छी नहीं है। वह वहाँ भी प्रताड़ना और अपमान का शिकार होती है! वैसे, विवाह के नाम पर प्रवासी परिवारों द्वारा देश के अलग-अलग भागों में रहने वाली लड़कियों के धोखाधड़ी का शिकार होने के क़िस्से समाचार पत्रों में आते ही रहते हैं। यह उपन्यास उन्हें गहरे में जा कर खोलने की कोशिश करता है। लेखिका ने ऐसे प्रकरण वहाँ ज़्यादा नज़दीक से देखे, सुने, समझे हैं इसलिए उपन्यास में ज़्यादा प्रभावशाली ढंग से आये हैं। और प्रवासी जीवन के एक अलग चेहरे को सामने लाये हैं। इन कथाओं के कारण और माध्यम से उपन्यास मुख्यत: स्त्री अस्मिता का प्रश्न बन जाता है। भले ही बात कोरोना (कोविड-19) महामारी की हो रही हो! जिसे डॉ. रवि पिछली कुछ शताब्दियों के ज्ञात इतिहास में समय-समय पर फैली महामारियों का हवाला देकर नकारात्मक उर्जा का उभार बताते हों! कोरोना महामारी के दशक और आतंक को लेकर साल-भर में इधर काफ़ी कुछ लिखा जा रहा है। यह उपन्यास प्रवासी कलम से उसकी एक भिन्न संदर्भ और कथा भाषा में अलग बानगी प्रस्तुत करता है। और स्त्री को लेकर कुछ प्रश्न भी फिर से रेखांकित करता है।

000

ज़बरदस्त पठनीयता

उर्मिला शिरीष

किसी भी देश के इतिहास, सभ्यता, संस्कृति, जीवन-शैली और परिस्थितियों को जानने का एक बड़ा माध्यम साहित्य होता है। साहित्य न सिर्फ़ अतीत को, वर्तमान को बल्कि भविष्य की छवियाँ हमारे सामने रख देता है। प्रवासी साहित्य ने इस दिशा में बड़ा महत्त्वपूर्ण काम किया है कि वह हमें उस देश की समग्र झलक दिखा देता है। सुधा ओम ढींगरा साहित्य में ऐसा ही नाम है जिन्होंने निरन्तर अपनी रचनाओं के माध्यम से स्थानीय/अमेरिकन जीवन को अभिव्यक्त किया है। पिछले दो वर्ष कोरोना के कारण जिस भीषण त्रासदी के बीच निकले हैं, उसने समूची मानव सभ्यता को, मानव जीवन को, मानवीय संबंधों को नए सिरे से देखने और समझने पर मजबूर कर दिया है।

'दृश्य से अदृश्य का सफ़र' उपन्यास कोरोना की भीषण त्रासदी से शुरू होकर डॉक्टर के साथ लम्बे समय से जुड़े उनके मरीज़ों की अनेक मार्मिक कहानी भी सुनाता है। डॉ. रवि और डॉ. लता दोनों पति-पत्नी डॉक्टर हैं, उनके बच्चे भी डॉक्टर हैं.. अमेरिका के शहरों में कोरोना के मरीज़ों का इलाज करते हुए, साथ ही ज़रूरतमन्दों के लिए खाना तथा अन्य सामान उपलब्ध करवाते हुए मानव सेवा का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। परस्पर यही सहयोग, यही सेवा और यही चिन्ता कोरोना काल की सबसे बड़ी उपलब्धि रही है कि इस आपात् और दु:खद समय में मनुष्य ने जीवन की, अपनों की और अपनों के होने की उपस्थिति को गहरे से महसूस किया है।

चारों तरफ पसरे इस महासंकट के बीच डॉ. लता एक ऐसी डॉक्टर और मनुष्य के रूप में उभरकर सामने आती हैं, जो मनुष्य की, ख़ासकर स्त्रियों की गरिमा को सबसे ज़्यादा महत्त्व देती है। उनका व्यक्तित्व, उनकी सोच तथा उनका योगदान एक सच्चे मनुष्य की सकारात्मक सोच को स्थापित करती है। अदृश्य ताक़तों को केवल सकारात्मक ऊर्जा के द्वारा ही पराजित किया जा सकता है, इस

बात को लेखिका ने अनेक पात्रों के माध्यम से रेखांकित किया है। सुधा जी लिखती है- "डॉ. लता अपने मरीज़ों को अपने जीवन में आए भिन्न-भिन्न पात्र और चरित्र समझती है जिन्हें उन्होंने गहरा सिखाया, उनका जीवन सँवारा और स्वयं डॉ. लता ने उनसे बहुत सीखा और जाना। एक ऐसी अदृश्य ताक़त जो मस्तिष्क को काबू में करती है, यानी नकारात्मक अदृश्य शक्ति जो मस्तिष्क पर प्रहार करती है, उस शक्ति से अपने पात्रों को बचाते हुए उन्होंने नकारात्मक शक्तियों की ताक़त को देखा है। नकारात्मक ताक़तें दृष्टि से ओझल रहती हैं और इनके अस्तित्व का पता इनके अटैक करने के बाद लगता है। इन कारणों से डॉ. लता सकारात्मक ऊर्जा को बढ़ाने पर हमेशा ज़ोर देती है।" यही सकारात्मक ऊर्जा इस उपन्यास की ताक़त है, क्योंकि मनुष्य के होने, संघर्ष करने और स्वयं को हर परिस्थिति से बाहर निकालकर पुन: खड़े होने में सकारात्मक सोच-व्यवहार और ऊर्जा का ही योगदान देता है।

डॉ. लता का अपने मरीज़ों को याद करते हुए उनका पूरा जीवन लिख देना, इस बात का सबूत है कि एक डॉक्टर और मरीज़ का रिश्ता कितना गहरा और आत्मीयता से भरा होता है। डॉ. लता की डायरी से कहानियाँ निकलती हैं- डाली पार्टन की, सायरा की और रानी की।

डाली, सायरा तथा रानी की कहानियों में स्त्री-शोषण, उसके प्रति पति का व्यवहार, मारपीट और अकेले होते जाने की त्रासदी दिल को दहला देती है, पर यही स्त्रियाँ डॉक्टर लता की काउंसिलिंग के बाद अपने आपको न सिर्फ़ पहचानती हैं अपितु तमाम दु:खद, असहनीय परिस्थितियों से बाहर निकलकर दूसरे देश में अपने आपको खड़ा भी करती हैं पूरे आत्मविश्वास और संकल्प के साथ। विदेश की कानून- व्यवस्था, वकील, न्यायालय और महिलाओं के लिए उनकी तत्परता देखी जा सकती है। विदेश में नौकरी करने वाले युवाओं के प्रति एक सहज आकर्षण भारतीयों के मन में रहता ही है, पर वहाँ पहुँचकर इन लड़कियों के लिए किस तरह की शारीरिक और मानसिक यातनाएँ दी जाती हैं, यह आँखें खोल देने वाला यथार्थ है। रहेंगे विदेश की धरती पर, चलेंगे भारतीय पितृसत्तात्मक संकीर्ण मानसिकता के साथ। लेखिका भारतीय परिवारों की उस मानसिकता का भी चित्रण करती है जिनमें राजनीति के द्वारा पावर, पैसा और तानाशाही का रवैया लड़कियों के प्रति अपनाया जाता है। सायरा के प्रति वही हिंसक रवैया अपनाया जाता है... जिसकी शिकार वह होती है, क्योंकि वह छात्र संगठन का चुनाव बिना किसी भय के लड़ती है और उसी की साथी उसे धोखा देकर एसिड अटैक करवा देती है।

उपन्यास अतीत और वर्तमान से ली गई घटनाओं को इस तरह से जोड़कर चलता है कि दोनों ही परिदृश्य जीवन्त हो उठते हैं। 'कोविड-19' को लेकर वैश्विक परिदृश्य और इससे पहले के पेंडेमिक के इतिहास को भी इसमें दोहराया गया है। यह स्वाभाविक भी है...। परिवार में संक्रमित होते सदस्यों की चिन्ता डॉ. लता को बेचैन कर देती है, तब उन्हें अपनी डायरी के पन्ने ही जैसे सँभालकर रखते हैं। प्रकृति, अध्यात्म, मानवीय मूल्य और मनुष्यता की महत्ता को यह उपन्यास बहुत ही प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करता है। उपन्यास पढ़ते हुए मेरा मन आधा भारत और आधा अमेरिका में दौड़ रहा था, क्योंकि जहाँ अपने होते हैं वो धरती भारत की हो या अमेरिका की... एक जैसी ही लगती है। मनुष्य का दर्द और चिन्ताएँ... साझे चूल्हे की तरह साझा कर देती हैं।

सुधा जी को बधाई कि उन्होंने सम-सामयिक जीवन-परिस्थितियों को लेकर यह उपन्यास लिखा जिसमें ज़बरदस्त पठनीयता है। उपन्यास में "जीवन की सार्थकता, आध्यात्मिकता, दर्शन... और ऊर्जा की बात बार-बार आती है...।इसी सकारात्मक ताक़त को वे महसूस करती हैं, जिस अदृश्य सत्य को खोजने और पाने के लिए सिद्धार्थ ने घर छोड़ा, पर ज्योति तो उनके भीतर से निकली, जिससे वे 'गौतम बुद्ध' कहलाये। डॉ. लता उस अदृश्य सत्य को हर मानव के अन्दर मानती हैं, जिसकी खोज में लोग पूरी ज़िंदगी इधर से उधर भटकते हैं, ज़रूरत है उसे भीतर खोजने की।"

यहाँ उन्हें रामायण, गीता, वेद याद आते हैं। सूफ़ी दर्शन का भी वे स्मरण करती हैं... क्या सचमुच इस महात्रासदी ने मनुष्य को जीवन, दर्शन, अपने अस्तित्व, सकारात्मक और नकारात्मक ताक़त, ऊर्जा तथा प्रकृति के बारे में चिन्तन करने पर विवश कर दिया है। मुझे लगता है यह समय समूची मानवता के लिए टर्निंग प्वाइण्ट है। यहीं से जीवन की नई शुरूआत होती है।

000

मानवीय दुनिया का सपना है
मनीष वैद्य

"उपन्यास तो एक महल है-पाठक को आप स्वतंत्रता दीजिए कि वह उसमें जहाँ चाहे जाए! जैसे किसी अजायब-घर में ले आए हों, इस तरह आप उसे उबाइए या चौंकाइए मत! कभी-कभी उसे लेखक और प्रमुख पात्रों दोनों से हटाकर आराम भी देना होगा-यानी उस जगह प्रकृति वर्णनों, लैंडस्केप चित्रण का उपयोग है, या कुछ हल्की-फुल्की हास्य रस की चीज़ हो, कथानक में कोई मोड़ हो-या कोई नया चरित्र हो।" यह बात अन्तोन चेख़व ने तिखोनोव से बात करते हुए कही थी।

सुधा ओम ढींगरा का ताज़ा उपन्यास 'दृश्य से अदृश्य का सफ़र' पढ़ते हुए मेरे ज़ेहन में लगातार चेख़व की यह बात कौंधती रही। क़रीब डेढ़ सौ पृष्ठों में फ़ैला यह उपन्यास कहीं से भी न तो उबाता है और न ही अतिशय रूप से चौंकाता है। यह जीवन की सहज गति के अनुरूप रफ़्ता-रफ़्ता पाठक के भीतर उतरता चलता है। इसमें पाठक के अवकाश के लिए पर्याप्त स्पेस हैं यानी प्रकृति वर्णन, कथानक में मोड़ और नए पात्रों की एंट्री। इससे पाठक के लिए इसे एक बैठक में पढ़ना आसान हो जाता है।

यह उपन्यास क्या... दरअसल हमारे आसपास इन दिनों कोरोना काल में जो कुछ घट रहा है। लगभग उसी की बानगी है। इसीलिए पाठक इससे तुरंत जुड़ जाता है और उसे लगता है कि यह बात अमेरिका की नहीं, भारत के ही किसी शहर-क़स्बे की हो रही है।

उसके अपने शहर-क़स्बे की। कोरोना की विभीषिका को हम सबने अपने बहुत नज़दीक से देखा और भुगता है। हमने इसकी वजह से कई अपनों को खोया है। इसलिए इस क्रूर वक़्त की त्रासदियों को हम कैसे भूल सकते हैं। यह लगभग ऐसे समय सामने आया है, जब हम अभी इसके भयावह पंजों से पूरी तरह मुक्त भी नहीं हो पाए हैं। अभी तीसरी लहर का ख़तरा मंडरा ही रहा है।

सुधा जी ने अपनी लेखनी से उन त्रासदियों, बेबसियों और अकेलेपन की पीड़ा को सामने रखा है। एक डॉक्टर के नाते भी और बाक़ी लोगों की नज़र से भी। उन तकलीफों-दुश्चिंताओं की नकारात्मकता के बीच से यह किताब सकारात्मकता की बात भी पुरज़ोर तरीके से रखती है। वे एक जगह लिखती हैं-"यही है नज़रिया! जैसी सोच होती है वैसा ही सब कुछ नज़र आता है...नेगेटिव और पॉज़िटिव सोच और भावनाएँ ही दृष्टिकोण बनाती हैं। क्योंकि उन्हीं के अनुसार मानव दृश्य में देखता है और अदृश्य के बारे में सोचता है।"

यह क़िताब बताती है कि इस वक़्त विश्व में फ़ैली तमाम नकारात्मकता को हम सकारात्मक होकर ही दूर कर सकते हैं। वे लिखती हैं-"इतिहास गवाह है, समय-समय पर नकारात्मक ऊर्जाएँ अपना सिर उठाती रहती हैं। और वे सकारात्मक ऊर्जाओं को नष्ट करने की कोशिश भी करती हैं। सकारात्मक और नकारात्मक ऊर्जाएँ जब टकराती हैं तो उनके संघर्ष में मानव जाति का बेहद नुकसान होता है, बहुत कुछ नष्ट हो जाता है।"

देखें तो इसका कथानक कोरोना काल के महज कुछ दिनों की एक परिवार की डायरी की तरह लगता है लेकिन इसकी सीमाओं के बावजूद सुधा जी इसे एक परिवार की चौहद्दी से बाहर पूरे विश्व के स्तर तक एक बड़े फलक पर ले जाती हैं। एक अच्छे रचनाकार की यह कला होती है कि वह लोकल को ग्लोबल बनाता है। इसी बिंदु से उसका अपना जीवनानुभव या जीवन का भोग हुआ यथार्थ बड़ा होकर विश्वजनीन हो जाता है। इसका वितान सुदूर अमेरिका से शुरू होकर भारत और फिर दुनिया तक पहुँचता है।

मनोविज्ञान की गहरी समझ के साथ इस उपन्यास की तीनों उपकथाएँ 'डॉली पार्टन', 'बोलती... बेनूर ख़ाली आँखें' और 'रानी या दासी' बड़ी रोचक बन पड़ी हैं। इनमें स्त्री विमर्श के कई अक्स देखे जा सकते हैं। पूरी दुनिया और ख़ासकर भारत में स्त्रियों की हालिया स्थिति को इन केस स्टडी के ज़रिए आसानी से समझा जा सकता है। ये तो फिर भी पढ़ी-लिखी, संभ्रांत कहे जाने वाले समाज की लड़कियाँ हैं, उन औरतों के बारे में सोचिए, जो आज भी छोटे-छोटे गाँव-खेड़ों और क़स्बों में वही ज़िल्लत की ज़िंदगी काटने को मजबूर हैं। ये कथाएँ हमारी विवाह संस्था पर भी सवालिया निशान खड़े करती हैं कि दांपत्य जीवन अब किस तरह कठिनतम होता जा रहा है। पितृसत्तात्मक समाज और स्वार्थों की अंधी होड़ के दौर में अब हम उसके दरकने की आहट साफ़ सुन रहे हैं।

एक तरफ़ स्त्री विमर्श के नाम पर तमाम नारे हैं, हल्ला है, बड़बोले बयान हैं, बड़े-बड़े सरकारी दावें हैं पर ज़मीनी हालात आज भी वैसे ही बदतर हैं, जैसे कई साल पहले थे। मुझे विस्साव शिम्बोर्स्का की कविता की कुछ पंक्तियाँ याद आती हैं-"बदला कुछ भी नहीं/ देह आज भी काँपती है उसी तरह/ जैसे काँपती थी/ रोम के बसने के पूर्व और पश्चात् / ईसा के बीस सदी पूर्व और पश्चात् /यातनाएँ वही-की-वही हैं / सिर्फ़ धरती सिकुड़ गई है / कहीं भी कुछ होता है/ तो लगता है हमारे पड़ोस में हुआ है। / बदला कुछ भी नहीं/ केवल आबादी बढ़ती गई है/ गुनाहों के फेहरिस्त में कुछ और गुनाह जुड़ गए हैं/ सच्चे, झूठे, फौरी और फर्जी। / लेकिन उनके जवाब में देह से उठती हुई चीख/ हमेशा से बेगुनाह थी, है और रहेगी।

इन उपकथाओं से गुज़रते हुए हम अनायास सुधा जी के स्त्री मन को भी महसूस कर पाते हैं। यहाँ लिजलिजी कोरी भावुकता या झंडाबरदारी से दूर उनके भीतर की वह धड़कती हुई सहृदय कोमलता और संवेदना के साथ स्त्री समाज की मानवीय पीड़ा साफ़ झलकती है। वहीं यह बात भी शिद्दत से सामने आती है कि सात समन्दर दूर रहते हुए भी वे भारतीय समाज की जड़ों से गहरे तक जुड़ी हुई हैं। इतना ही नहीं, एक पत्नी और माँ के रूप में भी उपन्यास की केन्द्रीय पात्र डॉ. लता लम्बे समय से अमेरिका में रहते हुए भी कहीं से भी एक भारतीय पत्नी और माँ से इतर नहीं लगती हैं। हिन्दी के पाठक को वे अपने परिचित संसार की ही लगती हैं। वे लिखती हैं- "जब तक तुम अपनी तरफ़ की कहानी नहीं बताओगी, वह ऐसा करता रहेगा। तुम कटघरे में खड़ी रहोगी। सदियों से आदमी यही करता आया है। औरत उसके पाप ढँकती है और वह सच्चा, साफ़, सुथरा होकर निकल जाता है। कटघरे में औरत ख़ुद ही आ जाती है। तुम भी वही कर रही हो।"

हालाँकि पूरे उपन्यास जिन पेशेंट्स एमरली और प्रतिभा सिंह का ज़िक्र चलता रहता है, अंत में उन्हें नदारद पाकर पाठक ठगा-सा रह जाता है। पढ़ते हुए लगातार उनके बारे में जिज्ञासा बनी रहती है पर अंत में भी वे लेखक की पकड़ से दूर ही रह जाती हैं। यह भी कहा जा सकता है कि हमारा जीवन ऐसा ही है, एक बार जो इंसान हमारी ज़िंदगी से बाहर चला जाता है तो कई बार वह हमें आगे कहीं किसी भी मोड़ पर दिखाई नहीं देता। शायद वे दोनों इसी तरह की किरदार हैं।

पूरे उपन्यास में फ्लो है। वह सहज-सरल और रोचक होने से पाठक इसे आसानी से पढ़ जाता है। भाषा कहीं से भी क्लिष्ट या कलात्मक नहीं है। आम बोलचाल की भाषा ही पूरे कथानक में चलती है। जहाँ कठिन मेडिकल टर्मिनोलॉजी है, वहाँ भी उसे बख़ूबी साधारण रूप दिया गया है ताकि पाठक उन्हें समझ सकें। उपकथाओं में ग़ज़ब की क़िस्सागोई है। यह उनका दूसरा उपन्यास है और इसमें निश्चित ही उन्होंने 'नक़्क़ाशीदार केबिनेट' से आगे का काम किया है। तीन अलग-अलग फ्लेवर की कहानियों को इस ख़ूबसूरती के साथ मर्ज़ किया गया है कि वे कहीं से भी अलग-सा आस्वाद नहीं देतीं। वे एक तरफ़ जहाँ भारतीय समाज और राजनीति की असली तस्वीर दिखाती हैं, वहीं अमेरिकी

जीवन शैली और वहाँ की राजनीति पर भी तीखी टिप्पणी करने से नहीं चूकतीं। दोनों ही तरफ़ के अँधेरे यह उपन्यास पूरी शिद्दत के साथ दिखाता है। इन दिनों 'दृश्य से अदृश्य का सफ़र' चर्चा में है और विषयवस्तु में नएपन की वजह से इसने हिन्दी पाठकों का बरबस ध्यान खींचा है। उन्होंने इसमें इस दौर का जीवन ही रचा है।

मनुष्यता के साथ एक बेहतरीन दुनिया के सपने के साथ यह उपन्यास जिस तरह जीवन के सत्य को खोजने की दिशा में बात करता है तो हम एक आश्वस्ति-सी महसूस करते हैं। इसमें प्रकृति से प्रेम का संकेत छुपा है तो स्त्री की अस्मिता का सम्मान और इस भयावह समय को पॉजिटिव बनाने की एक ख़ास क़िस्म की ज़िद भी नज़र आती है। हम लेखक को इसके लिए आमीन ही कह सकते हैं।

000

बाह्य से भीतर का सफ़र

डॉ. रश्मि दुधे

कोरोना काल की सामयिक घटनाओं एवं अनुभवों की हृदयस्पर्शी स्मृतियों को संवेदनात्मक अभिव्यक्ति के साथ सुधा जी ने अत्यंत रोचक और स्मरणीय शब्द बूँदों में यह उपन्यास रचा है। विगत दो वर्षों में अनेक घटनाक्रम हुए जिसका साक्षी मानव के साथ-साथ प्रकृति भी रही। उपन्यास का लिखा जाना ही यह सिद्ध करता है कि उपन्यासकार की संवेदनाएँ उफनकर शब्दों में प्रकल्पित होना चाहती हैं। आरम्भ से ही घटित प्रसंग की प्रस्तुति पाठक को उपन्यास के साथ इस तरह जोड़ लेती है जैसे पाठक के स्वयं के अनुभव हों। सुधा जी मूलत: लेखिका हैं। "नक़्क़ाशीदार कैबिनेट" नाम से उनका एक उपन्यास आ चुका हैं। उनके छ: कहानी संग्रह तथा तीन अनूदित कृतियाँ हैं। चार कविता संग्रह, एक निबंध संग्रह तथा संपादन की कई किताबें हैं। वे समर्थ संपादक हैं, ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन, अमेरिका की उपाध्यक्ष एवं सचिव हैं।

यानी मनोचिकित्सक तो हैं ही नहीं। बावजूद इसके उपन्यास में शामिल तीन मनोवैज्ञानिक, मनोचिकित्सा संबंधित कथाएँ इतनी गंभीर और सटीक हैं, मानों वे लेखिका नहीं बल्कि एक मनोचिकित्सक हों। कोरोनाकाल में दंशित घटनाओं को, अधिकांश लोगों ने तो अत्यंत गंभीरता से लिया और माना भी, लेकिन कुछ लोग ऐसे भी रहे जो अदृश्य नकारात्मक शक्ति को नकारते दिखाई दिए। लोगों ने इस काल में लंबे समय तक घरों में क़ैद होकर रहना, कम से कमतर ज़रूरतों में रहना सीख लिया।

स्त्री-पुरुष का लंबी ड्राइव पर निकलना और निकलकर प्राकृतिक परिवर्तनों को महसूसना, बैठे-बैठे उदास हो जाना, अचानक चुप हो जाना जैसे अजनबी हों, वातावरण में व्याप्त यह असुरक्षा, अनिश्चय और अनजाना भय इस तरह पैठ कर बैठ गया कि उसका प्रभाव मानव हृदय पर भी पड़ा। सम्पूर्ण विश्व की हवाओं में "अदृश्य शक्ति" की छाया लहरा रही है, जो मानव जाति के तन, मन और मस्तिष्क को उत्तेजित कर रही है। यह "अदृश्य शक्ति" मानव जाति के पूरे अस्तित्व को निगल रही है। तरकीब खोज भी लें पर यह अदृश्य ताक़त पूरी तरह मिटेगी नहीं। सदैव से यही नकारात्मक, अदृश्य शक्तियाँ ही मानव के लिये चुनौतियों के रूप में विकराल रूप में विद्यमान रही हैं।

लेखिका ने इस दहशतगर्द माहौल में अपने बच्चों के साथ वक्त बिताने को बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से उल्लेखित किया है। उपन्यास में वर्णित कुछ दृश्य मनोहारी हैं जैसे ख़ाली वक्त में गैलेरी में बैठना। गिलहरी, मोर और भी कई रंगों के परिंदों का डॉ. लता के चारों ओर चहचहाना, जो उन्हें सुकून के पलों का अहसास दिलाते हैं।

डॉ. रवि पल्मोनरी विशेषज्ञ हैं। वहीं डॉ. लता एक मनोवैज्ञानिक हैं। डायरी के पन्नों पर अंकित विभिन्न ऐसी घटनाएँ जो काउंसलिंग सेशंस के दौरान सांकेतिक तरीके से लिखी गई हैं। उनमें डॉ. लता दो प्रकरणों की खोज में हैं किन्तु वे डायरी में लिखीं अन्य केस स्टडी में खो जाती हैं। इन परिदृश्यों से जुड़कर उन्हें पुन: स्मृत किया जाना ऐसे दृष्टांत हैं जो डॉ. लता को एक सफल और बुद्धिमान मनोचिकित्सक सिद्ध करते हैं। एमरली और प्रतिभा सिंह के चेहरे उन्हें याद नहीं आते। इन्हीं दो चेहरों को खोजते हुए डॉ. लता "डॉली पार्टन, सायरा और रानी" की केस स्टडी में तल्लीन हो जाती हैं। ये तीनों कहानियाँ हमें अद्भुत अनुभव और अनुभूति देते हैं। ये तीनों कहानियाँ क्षुब्ध करती हैं, उद्वेलित करती हैं, आक्रोशित करती हैं। किन्तु विश्व में सर्वत्र व्याप्त होती जा रही हिंसा के ख़िलाफ़ खड़े होने का माद्दा भी देती हैं।

डॉली पार्टन उस केस स्टडी की नायिका का छद्म नाम है जिसकी मनोचिकत्सा डॉ. लता ने कभी की थी जो उनकी डायरी में दर्ज है। एक भारतीय महिला को शादी के बाद उसका ग्रीन कार्ड होल्डर पति हिंदुस्तान में परिवार के सदस्यों के भरोसे छोड़ आया हैं। और वह पति के अमेरिका आने के तीन दिन बाद आई है। आने के बाद उसने उसके दुष्ट उस पति का सामना किया जिसने उसका जीवन नर्क बना दिया और मजबूरी में अब पति को, उसका इलाज कराने डॉ. लता के पास लाना पड़ा। इस कहानी की जब परतें उघड़ती हैं तो दहल जाने वाले हादसे सामने आते हैं। इस बेहद ख़ूबसूरत महिला की सुंदरता ही उसके जीवन के दुखों का बायस बना यह एक विडंबना ही है। यह कहानी पाठक के भीतर एक अलग तरह का आक्रोश पैदा करती है। बहरहाल डॉ. लता के मशवरों से डॉली पार्टन के जीवन का एक हल निकलता है और वह अमेरिका के हॉस्पिटल में नर्स बन जाती है।

मनोविश्लेषण करती दो कहानियाँ और हैं इस उपन्यास में। ये कहानियाँ भी महिलाओं पर ही हैं। तीनों कहानियाँ स्त्री प्रताड़ना को लेकर हैं, तीनों ही मानसिक रूप से बीमार होकर डिप्रेशन का शिकार हुई हैं। एक विशेष बात और कि तीनों ही कहानियों के नेपथ्य में राजनीति या राजनीति से जुड़ा हुआ पुरुष वर्ग ही है। डॉ. लता डायरी पढ़ते हुए ही इन केस स्टडी की कहानियों पर बात करती हैं अर्थात् किसी विशेष कथा को कहना उनका उद्देश्य नहीं दिखाई पड़ता, यानी डायरी में लिखित रेंडम कहानियाँ ली गई हैं किन्तु तीनों में स्त्री

प्रताड़ना, घरेलू हिंसा और आधुनिक युग में भी आदमी की हिंसक प्रवृतियों से सामना होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि स्त्री प्रताड़ना में पुरुष वर्ग ही सबसे आगे है और दूसरा यह कि भारत में राजनीति का स्तर गिरा हुआ है, राजनेता दुष्ट प्रकृति के हैं, दबंग हैं और उन्हें किसी भी सत्ता का कोई भय नहीं है, ईश्वर की लाठी से भी नहीं डरते। दूसरी कहानी के अंत में उस राजनेता के परिवार की सड़क हादसे में मौत का ज़िक्र अवश्य है किन्तु यह एक अपवाद हो सकता है। शायद इस उपन्यास की रचना का उद्देश्य भी लेखिका सुधा ढींगरा जी का यही रहा है कि दुनिया बदल गई। आधुनिकता सर्वत्र फ़ैल गई किन्तु मानव की हिंसक प्रवत्ति नहीं बदली।

एक सौ बावन पृष्ठों का यह उपन्यास आरम्भ से अंत तक बाँधे रखता है। इसे बीच में छोड़ देने का मन नहीं होता, क्योंकि मनोवैज्ञानिक कहानियाँ रोचक होने के साथ ही हमें किसी भी गहन पीड़ा से बाहर आने का रास्ता भी दिखाती हैं। चूँकि उपन्यासकार मनोचिकित्सक नहीं है, अत: यह सुनिश्चित है कि उन्होंने ये अनुभव किसी मनोचिकित्सक मित्र से प्राप्त किए होंगे किन्तु उनकी प्रस्तुति और अभिव्यक्ति इस तरह की गई है कि लगता है सब डॉ. लता के सामने ही घटित हुआ हो।

कोरोना काल का यह उपन्यास बाह्य से भीतर का सफ़र है। सूक्ष्म जीवाणु से स्थूल मानव तक का सफ़र हैं। दृश्य से मानव के बड़ी संख्या में अदृश्य हो जाने का सफ़र है। इस उपन्यास में स्त्री हिंसा के ख़िलाफ़ डॉ. लता की मनोवैज्ञानिक जंग है। मानव का अस्तित्व दो ही शक्तियों पर टिका हुआ है, सकारात्मक और नकारात्मक ऊर्जा पर और ये दोनों ही प्रत्येक मनुष्य में समाहित हैं, जिसे सुधा जी की दृष्टि ने उल्लेखनीय बना दिया है। दृश्य से अदृश्य का सफ़र घटनाओं तथा कथाओं के माध्यम से महसूस कराया गया है जो मानव स्वभाव और मनोविज्ञान से हमारा परिचय कराता है। उपन्यास अनेक पक्षों को उजागर करता है। कोरोना काल में उपजे उपन्यास का शीर्षक इस लिहाज़ से सार्थक है।

000

पुस्तक समीक्षा

(साक्षात्कार संग्रह)

साक्षात् व्यंग्यकार

समीक्षक : ब्रजेश कानूनगो

संपादक : डॉ. पिलकेन्द्र अरोरा

प्रकाशक : वनिका पब्लिकेशन, नई दिल्ली

हिन्दी व्यंग्य के वर्तमान में शिखर के रचनाकार सर्वश्री प्रेम जनमेजय, हरीश नवल, ज्ञान चतुर्वेदी, आलोक पुराणिक और सूर्यबाला जी के सामने पिलकेन्द्र जी ने प्रश्नों की दिलचस्प गेंदें उछालीं, तो स्पेशलिस्ट व्यंग्य बल्लेबाजों ने 'मास्टर स्ट्रोक' लगाएँ।

इन सब सिद्धहस्त व्यंग्यकारों ने पिलकेन्द्र जी के 'स्टेट ड्राइव' में जो बातचीत की उससे हिन्दी साहित्य का नया, पुराना रचनाकार तो व्यंग्य विधा के कई पहलुओं से परिचित हुआ ही बल्कि आम पाठक को भी इससे बहुत आनन्द प्राप्त हुआ है।

अब इसी लम्बी ऑन लाइन श्रृंखला का 'साक्षात् व्यंग्यकार' (वनिका पब्लिकेशन) पुस्तक रूप में आ जाना बड़ा अच्छा काम हो गया है। संपादक, संचालक डॉ. पिलकेन्द्र अरोरा की रचनात्मक ज़िद की यह महत्त्वपूर्ण परिणीति स्वागत योग्य है। मैं जानता हूँ इस कार्य में उन्हें कितनी मानसिक परेशानियों का सामना करना पड़ा होगा। मन मारना पड़ा होगा। विषपान भी थोड़ा बहुत। पर वे लक्ष्य से विचलित नहीं हुए और पसीने को बेकार नहीं जाने दिया। अब यह दस्तावेज़ व्यंग्य विधा और उसके इतिहास का ज़रूरी हिस्सा भी हुआ है और इस दौर की तकनीकी समृद्धि और सामाजिक मजबूरियों का साक्ष्य भी।

पुस्तक में समकालीन वरिष्ठ व्यंग्यकारों से पूछे गए दिलचस्प और गंभीर सवालों के साथ उनके जवाबों को पढ़ना भी व्यंग्य विधा में रुचि रखने वाले पाठकों के लिए ही नहीं बल्कि नए रचनाकारों और साहित्य के छात्रों को भी सम्पन्न करता है। इसके साथ साक्षात्कार में शामिल व्यंग्यकारों द्वारा पढ़ी गई रचनाएँ भी शामिल की गई हैं।

सीधे चलने वाले कार्यक्रम के दौरान उपस्थित श्रोताओं की त्वरित टिप्पणियाँ भी यहाँ साथ में दी गई हैं। इसके अलावा समालोचक डॉ. बी एल आच्छा की वृहद टिप्पणी और अन्य व्यंग्यकारों की सम्मति और संचालक डॉ. पिलकेन्द्र अरोरा के 'मन की बात' भी पुस्तक को पूर्णता दे रही है।

निसंदेह अब यह दस्तावेज़ पुस्तक व्यंग्य विधा और उसके इतिहास का ज़रूरी हिस्सा भी हो गया है और इस दौर की तकनीकी समृद्धि और सामाजिक मजबूरियों के बीच साहित्यिक जीवन का साक्ष्य भी। व्यंग्य विधा पर एक डिजिटल कार्यक्रम श्रृंखला को प्रिंट स्वरूप में लाने के लिए प्रकाशक और संपादक को बहुत बधाई और साधुवाद।

000

ब्रजेश कानूनगो, 503,गोयल रिजेंसी, इंदौर 452018

मोबाइल- 9893944294

पुस्तक समीक्षा

(कहानी संग्रह)

शह और मात

समीक्षक : गोविंद सेन

लेखक : मंजुश्री

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

गोविन्द सेन

193 राधारमण कॉलोनी, मनावर,

जिला: धार, पिन-454446, म.प्र.

मोबाइल- 9893010439

ईमेल- govindsen2011@gmail.com

'शह और मात' मंजुश्री का दूसरा कहानी संग्रह है। इनका एक विशेष परिचय यह भी है कि वे विगत 42 वर्षों से प्रतिष्ठित कथाप्रधान पत्रिका 'कथाबिम्ब' का संपादन कर रही हैं। समीक्ष्य संग्रह की कहानियाँ पाठकों की संवेदना को तो झकझोरती ही हैं, निम्न और मध्यमवर्गीय जीवन की समस्याओं और उनकी जद्दोजहद से रू-ब-रू भी कराती हैं। इनमें ऐसे चरित्रों की गहरी पड़ताल भी हुई है जो आज हाशिए में अपना जीवन गुज़ार रहे हैं। इन कहानियों में आस-पास के जन-जीवन का परिचित संसार है। कहानियों में वर्णित स्थितियाँ और परिवेश पाठक को अपना ही लगता है। विस्तृत फ़लक की इन कहानियों के पात्र विभिन्न आयुवर्ग, परिस्थियों और जाति-धर्म से जुड़े हैं। इन कहानियों में कथ्य ही मुख्य है शिल्प नहीं। मंजुश्री ने कहानियों को रचने में अपनी अनुभव सम्पदा का भरपूर उपयोग किया है। मानवीय संवेदना से जुड़ी ये सरल शिल्प की सुंदर कहानियाँ हैं।

'शह और मात' संग्रह की पहली कहानी है। यही शीर्षक कहानी संग्रह को भी मिला है। इस कहानी की पहली ही पंक्ति पाठक को बाँध लेती है। यही विशेषता संग्रह की लगभग हर कहानी की है। इस कहानी में आये दिन होती हड़तालों के दुष्परिणामों का ज़िक्र है। छोटे मालिक ने शतरंज बिछाकर ऐसी चाल चली कि मुन्ना सिंह और जनार्दन दोनों चित्त हो गए। जनार्दन के उभरते क़द को लेकर मुन्नासिंह को ख़तरा था और मुन्नासिंह के पर कतरने के लिए छोटे मालिक ने जनार्दन को मोहरा बनाकर मुन्नासिंह को मात दे दी।

'एक नई सुबह' कहानी को प्रिया निम्बालकर, अविनाश निम्बलाकर और मिसेज नीला शर्मा के नज़रिए से प्रस्तुत किया गया है। तीनों के अपने-अपने नज़रिए हैं। शादी की औसत उम्र पार कर जाने वाली प्रिया अविनाश से शादी करती है। प्रिया की यह पहली शादी है जबकि अविनाश की दूसरी। अविनाश की पहली पत्नी मर चुकी है जिससे उसे दो संतानें हैं-पंकजा और प्रणव। प्रणव एक मंदबुद्धि बालक है। पंकजा प्रिया को नई माँ के रूप में स्वीकार नहीं कर पाती। वह प्रिया और अविनाश के सामने समस्या खड़ी कर देती है। इस कहानी में दूसरी शादी में बड़े उम्र के बच्चों के साथ-साथ पति-पत्नी के बीच पसरे एक दूसरे के अतीत से भी सामंजस्य बैठाने की कोशिश का वर्णन है।

'आओ हमरी सोनचिरैया..। उड़ जाओ आकास' पोती और दादी के महीन-कोमल रिश्ते की मर्मस्पर्शी कहानी है। दादी अपनी पोती को पचास साल पहले के उस संसार में ले जाती है जहाँ उसे एक छोटा-सा आकाश मिला था जिसमें वह विचरण करती रहती थी।

'शीशों की क़ैद में' कहानी में शुभांगी के जरिए शिकागो के भयावह अकेलेपन और चुप्पी को चित्रित किया गया है। ट्रेसी अपने बीहड़ अकेलेपन के कारण अवसाद में है। दो शादियों और तीन बच्चों के बावजूद उसके पास कोई नहीं है।

मंजुश्री का स्त्री-विमर्श वीभत्स देह-विमर्श या देह-मुक्ति का गान नहीं है बल्कि सहज मानवीय संवेदना से संपृक्त है। वे स्त्री-पात्रों की धूर्तताओं को भी प्रकट करने में गुरेज नहीं

करतीं। 'गिद्ध' कहानी में मि. चड्ढा की मातमपुर्सी के लिए हाई सोसायटी की औरतें इकठ्ठा होती हैं पर वे वहाँ आने के असली उद्देश्य को भूलकर अपने भीतर की छिपी ईर्ष्या प्रकट करने लगती हैं। उनकी हरकतें और सोच घटिया है। किसी के चेहरे पर दुख या शोक का भाव नहीं था। लोग मतलबी और संवेदनहीन हैं। मि. चड्ढा की बेटी नताशा की सहेली विनीता को ये लोग गिद्ध जैसे लगते हैं जो मृतक को नोंचने के लिए जुटे हों। विनीता का पाला ऐसे गिद्धों से 20 साल पहले ही पड़ चुका था जब उसके पिता की मृत्यु हुई थी। उसे नताशा का दुख अपना ही दुख लगता है।

'गिन्नी का बस्ता' कहानी बचपन की स्मृतियों का कोलाज है। बस्ते के बहाने कथा नायक बचपन की शैतानियों, शरारतों, खेलों और मधुर स्मृतियों का खज़ाना ही खोल देती है। बड़े होने पर बचपन का वह अनमोल खज़ाना खो जाता है। कहानी को पढ़ते हुए पाठक को पता ही नहीं चलता कि कब वह खुद अपने बचपन में चला गया है।

'महाकुंभ' की शुभदा एक संवेदनशील स्त्री है। वह स्वैच्छिक रूप से एक अस्पताल में मुफ्त में कार्य करती है। एक दिन अस्पताल में आए खून से लथपथ रेल दुर्घटना के शिकार लोगों को देख वह विचलित हो जाती है। अस्पताल की दुनिया रोज़ ज़िंदगी और मौत के बीच झूलती रहती है। वहीं ज़िंदगी का सही मूल्य मालूम पड़ता है। कहानी का यह वाक्य देखें-"हाथों से फिसलती ज़िंदगी के बारीक़ धागों से लटका आदमी ही ज़िंदगी का सही मूल्य जानता है।"

रुग्णालय में हर मानसिक रोगी एक गुत्थी होता है। 'गुत्थियाँ' कहानी में ऐसी कई गुत्थियाँ हैं। कहानी कई मनोरोगियों से परिचित करती है। यह कहानी मिसेज़ भंडारी और सर गणपत राय चौधरी जैसे संवेदनशील लोगों के अवदान को भी रेखांकित करती है जो इन गुत्थियों को सुलझाने और उनकी व्यवस्था में अहर्निश जुटे हैं।

'चौड़ी होती दरारें' हिन्दू-मुस्लिम के बीच के गंगा-जमुनी रिश्तों के सिमटते जाने की दुखद कथा है। नई पीढ़ी की ज़हरीली सोच ने बचपन की सहेलियों को दूर कर दिया। दरारें दिन-ब-दिन चौड़ी होती जा रही हैं। सहेलियों के साथ-साथ बरसों से मोहल्ले में साथ रह रहे पड़ोसियों के बीच मज़हब ने दरारें बढ़ा दीं। ये कहानी आज के बदलते सामाजिक परिदृश्य की ओर इंगित करती है

'मुट्ठी में बंद ज़िंदगी' मज़हब के नाम पर गुमराह किशोरों की कहानी है। ग़लत संगति में पड़कर मासूम बच्चे किस तरह अपराधी बन जाते हैं जिसके कारण उनकी ज़िंदगी का रुख ही बदल जाता है। कहानी अभिभावकों को आगाह भी करती है कि इन भटके हुए लोगों के कारण ग़लती न होते हुये भी इनके परिवार के लोगों को अनेक मुसीबतों का सामना करना पड़ता है।

'गिरगिटी चेहरे' उन मुखौटों की कहानी है जिन्हें आदमी अपने स्वार्थ के लिए अपने चेहरे पर चिपकाए रहता है। कहानी का नैरेटर एक तीस साल का बेरोज़गार युवक है जो बेहतर जॉब के लिए इंटरव्यू देने के लिए जाता है। उसे घर से बाहर तक सभी जगहों पर गिरगिटी चेहरे मिलते हैं।

'आतिश-ए-चिनार' एक अधूरी-सी या कहें असफल प्रेम-कथा है। यह नैरेटर के लिए एक स्वप्न-कथा हो सकती है। मज़हब और सरहदें अब इतनी ऊँची हो गई हैं कि प्रेम संभव नहीं रह गया। कहानी में कश्मीर के सौन्दर्य का सजीव और मनोहारी वर्णन है।

कुल मिलाकर 'शह और मात' विविधवर्णी बारह कहानियों का सुन्दर गुलदस्ता है। मंजुश्री की इन कहानियों में ज़िंदगी का हर रंग नज़र आता है। इनमें सामाजिक और राजनीतिक विडम्बनाओं और विद्रूपताओं के कई चित्र उभरते हैं जिनमें पर्याप्त सजीवता है। इन कहानियों में संवेदना, पात्रों की जिजीविषा और उद्वेलन तो है ही, मानव मन की गहरी पड़ताल भी मिलती है। भाषा सरल, सहज, बोधगम्य और प्रवाहमयी है।

आवरण आकर्षक और संग्रह के अनुरूप सार्थक है। निश्चय ही पाठक इन कहानियों का खुले दिल से स्वागत करेगा।

000

नई पुस्तक

(नाटक)

हे राम...!

लेखक : महेश कटारे

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

वरिष्ठ कहानीकार, उपन्यासकार महेश कटारे का यह नाटक किसानों के जीवन पर केंद्रित है। महेश कटारे पुस्तक की भूमिका में लिखते हैं- "वर्षों से यह बात मुझे खलती रहती है कि हिन्दी तो क्या अन्य भारतीय भाषाओं में भी किसान और ग्राम-जीवन पर कोई नाटक नहीं है। खेती का अर्थ है- घनघोर अनिश्चितता का उद्यम- सूखा, बाढ़, ओला, आग, जँगली पशु और..? इस और में वे शामिल हैं जिनके आगे किसान को हाथ जोड़ खड़ा होना पड़ता है। राजनीति ने किसान को जातियों के टुकड़ों में बाँट डाला है। धागे में गाँठें पड़ गई हैं, जो और-और उलझती जा रही हैं। इस दौर में किसान, किसानी की दुर्दशा, दशा पर कुछ बहुत अच्छी संवेदनापूर्ण कहानियाँ, कुछ श्रेष्ठ उपन्यास आये हैं...कविताएँ भी। पर नाटक नहीं दिखा। तो कुछ खीझ रही, कुछ ख़लिश कि नाटक ने आकार ले लिया। इस नाटक के बाद यदि हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में गाँव, किसान पर और भी श्रेष्ठ नाटक सामने आएँ, खेले जाएँ तो अपने श्रम को सार्थक मानूँगा।"

000

पुस्तक समीक्षा

(गीत संग्रह)

टूटेंगे दर्प शिलाओं के

समीक्षक : डॉ. राम ग़रीब पाण्डेय विकल

लेखक : डॉ. मनोहर अभय

प्रकाशक : राजश्री प्रतिभा प्रतिष्ठान प्रकाशन, मुंबई

डॉ. राम ग़रीब पाण्डेय विकल
आर.एच-111, गोल्डमाइन,138-145, सेक्टर - 21, नेरुल, नवी मुम्बई - 400706, महाराष्ट्र
मोबाइल- 9167148096

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कविता में लोकरंजन के साथ लोकमंगल की बात कही है। वस्तुत: जब कवि की रागात्मकता, उसका चिन्तन व्यष्टि से समष्टि की ओर प्रवाहित होने लगता है, तब उसका दृष्टि फ़लक बहुत व्यापक हो जाता है, अनन्त। व्यष्टि का समष्टि में विसर्जन समस्त प्राणियों के सुख- दु:ख, हर्ष-विषाद, राग-विराग को आत्मसात् कर सामजिक संवेदना की अभिव्यक्ति है। इस अभिव्यक्ति में व्यक्त होती वंचितों की हिचकी और शक्तिशालियों के खंडित- विखंडित होते दर्प। चट्टानों जैसे दर्प,कठोर शिलाओं जैसे। इनका खंडन -विखंडन इसलिए आवश्यक है कि आदमी और आदमी के बीच की दीवार ध्वस्त हो। छोटे- बड़े का भेद समाप्त हो। समरसता से सम्पन्न सब एक दूसरे के दु:ख -सुख के साझीदार हों। एक - दूसरे का आनंद वर्धन करते हुए मांगलिक जीवन की कामना करें। सुपरिचित साहित्यसेवी डॉ. मनोहर अभय का सद्य प्रकाशित समकालीन गीतों का संकलन 'टूटेंगे दर्प शिलाओं के' में ऐसे समतामूलक स्वर हैं जो आज के आदमी के बीच ऊँची होती दर्प की शिलाओं को तोड़- फोड़ कर लोकमंगल का दिशा -बोध कराते हैं। द्रष्टव्य हैं संकलन के पहले गीत की अंतिम पंक्तियाँ "सबके उपवन में\ फिर होंगे ब्रह्म कमल \ विकसे \ जब -जब दीप जले\ आँगन में \ ज्योति विहग हर्षे"।

इस संकलन के गीत दो बातों की ओर ध्यानाकर्षित कराते हैं। एक शिलाओं का दर्प, दूसरा शिलाओं के दर्प से टकराना, उसके विरुद्ध आवाज़ उठाना, समय की विभीषिका से टकराना। शिलाओं की प्रकृति है जड़ता, संवेदनहीनता और अहंमन्यता ! ऐसी प्रकृति या प्रवृति किसी भी संवेदनशील रचनाकार को उद्वेलित करने के लिए पर्याप्त है। जब ऐसी जड़ता समय के वक्ष पर आघात करती हुई, काल के पृष्ठों पर अपठनीय इबारत लिखती हो, जो भीतर ही भीतर हमारे अनुराग के नन्दनवन को खाक करने पर आमादा है, तब गीतकार सवाल करने को बाध्य हो जाता है "भीतर-भीतर\ जलन बढ़ रही\ अमलतास के मन में\ नाग- कालिया नाच रहा है\ पूरे वृन्दावन में। कैसे विष की प्यास बुझेगी\ बचुआ हमें बताना"। उस पर विडम्बना यह है कि कोई इस नाच के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने का साहस नहीं कर पा रहा। ऐसे में रचनाकार का दायित्व और भी बढ़ जाता है। यहाँ कवि खुल कर कहता है- "अपने में डूबी रहती है \ नदी नहीं कुछ कहती\ लहरों की तीखी टकराहट\ बस्ती सहती रहती\ टूट-टूट कर गिरे कँगूरे\ कारीगर सब हारे"।

कबीर कहते हैं- 'सुखिया सब संसार है\ खाये और सोये। दुखिया दास कबीर है\ जागे और रोये।' यह संवेदना का जागरण ही है, जो एक रचनाकार को न चैन से बैठने देता हैं न सोने। लोक के साथ तादात्म्य कर चुका रचनाकार अपने इर्द-गिर्द सारे संसार को देखता है। उसे वातावरण की भयावहता उद्विग्न करती है। ऐसे में कवि का स्वर प्रश्नवाचक हो जाता है "कहाँ ज्योति के विहँग फँसे\ किरनों के हिरने\ किसने लूटे\ खुशबू के झरने"। और- "कहाँ \ सुबह की लाली बिखरी \ कहाँ सिंदूरी शाम\ धुली दुपहरी किसने लूटी\ हम तो पूछेंगे"।

किसी भी रचनाकार की रचना में यदि समय का प्रतिबिम्ब न दिखे, तो वह सवालों के घेरे में खड़ा कर दिया जाता है। डॉ. अभय का कवि इस दिशा में चौकन्ना है, जाग्रत। उनके गीतों में समय, समाज के साथ-साथ राष्ट्रीय और वैश्विक सरोकारों की पड़ताल आश्वस्ति-दायक है। वे चतुर्दिक व्याप्त अंधकार-जनित वेदना का अनुभव ही नहीं करते, बल्कि ऐसे उजाले के उन्मेषी हैं जो समय और समाज को दिशा दे सके। यह कोई सहज कार्य नहीं, किन्तु असम्भव भी नहीं। डॉ. मनोहर अभय विपरीत परिस्थितियों से मुक्ति पाने के प्रति आशावान हैं, पूरे विश्वास से लबरेज़। इसी आशा और विश्वास के बल पर वे कहते हैं- 'केसर वाली महक बहेगी\ चन्दन धोई नदियों में\ बाग-बगीचे भी झूमेंगे\ बुलबुल की कनबतियों में"। कवि का गीतकार संकीर्णताओं से मुक्त होकर जनमानस के बीच, खेतों-खलिहानों की खुली हवा में सृजन के विविध आयामों की तलाश करता है। संकीर्णताओं से आबद्ध रचनाओं के प्रति वह सवाल उठाता है- "वे गीत चलेंगे कितने\ जो ठहरे हैं \ रनिवासों में\ गिन रहे गिन्नियाँ अनगिन\ चाँदी के राज- निवासों में\ जो उपजे सहज पसीने से \ खोलेंगे द्वार विधाओं के"। यूँ बदलाव दस्तक दे रहा है, धीरे- धीरे। इसकी आहट कवि को सुनाई पड़ रही है। उसका उद्‌घोष है- "हैं चिढ़ा रहे अम्बर को\ पर्वत ऊँचे गर्वीले \ दे रही चुनौती आँधी \कब टूट गिरें \ज्यों टीले\ हैं दरक रहीं चट्टानें \ टूटेंगे दर्प शिलाओं के"। कवि को फिर भी संतोष नहीं है। वह चाहता है आमूलचूल परिवर्तन- "नौका बदलो बँधु \सिन्धु सिन्धु गुस्साया है...-और न चल पाएगी \बीती राम कहानी\ आज बदलनी होगी \जैकिट फटी पुरानी"। किन्तु फटी जैकिट बदलें तो बदलें कैसे? आज भी, समता- समरसता और सामाजिक न्याय कोरे शब्द हैं, अख़बारी सुर्ख़ियाँ या पोस्टरों पर चस्पा किए महावाक्य (खींची गईं \लकीरें लम्बी \पहचान हुई बेकारों की \रोटी पानी मिले सभी को \ख़बर पढ़ी अख़बारों की \ सारे घर की \प्यास बंद है\ बेपेंदी के लोटे में। 'बेपेंदी का लोटा' देशज मुहावरा है जो सिद्धांत -हीन, अस्थिर बुद्धि, अनिर्णय और अनिश्चय का बोध कराता है। ऐसे वाक्य या मुहावरे कथ्य को अधिक तीखा और धारदार बनाते है। आंचलिक शब्दों के प्रयोग कवि की ग्राम्य संस्कृति की समझ को बिम्बित करती है, तो देशज मुहावरे नई ऊर्जा प्रदान करते है। नवगीतों के पुरोधा माहेश्वर तिवारी कहते हैं "डॉ. अभय के गीतों में सामाजिक चिंता अधिक महत्त्वपूर्ण है, जैसे एक गीत में उनके भीतर की जिजीविषा और समाज के हित की बात उभर कर आती है। 'फटी ओढ़नी ओढ़ \हमारी बिटिया कहती है \कभी हमारे दिन पलटेंगे' ये दिनों के पलटने की बात एक मुहावरे से जुड़ी हुई है और मुहावरों का प्रयोग इनकी रचनाओं में हुआ है, तो एक तरह से भाषा में भी एक नई ताजगी मिलती है।" भाषा की यह ताज़गी, आंचलिक शब्दों के संस्पर्श से और अधिक ताज़ी हो जाती है। पढ़िए- "अरी! दिया तौ बारि\अँधेरा खाए जाता है \घटा घिरी घनघोर \दुपहरी कजरारी \साँझ कटैगी कैसे \हुई सूर्य की ख्वारी....'कौन जन्म का \पापी बैठा\ऊँचे मूँढ़े पै\भाड़ झौंकती मरजादा है \तरस न खाए बूढ़े पै"। "भाड़ झोंकना" प्रचलित मुहावरा है। मर्यादा के अधिपतन के सन्दर्भ में इसका इसका प्रयोग सटीक लगता है। शीर्ष नवगीतकार डॉ. शांति सुमन कहती हैं "सच पूछा जाए तो प्रस्तुत संकलन के गीत समकालीन स्थितियों के अंतर्भूत सत्य के दस्तावेज़ हैं। ऐसे दस्तावेज़ लिखने वाले बहुत नहीं होते। भाषा की प्रांजलता और बिम्बों पर कवि की पकड़ प्रशंसनीय है। इतनी उज्ज्वल भाषा में इतनी बड़ी व्यवस्था के संकट और दुरभि-सन्धियों को लिखना गीतकार की आत्मीय बुनावट, गीतात्मक ऊर्जस्विता और सामजिक सोच का पर्याय है।" अंत में यह कहना समीचीन होगा कि नवगीत की परम्परा में डॉ. मनोहर अभय का यह गीत संकलन दीर्घ काल तक अपनी उपस्थिति का भान कराता हुआ, पाठकों-आलोचकों के सम्मुख चिन्तन के नए आयाम खोलेगा।

000

नई पुस्तक

(उपन्यास)

एक टुकड़ा आसमान

लेखक : विनोद कुशवाहा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

मूलत: कहानीकार परन्तु विभिन्न विधाओं में दखल रखने वाले लेखक विनोद कुशवाहा का नया उपन्यास 'एक टुकड़ा आसमान' शिवना प्रकाशन से हाल ही में प्रकाशित होकर आया है। विनोद कुशवाहा के अब तक उमड़ते मेघ पीड़ाओं के, तलाश खत्म नहीं होगी, तिलिस्म- सपनों की खिड़की का काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। छायाचित्रों पर आधारित पुस्तक 'मेरे चित्र - मेरे मित्र' प्रकाशित 'पुनश्च' की अनुषंग पत्रिका 'शिनाख्त' द्वारा सृजन पर केन्द्रित अंक का प्रकाशन। इस उपन्यास में विनोद कुशवाहा ने मानव मन की जटिलताओं को सामने लाने की कोशिश की है। सरल भाषा तथा सादी शैली में लिख गया यह उपन्यास इसी कारण पठनीय बन गया है। 'इस जन्म में ? मैं इस जन्म में अपने "पूर्णावतार" के साथ प्रकट हुई हूँ। सारे रिश्तों के साथ। मेरा ये जन्म केवल विराग के लिए हुआ है। बाकी सारे रिश्ते मेरे लिए औपचारिकता मात्र हैं। इस बात को समझने में आपको समय लगेगा।' जैसे संवाद पाठक को उपन्यास से जोड़ देते हैं।

000

(कहानी संग्रह)

मेरी चुनिन्दा कहानियाँ

समीक्षक : मनोज कुमार

लेखक : अशोक गुजराती

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

मनोज कुमार
बी-15/जी-1, डीएलएफ़, ग़ाज़ियाबाद-201 005।
मोबाइल- 9818257099।
ईमेल- kashyappublication@gmail.com

प्रस्तुत संग्रह में प्रसिद्ध कथाकार अशोक गुजराती की बारह चुनिन्दा कहानियाँ संकलित हैं। मूल रूप से लेखक आम आदमी की त्रासदियों, विडम्बनाओं तथा दुखों का चितेरा है। इन कहानियों के अंदरूनी सफ़र का लब्बो-लुआब है, सामान्य जन के आपसी एवं दुनियावी संबंधों का लेखाजोखा।

पहली कहानी 'भड़ास' में वे एक अपाहिज की कमतरी से उपजे रोष को प्रकट करने से पूर्व उसके जीवन का खाका यूँ खींचते हैं कि विपन्नावस्था से उबर कर उत्तरोत्तर उसकी उन्नति की सीढ़ियाँ पाठक साथ में चढ़ने लगता है। वह नौकरी कर रहा है, छोटी-सी लाइब्रेरी भी चला रहा है। वह कितना भी दृढ़, स्वाभिमानी, प्रामाणिक हो, उसकी अपंगता का उसे पूरा अहसास है। वही उसके क्रोध का कारण बनती है कि वह उसी की तरह लंगड़े लड़के को डाँटता है- 'लंगड़े स्साले!' यह हीन-भावना उसका पीछा नहीं छोड़ती। 'कस्टमर केयर' कहानी में किसी ईमानदार से प्रसंगवश हो गई ग़लती को बर्दाश्त न कर पाने की बेबसी है। लेखक ने लिखा है-'जब किसी सच्चे आदमी को झूठ का सहारा लेना पड़ता है, वह बेहद व्यथित होता है। उसने जीवन में दो बार अनायास बेईमानी कर ली- बहुत नाम-मात्र की, इसके लिए दुखी है। उसकी व्यावहारिक पत्नी उससे कहती है, 'किसी का झूठ निरस्त करने हेतु आपने असत्य का औज़ार इस्तेमाल किया, यह क़तई गुनाह नहीं है।'

'भगदड़' में आतंकवादी के द्वारा किसी अपने की हुई मृत्यु से हो रहे पश्चाताप को अंत में दर्शाया गया है। उससे पहले कथा कई मोड़ लेते हुए उसके आतताई बनने की मजबूरी को रेखांकित करती है। यही छेद है, हमारी व्यवस्था में। जो हद दर्ज़े तक सत्य-निष्ठ और अनुशासित होता है, उसको इतनी दारुण परिस्थितियों में फँसा दिया जाता है कि वह गुमराह हो जाए। और..।कोई कितना भी कट्टर दहशतवादी हो, यह हक़ीक़त वह कभी झुठला नहीं पायेगा कि उसके हृदय के कोमल भाग में उसके अपनों के लिए प्यार होता ही होता है। 'परख' में अच्छाई-बुराई किसी जाति विशेष पर आधारित न होने का मुद्दा उठाया गया है। एक अत्यंत धार्मिक स्त्री है। वह निम्नवर्गियों से, विधर्मियों से सीमातीत घृणा करती है। ऐसे संस्कार जिसके हों, भला वह अपने इकलौते बेटे को हरिजन की बेटी से विवाह की अनुमति कैसे दे सकती है? बेटा बावजूद इसके पिछड़ी जाति की अपनी सहकर्मी एवं प्रेयसी से शादी कर लेता है। उसकी माँ अचानक कैंसरग्रस्त हो जाती है। तब एक खेल खेला जाता है। उसकी अपरिचित दलित बहू नर्स बन उसकी दिन-रात सेवा करती है। उसके सहृदय शालीन बर्ताव से प्रसन्न होकर अंततः उसकी सास कह उठती है, 'मेरा बस चलता तो मैं इसे अपनी बहू बना लेती!'

'तालीम-ताल' में शिक्षा के क्षेत्र में हो रही धांधलियों को उजागर किया गया है। शिक्षा का वातावरण हरदम स्वच्छ, दोष-रहित, बेलाग तथा हर प्रकार की जालसाज़ी से दूर हो, ऐसा अपेक्षित है। मध्यप्रदेश के व्यापम घोटाले के बारे में सभी जानते हैं। वस्तुतः उसी पार्श्व-भूमि पर इस कहानी का यथार्थ खड़ा है। समूचे देश में ऐसे ही इस क्षेत्र में कई गड़बड़ियाँ होती रही हैं, हो रही हैं। इस सरस्वती के मंदिर को क्या इन दुराचारी गतिविधियों से निजात नहीं दिलायी जा

सकती?.. अगली कहानी 'ये नहीं कि..।' में 'लिव इन' से एक युवती के हतोत्साहित होने को विषय बनाया गया है। वह निकलती है प्रेम पाने की तलाश में लेकिन उलझ कर रह जाती है यौनिक संबंधों में। आज की स्त्री स्वअर्जन कर रही है। वह मानसिक स्वतंत्रता खोज रही है। होता यूँ है कि 'लिव-इन' में आज़ादी तो मिलती है स्वयं के व्यक्तित्व को पर इसके ख़तरे उसे आगाह भी करते रहते हैं। अगर वह माँ बन जाती है तब उसकी संतान बड़े होने पर पूछ सकती है कि मेरा पिता कौन है? अकेली स्त्री चाहे व्यक्तिगत रूप से कितनी भी मन-चेता हो जाए, समाज अपनी रूढ़ियों-परम्पराओं को छोड़ने के लिए तैयार नहीं होता। इसी के साथ पुरुष के चरित्र पर भी इस कहानी में कटाक्ष किया गया है।

दो हज़ार आठ में आई 'मंदी' की लहर ने कइयों को बेरोज़गार कर एक-एक पैसे का मोहताज़ कर दिया था। परिणामत: चन्द युवक आत्महत्या की ओर भी प्रवृत्त हुए। उस जानलेवा संघर्ष का उनकी जिजीविषा पर असर हुआ। इतनी संकट की स्थिति से बाहर आने का जिन युवकों ने दम भरा और हार नहीं मानी, आख़िर में उनकी ज़िन्दगी में संतुलन आ ही गया। 'बेध्यानी' जनता की ही नहीं, शासन की भी काफ़ी तकलीफदेह होती है। लापरवाही हर ओर छायी हुई है। अक्सर लोग समय के पाबंद नहीं रहते, मेहनत से जी चुराते हैं और दूसरों के कष्टों के प्रति तटस्थ रहते हैं। प्रशासन में ऐसे ही कर्मचारी भरे पड़े हैं। होता यह है कि आम आदमी इससे त्रस्त होकर अपने-आप में गालियाँ दे लेता है परन्तु व्यवस्था के कानों पर जूं भी नहीं रेंगती। भ्रष्टाचार इस बेपरवाही की नींव में ज़बरदस्त पैठा हुआ है। अलावा इसके यह कइयों की आदत में ही शुमार हो जाता है।

'जिजीविषा' में निर्धन अपने पेट की ख़ातिर विवश हो किस सीमा तक जा सकता है, यह बहुत ही मार्मिकता से लेखक ने वर्णित किया है। एक ग़रीब डोम की आवक निर्भर होती है, आ रही अर्थियों की संख्या पर। वह भी कितनी? ज्यों दयावश भिखारी के दामन पर कुछ सिक्के फेंक दिये जाते हैं, वैसे ही हालात होते हैं उसके। किसी प्रकार जीवन-निर्वाह चलता रहता है। ऐसे वक़्त वह और-और लोगों के मरने की दुआ न करे तो क्या करे.. और जब कतिपय दिन ख़ाली चले जाते हैं और उसकी माँ ही दम तोड़ देती है तब.. उस दृश्य को अपनी लेखनी से साकार किया है लेखक ने। वह देर रात अपनी माँ के भाव-दाह के पश्चात नदी में बह कर जा रहे कोयलों-लकड़ियों को इकट्ठा कर रहा है ताकि उन्हें बेचकर उसका परिवार दो रोटी पा सके।

'उठे हुए हाथ' में किताबों के प्रति समर्पण दर्शाया गया है। बाबरी मसजिद ढहाने के बाद भड़के दंगों का सचित्र आख्यान है यह कहानी। इस मर्माहत फ़साद के बीच एक बुज़ुर्ग लाइब्रेरी की पुस्तकें बचाने अकेला निकल पड़ता है। इस संकल्प के आगे चारों ओर लगी आग और गुंडागर्दी उसे विचलित नहीं कर पाते। यहाँ हाथों के उठने के अन्यान्य अर्थ देकर आशावादी अंत किया है। 'मैं ज़िन्दा रहना चाहता हूँ' -कहता है एक सिख, जब तथाकथित खालिस्तानियों को परास्त करने के पश्चात् गुमनाम रहना चाहता है। यह इसलिए कि वे उसे और उसके परिवार को जीवित नहीं छोड़ेंगे। वह सिख ट्रेन में हो रही लूटपाट, हिंसा से मुसाफ़िरों को सुरक्षा देने के लिए ख़ुद जान पर खेल जाता है।

आख़िरी कहानी 'लैंड स्लाइड' में एक दलित के सक्षम होते ही सवर्ण युवती से विवाह कर पहली पत्नी को धोखे से तलाक़ देने की दुखदायी कथा है। इसके ऐवज़ में उसे मिलता क्या है.. बस स्टैंड पर सवेरे-सवेरे एक वस्त्रहीन मतिभ्रम युवती उसे दिखायी देती है, जो उसकी अपनी बेटी से मिलती-जुलती है। शुरूआत में उसकी निर्धनता का दर्द मन को छू लेता है। वहीं उसके संपन्न होने पर अपने सजातीय सहपाठी से नफ़रत एक प्रश्न खड़ा करती है।

इन कहानियों में उद्दीप्त समस्याएँ, व्यथाएँ और चिन्ताएँ पाठक को झकझोरने और सही-ग़लत का निर्णय लेने में निश्चित ही कारगर होंगी, ऐसी उम्मीद है।

000

नई पुस्तक

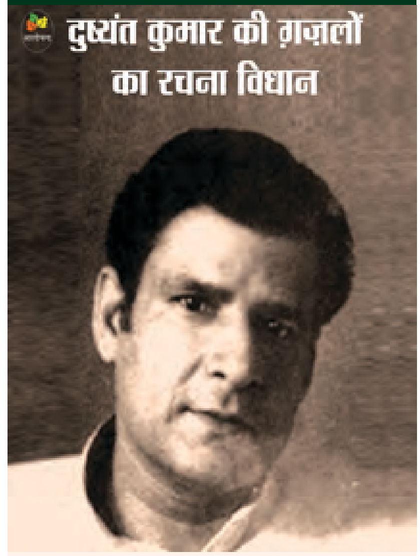

(आलोचना)

दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों का रचना विधान

लेखक : मिथिलेश वामनकर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों के व्याकरण पक्ष पर अभी तक कोई किताब उपलब्ध नहीं थी, लेकिन युवा लेखक मिथिलेश वामनकर ने अब यह किताब लिखने की मेहनत की है। वे कहते है- "जहाँ एक तरफ दुष्यन्त कुमार की ग़ज़लों के कथ्य और भावों पर लेख लिखे गए हैं, वहीं शिल्प पर बहुत कम शब्द ख़र्च किये गए हैं। विद्वानों और आलोचकों ने कहा कि दुष्यन्त कुमार ने हिन्दी ग़ज़ल में उर्दू ग़ज़ल के छंदों को त्याग दिया। यह घोषणा कि 'उनकी ग़ज़लों में उर्दू का जाना पहचाना व्याकरण नहीं है।' या 'उन्होंने अपनी ग़ज़लों को छंदों की उलझनों से दूर रखा।' जैसी घोषणाएँ सुनकर तो कोई भी अदबी स्तब्ध रह गया जिसे ग़ज़ल विधा की थोड़ी भी जानकारी हो। और ऐसी घोषणाओं ने ही मुझे दुष्यन्त कुमार के ग़ज़ल संग्रह 'साए में धूप' का शिल्प-विधान पर लिखने के लिए विवश कर दिया।"

000

पुस्तक समीक्षा

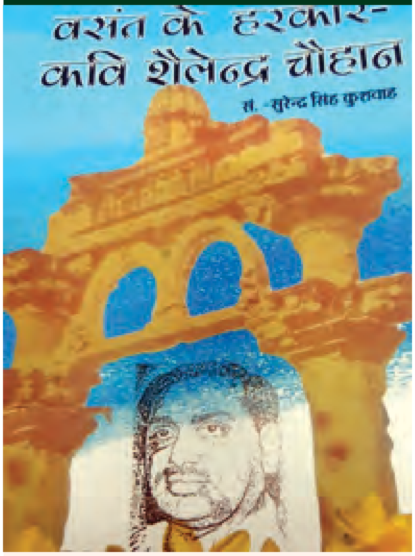

(कविता संग्रह)

वसंत के हरकारे - कवि शैलेन्द्र चौहान

समीक्षक : शिखर जैन

संपादक : सुरेंद्र सिंह कुशवाह

प्रकाशक : मोनिका प्रकाशन

विगत चार दशकों से हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं में अपनी प्रभावी और गरिमापूर्ण उपस्थिति दर्ज कराने वाले जुझारू एवं प्रखर साहित्यकार शैलेन्द्र चौहान के कृतित्व के मूल्यांकन को समेटती पुस्तक 'वसंत के हरकारे- कवि शैलेन्द्र चौहान' मेरे सामने है। इस पुस्तक का संपादन-संयोजन साहित्यकार सुरेंद्र कुशवाह ने किया है। शैलेन्द्र चौहान मूलत: कवि हैं लेकिन उन्होंने कहानियाँ, व्यंग्य, कथा रिपोर्ताज, संस्मरण और आलोचना के क्षेत्र में भी काम किया है। स्वतंत्र पत्रकारिता भी वे करते रहे हैं। 'धरती' नाम से एक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक पत्रिका का संपादन-प्रकाशन भी उन्होंने किया है। जिसके कुछ विशेषांक साहित्य जगत् में काफी चर्चित रहे। शैलेन्द्र के तीन कविता संग्रह प्रकाशित हुए हैं - 'नौ रुपये बीस पैसे के लिए' 1983, 'श्वेतपत्र' 2002 और 'ईश्वर की चौखट पर' 2004 में। एक कहानी संग्रह- 'नहीं यह कोई कहानी नहीं' 1996 में, एक संस्मरणात्मक उपन्यास 'पाँव ज़मीन पर' 2010 में। गत वर्ष उनकी काव्यालोचना पर कविता का जनपक्ष' नामक बहुचर्चित पुस्तक आई है। उनकी इन रचनाओं का आलोचनात्मक मूल्याँकन समय-समय पर होता रहा है। अब 'वसंत के हरकारे' में सभी विधाओं पर आलोचनात्मक लेख, टिप्पणियाँ और पुस्तक समीक्षा का समायोजन कर एक साथ प्रस्तुत करने का महत दायित्व सुरेंद्र कुशवाह ने गंभीरता से निर्वाह किया है। प्रारंभ में शैलेन्द्र के व्यक्तित्व और रचना कर्म पर अत्यंत आत्मीय तथा संवेदनापरक संस्मरण की शैली में विस्तार से सुपरिचित कवि-कथकार अभिज्ञात ने चर्चा की है। अभिज्ञात का मानना है कि शैलेन्द्र आस्वाद के नहीं आश्वस्ति के रचनाकार हैं। वे लिखते हैं कि शैलेन्द्र का होना मनुष्य समाज व दुनिया की बेहतरी के बारे में सोचते व्यक्ति का होना है। मुझे कई बार यह लगता है कि बेहतर सोचने वाले दुनिया के लिए उतने महत्त्वपूर्ण नहीं हैं जितने कि बेहतरी के बारे में सोचने वाले।

शैलेन्द्र चूंकि मूलत: कवि हैं इसलिए यह स्वाभाविक है कि उनकी कविताओं की अधिक चर्चा हो। संभवत: इसलिए पुस्तक में दस आलेख दो-एक टिप्पणियों सहित कविताओं पर केंद्रित हैं। 'श्वेतपत्र' संग्रह की कविताओं पर बसंत मुखोपाध्याय लिखते हैं कि 'शैलेन्द्र ने यथार्थ की अंदरूनी परतें उघाड़ने की अपनी जो विशिष्ट शैली विकसित की है वह अन्यत्र देखने को नहीं मिलती। उनकी कविताओं में एक छोर पर तो यथार्थ की संवेदनात्मक उपस्थिति है वहीं जीवन और जगत् का द्वंद्व संपूर्णता में उजागर करने की बलबती इच्छा भी है। इन कविताओं में अंतर्प्रवाहित काव्यात्मक ईमानदारी है। डॉ. वीरेन्द्र सिंह का मानना है कि 'शैलेन्द्र चौहान विज्ञानबोध के भिन्न रूपाकारों तथा प्रतीकों का प्रयोग यथार्थ के किसी पक्ष को गहराने तथा

शिखर जैन
85/175, प्रतापनगर, जयपुर, राजस्थान
302033
मोबाइल- 9414373188

व्यंजित करने हेतु करते हैं। यह बात श्री सिंह, शैलेन्द्र के कविता संग्रह 'नौ रुपये बीस पैसे के लिए' की इसी शीर्षक वाली कविता के संदर्भ में कहते हैं। जो अस्सी के दशक में एक दिहाड़ी मज़दूर की निम्नतम सरकारी मज़दूरी थी। यह कविता हाई वोल्टेज विद्युत पारेषण लाइन के निर्माण की श्रमसाध्य स्थितियों पर रची गई है। सुपरिचित कवि-ग़ज़लकार रामकुमार कृषक कहते हैं- 'कविता के भावलोक में उतरने के लिए ज़रूरी है कि उसके बाह्य अथवा परिवेशगत यथार्थ को समझा जाए। समकालीन कविता के संदर्भ में यह और भी ज़रूरी है, क्योंकि स्थितियाँ चाहे जितनी भी जटिल हों, यथार्थ से वे आज भी सीधे टकरा रही हैं। अकारण नहीं शैलेन्द्र चौहान की कविता कवि से कुछ इसी तरह संवाद करती है। 'ईश्वर की चौखट पर' संग्रह पर यह टिप्पणी कृषक जी ने की है। डॉ. शंभु गुप्त का मत है कि 'शैलेन्द्र चौहान दरअसल बिम्बधर्मिता को एक व्यापक पैमाने पर अपनाते हैं। वे टुकड़ा-टुकड़ा बिम्ब के स्थान पर यथार्थ के एक समूचे चित्र या समूची स्थिति के अंकन का प्रयास करते हैं। डॉ. अजय कुमार साव शैलेन्द्र को प्रतिरोध का बुनियादी हस्ताक्षर निरूपित करते हैं तो डॉ. सूरज पालीवाल मानते हैं कि शैलेन्द्र की कविता, कविता के प्रचलित मानदंडों के विरोध में खड़ी है। विजय सिंह का मानना है - 'कुछ कवि जिन्होंने सचमुच कवि होने की सादगी भरी संजीदा जद्दोजहद की है वे इस भीड़ में अलक्ष रहे आए हैं, उनका इस तरह अलक्ष रह जाना उन पाठकों को तो सालता ही है जो गंभीर और लोकप्रिय कविता के बीच किसी अच्छी कविता का इंतजार करते हैं शैलेन्द्र चौहान एक ऐसे ही कवि हैं जिनकी कविता भाषा के स्तर पर सहज तो है लेकिन लोकप्रिय नहीं है, क्योंकि उसके भीतर एक महत्त्वपूर्ण वैचारिक द्वंद्व है, जो मनुष्य के सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नयन की आकांक्षा का अनूठा पर वास्तविक उपक्रम है।' शैलेन्द्र की कहानियों पर डॉ. प्रकाश मनु का विस्तृत आलेख है। मनु लिखते हैं- कहानीकार की मूल प्रतिज्ञा इन्हें कटे-सँवरे या तराशे हुए रूप में सामने रखकर पाठकों को कथा-रस में सराबोर करना शायद रहा ही नहीं। शैलेन्द्र अपनी कहानियों में अपनी गुम चोटों और अपने आसपास के परिवेश की टूट-फूट और छूटती जा रही जगहों को दिखाना कहीं ज़्यादा ज़रूरी समझते हैं।' शैलेन्द्र चौहान के उपन्यास 'पाँव ज़मीन पर' टिप्पणी करते हुए महेन्द्र नेह कहते हैं- 'पाँव ज़मीन पर' मात्र विषाद और संत्रास के चित्र नहीं हैं बल्कि जीवन के बहुरंगी अनुभवों का वह रस वह कदम-कदम पर मौजूद है जो लोक का प्राण तत्व और उसकी आत्मशक्ति है। जीवन का उल्लास जहाँ छलकता हुआ मिला है शैलेन्द्र ने ख़ूब-ख़ूब उसमें डूबा, तैरा और नहाया है। इस उपन्यास पर अर्जुन प्रसाद सिंह का मत है- 'पाँव ज़मीन पर पुस्तक में शैलेन्द्र चौहान ने भारतीय ग्राम्य जीवन जो बहुरंगी तस्वीर उकेरी है उसमें एक गहरी ईमानदारी है और अनुभूति की आँच पर पकी संवेदनशीलता है। ग्राम्य जीवन के जीवट, सुख-दुख, हास-परिहास, रहन-सहन, बोली-बानी को बहुत जीवंत रूप में प्रस्तुत किया है। यह सब मिलकर पाठक के समक्ष सजीव चित्र की सृष्टि करते हैं और चाक्षुस आनंद देते हैं।' शैलेन्द्र चौहान की आलोचना पुस्तक 'कविता का जनपक्ष' पर दो आलेख हैं। डॉ. शीलचंद पालीवाल का मत है - 'आलोचक शैलेन्द्र चौहान ने इस पुस्तक में कविता के जनपक्ष को समझाने के लिए उसे मुख्यत: दो रूपों में व्याख्यायित किया है। एक जनपक्ष का आंतरिक पक्ष और दूसरा जनपक्ष का शिल्प पक्ष। इन आलेखों के अलावा शैलेन्द्र द्वारा संपदित 'धरती' पत्रिका के बारे में जानकारीपूर्ण सामग्री है। उनकी पत्रकारिता पर संक्षिप्त टिप्पणी है और शैलेन्द्र पर शेख मोहम्मद की एक आत्मीय एवं महत्त्वपूर्ण कविता है मित्र-शैलेन्द्र चौहान। कुल मिलाकर शैलेन्द्र चौहान के कृतित्व पर एक गंभीर परिचयात्मक आलोचना विमर्श है जिसे संपादक सुरेंद्र कुशवाह ने पूरी ज़िम्मेदारी और समर्पण के साथ प्रस्तुत किया है वे साधुवाद के पात्र हैं।

000

नई पुस्तक

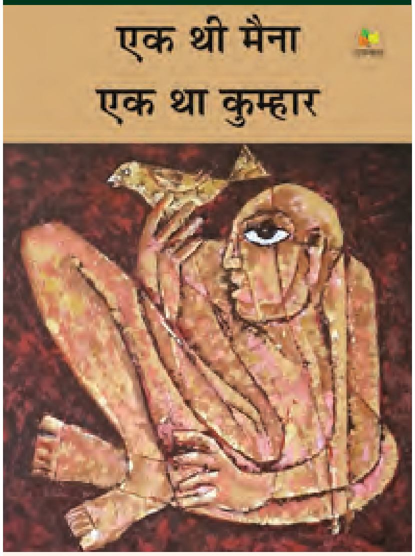

(उपन्यास)

एक थी मैना, एक था कुम्हार

लेखक : हरि भटनागर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

चर्चित कहानीकार, उपन्यासकार हरि भटनागर के बहुचर्चित तथा प्रशंसित उपन्यास 'एक थी मैना एक था कुम्हार' का नया संस्करण शिवना प्रकाशन से प्रकाशित होकर आया है। इस पुस्तक पर चर्चा करते हुए वरिष्ठ कथाकार असगर वजाहत ने कहा था- "भूमंडलीकरण के इस दौर में ग्रामीण जीवन और परिवेश का धरातल काफी हद तक प्रभावित हुआ है और इसी बदलते दौर तथा हालातों को क़िस्सागोई तथा फैंटेसी के जरिये कथाकार हरि भटनागर ने बड़ी ही सहजता से अपने उपन्यास में दर्ज किया है। देशज ठाठ लिए उपन्यास 'एक थी मैना एक था कुम्हार' अपने समय का एक ज़रूरी विवरण प्रस्तुत करता है। पूरा उपन्यास अपनी रचना में पठनीय, सुंदर और असरदार बन पड़ा है। हरि अपने कथात्मक कौशल का बेहतर ताना-बाना बुनते नज़र आते हैं। उपन्यास पारंपरिक क़िस्सागोई लोककथा और आख्यान का अद्भुत मेल है।"

000

पुस्तक समीक्षा

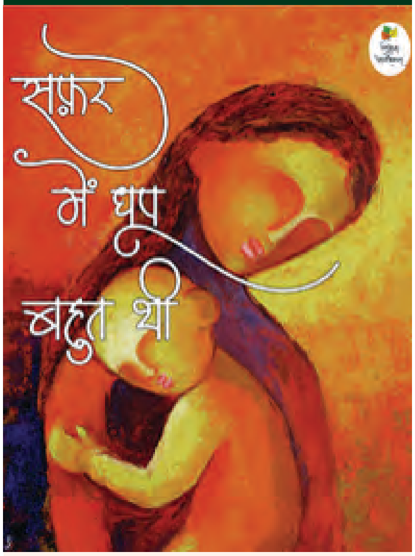

(उपन्यास)

सफ़र में धूप बहुत थी

समीक्षक : शैलेन्द्र शरण

लेखक : ज्योति ठाकुर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

कोई किताब आप पढ़ना आरम्भ करें और जब वह, न तो हाथों से छूटे न ही मष्तिष्क से, आप उसे पूरा पढ़ कर ही दम लें ! तब क्या पढ़ते वक्त आप उसकी भाषा शैली के बारे में सोचेंगे ? क्या आप उसके शिल्प के बारे में सोच पाएँगे ? बिल्कुल नहीं .... उसके कथानक के बारे में भी आप इसलिए नहीं सोच पाएँगे क्योंकि यह किताब आपको मौका ही नहीं देगी।

बतकही की शैली में लिखे गए इस उपन्यास की जितनी तारीफ़ की जाए कम है। मात्र बहत्तर पृष्ठों में सिमटा पाँच सौ पृष्ठों का उपन्यास है "सफ़र में धूप बहुत थी"। लेखिका हैं पुलिस अधीक्षक ज्योति ठाकुर। सुखद इत्तेफ़ाक़ है कि जब वे इस उपन्यास को "शिवना प्रकाशन" को देने पंकज सुबीर जी के पास बैठकर इसका ज़िक्र कर रहीं थीं, तब मैं अपने मित्रों के साथ सीहोर के शिवना कार्यालय में मौजूद था। पंकज जी का आग्रह था "ज्योति जी - इसे कुछ और बढ़ा लीजिए। ज्योति जी कह रहीं थी, नहीं ! पंकज जी जैसा है वैसा ही स्वीकार कर लीजिए। मेरे पास न तो वक़्त है न मैं नियमित लेखिका हूँ।

सुखद यह है कि, उपन्यास हाथों में है और यह उपन्यास, उपन्यास के सारे शिल्पों तथा नियमों को तोड़ता हुआ एक मुकम्मल और सफल उपन्यास होने की पात्रता पाने में पूर्णत: सक्षम है। यह उपन्यास लिखा नहीं गया बल्कि कहा गया है। क्या कोई उपन्यास कहा जा सकता है ? उत्तर हाँ में इसलिए दिया जा सकता है कि इसे आप हाथों में तो लीजिये। उपन्यास खुद ही आपसे "हाँ" कहलवा लेगा।

इस उपन्यास में आरम्भ से अंत तक दुख ही दुख हैं। पीड़ा ही पीड़ा। इतनी कि आप बीसियों बार द्रवित होते हैं। बीसियों बार आक्रोश से भर उठते हैं। बीसियों बार आपका धैर्य जवाब दे जाता है।

यह एक माँ की ऐसी पीड़ाजनक कथा है जिसका अंदाज़ लगाना कठिन है। यह कथा जवान होती बेटियों की ऐसी व्यथा है, जो अब तक अनसुनी और अनपढ़ी है। यह उपन्यास हिम्मत और हौसले का ऐसा ध्रुव तारा है, जो प्रत्येक रात उसी क्षमता से चमकता है।

यह कथा दादी के दुखों से आरम्भ होती है, फिर माँ पर आती है, फिर बेटियों पर। तीन पीढ़ी के अपार दुखों को शिद्दत से पार कर अंतत: एक बयार सुखों की बह जाती है जिसे अंतिम तीन पृष्ठों में ही समेट लिया गया है। इस उपन्यास में सैंकड़ों कथाएँ हैं जिन्हें यदि सलीक़े से सँजोया जाता तो यह उपन्यास किसी भी स्थापित और प्रतिष्ठित लेखक के बहुत बड़े से उपन्यास के जितना गंभीर और उदात्त होता।

यह उपन्यास नायक (खल) राम के उस चरित्र को उद्घाटित करता है जिसे सोचा नहीं जा सकता। 'राम' जैसे नाम को पाठक के मस्तिष्क पर हथोड़े की तरह चोट करता है।

यथार्थ इतना कड़वा होता है ? क्या कोई दु:ख ऐसा भी हो सकता है ? क्या कोई दुखों से इस तरह भी पार पा सकता है कि अपना जीवन सँवार ले ? ज़िंदगी कतई ऐसी नहीं होती। किन्तु आपकी सभी धारणाएँ ध्वस्त कर देता है यह उपन्यास।

दरसल यह उपन्यास एक कड़वा यथार्थ है। इसीलिये कल्पनाओं के सभी स्तभों को तोड़ देता है। पाठक की विचार क्षमता से परे है इसकी कथा, इसका कथानक बावजूद इस सबके, इसी काल की घटनाओं को कहता है। इतने छोटे से उपन्यास में आप जो भोगते हैं वह किसी के भी जीवन में कल्पनातीत है। अगम्य है यह उपन्यास। लेखिका ज्योति ठाकुर को अशेष शुभकामनाएँ।

000

शैलेन्द्र शरण
79, रेलवे कॉलोनी, इंदिरा पार्क के पास
आनंद नगर, खण्डवा (म.प्र.)
मोबाइल-8989423676
ईमेल- ss180258@gmail.com

पुस्तक समीक्षा

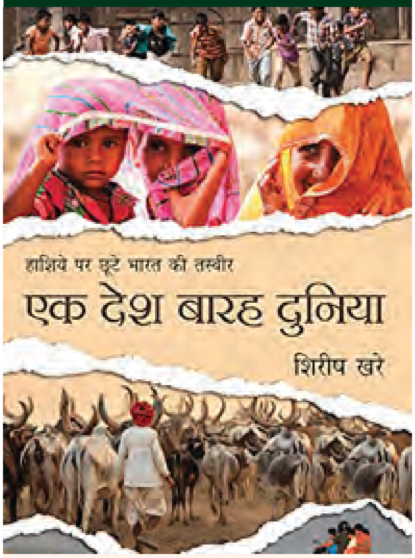

(रिपोर्ताज)

एक देश बारह दुनिया

समीक्षक : ब्रजेश राजपूत

लेखक : शिरीष खरे

प्रकाशक : राजपाल एंड संस, नई दिल्ली

ब्रजेश राजपूत
ई-109/30
शिवाजी नगर, भोपाल, 462016, मप्र
मोबाइल- 9425016025
ईमेल- brajeshrajputbhopal@gmail.com

एक देश बारह दुनिया, उस दुनिया की कहानियाँ हैं जिनको लोग भुला बैठे हैं। ये सच्ची कहानियाँ झकझोरती हैं। इनको पढ़कर हैरानी होती है। आप सोचेंगे कि क्या ये दुनिया आस-पास है। यदि है तो फिर ये दुनिया आँखों से ओझल क्यों हो गई। ये दुनिया लोगों को दिख क्यों नहीं रही। इस दुनिया के दुख-दर्द इतने अलग क्यों है। इस दुनिया के लोगों के लिये सरकार कुछ कर क्यों नहीं रही। दरअसल इस दुनिया के रहवासी हैं कुपोषण के शिकार आदिवासी, नक्सलियों की हिंसा झेल रहे ग्रामीण, घुमंतू और अपराधी घोषित जातियों के लोग, ज़मीन छीन लिये गए किसान, शहरीकरण के विस्थापित, गाँव में होने वाले यौन शोषण के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाती महिलाएँ और शहरी वेश्याएँ। दरअसल इस दुनिया की ख़बरें कुछ साल पहले तक हमें मिलती रहतीं थीं मगर अब मीडिया में टीजी यानी कि टारगेट ऑडियंस का बोलबाला है। हमें वही दिखाना है, जो हमारा दर्शक या पाठक पढ़ना चाहता है। सर्वे रिपोर्ट पर तय किये गए इस अजीब से तर्क और बाज़ारवाद के फेर में अख़बार और टीवी चैनलों में इस दुनिया में बसने वालों के समाचार मिलने अब तकरीबन बंद ही हो गए हैं। मगर युवा पत्रकार शिरीष खरे का शुक्रिया कि उन्होंने हमें यह खो सी गई दुनिया दिखायी। किताब की हर कहानी चौंकाती है और कुछ हद तक रुलाती भी है।

फिर चाहे वो सच्ची कहानी महाराष्ट्र के मेलघाट के गाँवों की हो, जहाँ कुपोषित बच्चे की माँ सपाट अंदाज़ में अपने बेटे की मौत पर कहती है कि वो कल मर गया तीन महीने भी नहीं जिया या फिर छत्तीसगढ़ के दरभा के क़स्बों की वो कहानी जहाँ सरकारी अफ़सर कहता है कि बाहर हाट बाज़ार लगा है मगर कब यहाँ गोलियाँ चल जाएँ और कितनी लाशें बिछ जाएँ कोई नहीं जानता। राजस्थान के बायतु गाँव की वो कहानी भी हिला देती है जिसमें गाँव के बड़े लोगों के बलात्कार का शिकार होने के बाद अदालत के चक्कर काट रही युवती कहती है कि मेरी असली फोटो और नाम ही देना भाई नहीं तो कुछ मत छापना। गाँव के जिन ताऊ लोगों के सामने लाज शर्म रहती थी जब उनके सामने ही घाघरा उठ गया तो उनसे क्या डर और शर्माना जिनको हम जानते भी नहीं। सूरत को मैं देश का सबसे सुंदर शहर मानता था वहाँ की सड़कें और फ्लाईओवर के हमेशा गुण गाता था मगर अब सूरत जाऊँगा तो वो मीराबेन याद आएँगी जिनको महीनों से रात-दिन नींद नहीं आती। बढ़ते शहरीकरण के कारण मीराबेन सरीखी हज़ारों महिलाएँ बार-बार अपने घर मोहल्लों से उजाड़ी गईं हैं। बार-बार उनको नई-नई जगह बसाया गया। अब ये सरकारी गाड़ी देखकर ही डर जातीं हैं। जैसे ही बस्ती में नगर निगम बिजली, पानी का चार्ज लेना बंद कर देती है, ये रहवासी समझ जाते हैं कि अब वो यहाँ कुछ दिनों के मेहमान हैं। यहाँ अल्फ्रेड जैसे लोग हैं जिन्होंने एक दिन में दो-दो हज़ार झोंपड़े और झुग्गियाँ उजड़ते देखे। सड़क, मॉल, फ्लाईओवर के रास्ते में आ रहे इन झोपड़ों में रहने वालों को हटाकर बसाया जाता है शहर से बाहर जहाँ ना रोज़गार होता है और ना रास्ते। किताब में नर्मदा किनारे की रिपोर्ट भी चौंकाती है, जहाँ बताया जाता है कि नदी किनारे के रेतीले घाट कैसे मैदान होते जा रहे हैं। चाहे वहाँ रात-दिन चल रहा अवैध रेत उत्खनन हो या फिर नदी किनारे बन रहे कारखाने और थर्मल प्लांट। बेज़ुबान नदी को चुनरी चादर चढ़ाकर आस्था का ढोंग करने वाले नेता ही उत्खनन और नदी किनारे के कटते पेड़ों से आँखें मूँदकर बैठे हैं। अपने आपको घुमंतु पत्रकार कहने वाले शिरीष अपने पाठक को मुंबई के कमाठीपुरा की अँधेरी बदबूदार कोठरियों में भी ले जाते हैं जहाँ रहने वाली वेश्याएँ ये कभी नहीं कहतीं कि वेश्यावृत्ति ने उनको आज़ादी का अहसास कराया। वक्त और परिस्थितियों की मारी इन ग़रीब वेश्याओं को इन कोठरियों में हर वक्त नरक सी घुटन और बीमारियों के सहारे आने वाली मौत का अहसास हर वक्त होता है।

शिरीष की इस किताब हमें उस दुनिया में जाती हैं जहाँ हम अब जाना नहीं चाहते। मगर शिरीष अपने इन यात्रा वृत्तांत की मदद से हमें उन इलाकों में ले जाते हैं, वहाँ रहने वालों के दुख दर्द से परिचित कराते हैं ।पढ़कर लम्बे समय तक याद रखने वाली अच्छी किताब।

000

पुस्तक समीक्षा

(कविता संग्रह)

हक़ीक़त के बीच दरार

समीक्षक : मनीष वैद्य

लेखक : ली मिन-युंग

अनुवाद : देवेश पथ सरिया

प्रकाशक : कलमकार मंच, जयपुर

'हक़ीक़त के बीच दरार' में ली मिन-युंग की ताइवानी कविताओं का हिन्दी में अनुवाद युवा कवि देवेश पथ सरिया ने बख़ूबी किया है। ली ताइवान के जाने-माने कवि हैं और विश्व की कई भाषाओं में उनका अनुवाद हुआ है। बड़ी बात यह है कि भौगोलिक और संस्कृति की पर्याप्त विविधता के बावजूद ये कविताएँ कई मायनों में हमें अपनेपन से जोड़कर इंसानी सरहदों को तोड़ती हैं। दरअसल यह कविता के वैश्विक सरोकारों का वैचारिक जुड़ाव है। पढ़ते हुए हमें लगता है कि ठीक यही बात तो हमारे आसपास भी घट रही है। यही तो हम भी चाहते हैं। ली की कविताओं के ज़रिए हम ताइवान को जान सकते हैं, वहाँ के लोगों का जन-जीवन और उनके संघर्षों को पहचान सकते हैं।

कलम को बेलचे की तरह इस्तेमाल करने वाला यह ताइवानी कवि ली मिन-युंग है। अभी-अभी मैं इस कवि की पैंसठ कविताओं से मिलकर लौट रहा हूँ, तो ख़ुद को भीतर से बहुत भरा हुआ-सा महसूस कर रहा हूँ। अपने देश की मिट्टी से गहरे तक जुड़े इस कवि को पढ़ना अपने आप को समृद्ध करने जैसा है। इन कविताओं में कवि का हमारे समाज और समय को देखने का नज़रिया एकदम साफ़ है। इनमें संवेदना की गहराई है, विचारों की व्यापकता है, प्रतिरोध का ताप है, हुकुमत के तेवर हैं और लोक के प्रति गहरी निष्ठा है। यह कवि धरती पर प्रेम को लहलहाते हुए देखना चाहता है।

कवि मनुष्यता का प्रबल पक्षधर है। वह दुनियादार सरहदों को नहीं मानता। उसका भरोसा विश्व बंधुत्व में है। सरहदें कविता की ये पंक्तियाँ इसे पुख्ता करती हैं- "और वे होते कौन हैं / सरहदें तय करने वाले / लोहे के परकोटे बनाकर / कँटीली बाड़ / कस देती है लगाम / उत्कंठा पर लंबी यात्राओं की" इसी कविता के आरंभ में वे कहते हैं कि नीले सागर से घिरे एक द्वीप की कोई सरहद नहीं होती।

कविता इस समाज से इतर नहीं हो सकती। समाज उदास हो तो कविता ख़ुशी के गीत कैसे रच सकती है। वह भी इसी उदासी का आख्यान रचेगी। आज के बेहद कठिन और क्रूर होते जा रहे समय में हमारे बीच की सहज हँसी ख़त्म होती जा रही है। उदासी, दु:ख और एक ख़ास तरह के डर या कहें खौफ़ का माहौल है, जीवन दु:ख, उदासी और निराशा के घटाटोप में है। ऐसे में कविता भी उदासी का महाख्यान रचते हुए हमारे आसपास प्रेम और मनुष्यता में पूरा भरोसा जगाती है। कविता यहाँ प्रतिरोध है और उम्मीद भी।

कवि अपने समय में समाज को चीन्हता है। वह आसपास की चीज़ों को कितनी शिद्दत से देखता है और उन्हें कविता में लाता है, इसकी बानगी हमें 'यह शहर' कविता में मिलती है। वे कहते हैं कि शहर में हम अपने आप को भीड़ से छुपाते हैं, गंदली हवाओं में अपनी चिंताएँ ढँकते हैं और लालच को छिपा हुआ रहने देते हैं। काँच के परदे हमारी ख़ाली आँखों और भारी धातु हमारे बेचैन दिल का दमन करती है आगे वे कहते हैं कि शहर में सहानुभूति का अभाव गहराता जा रहा है और अलगाव बढ़ता जा रहा है। भिंची हुई खिड़कियों और दरवाज़ों के पीछे हम ख़ुद को क़ैद रखते हैं और अधिशासी पार्टी के आदेश में सिर हिलाते हैं। हम सोच-विचार की सामर्थ्य को त्यागकर बुरे सपनों के बीच निश्चिंत सोते हैं। यहाँ शहर का नॉस्टेल्जिया या यशोगान नहीं है बल्कि उनकी नज़रें शहर और उसके लोगों की ज़िंदगी को एकदम अलग तरह से देखती हैं- / "ज़िंदगी / एक लालबत्ती से पार गुज़रती / ठक-ठक की धातुई आवाज़ करती / रेल के क्रासिंग पार करती / आसानी से उड़ती जाती है / तीखे हॉर्न की ध्वनि में / घुला-मिला, यह शहर / भारी-भरकम टायरों के नीचे कुचलता, यह शहर / चीखे जाता है लगातार।"

अपने द्वीप के वर्तमान से दुखी होकर वे कहते हैं कि ताइवान की आत्मा को शक्ति संपन्नों का भ्रष्टाचार गला रहा है तो भविष्य के लिए संकेत करते हुए वे आह्वान करते हैं कि लोगों को ख़ुद उठ खड़ा होना पड़ेगा तभी कोई रास्ता निकल सकता है। उनके लिए सबसे बेहतर और पसंदीदा दृश्य है कि सूरज चढ़ने से पहले एक नवजात को हौले से कोई नर्स झूला झुला रही हो।

000

मनीष वैद्य
11 ए, मुखर्जीनगर, पायनियर चौराहा,
देवास (मप्र) पिन 455 001
मोबाइल - 98260 13806
ईमेल - manishvaidya1970@gmail.com

पुस्तक समीक्षा

(संस्मरण)

त्रासदी का बादशाह- रमेश बत्तरा

समीक्षक : डॉ. गीता डोगरा

संपादक : प्रेम जनमेजय, तरसेम गुजराल

प्रकाशक : प्रलेक प्रकाशन प्रा. लि., मुंबई

रमेश बत्तरा ने अपना आँचल खोल कर बिछा रखा था लेने को नहीं बल्कि दोस्तों को बहुत कुछ बाँटने के लिए। जब तक रहे, बाँटते रहे। न भी बाँटा तो कुछ लोग छीन ले गए और रमेश मुस्करा दिए बस। कोई उलाहना नहीं। रमेश बत्तरा का जीवन लेखन व दोस्तों को सँवारने में बीता। पर मौत बराबर दस्तक देती रही, जिसे रमेश सुन रहा था। रमेश ने जीवन भर जो दोस्त बनाए उनको मिलने की ख्वाहिश ने उन्हें उन दरवाज़ों पर दस्तक देते वह थके नहीं। कितने वर्षों बाद भी प्रेम जनमेजय और तरसेम गुजराल के मन पर उनके मन का स्नेह भी दस्तक देता रहा। कैसा निर्णय ले लिया। स्वार्थ में बँधा निर्णय नहीं था यह कि इन दोनों के प्रयास के पीछे एक कारवाँ बन गया। दोस्त ही तो बनाए थे रमेश ने। फूल खिला दिए उसने और दोस्तों ने दिए रेगिस्तान। ऐसे जो कभी नकली बारिश भी करते पर रमेश सब समझते हुए भी मुस्कान बिखेरता रहा। प्रस्तुत पुस्तक में लगभग 37 लेख जो सीधा रमेश से जुड़ थे.. इसके अतिरिक्त रमेश पर कुछ विमर्श कुछ रमेश पर लिखा जो अनदेखा रह गया। उनमें उनकी कहानियाँ भी हैं दोस्तों के ख़त भी। और भी कई महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ इत्यादि। यह सब जुटाना सरल न था। मित्रों से लिखवाने का काम भी टेढ़ा होता है। बार-बार फ़ोन करना सामग्री को सिलसिलेवार रखना संपादन करना। यह प्रेम जनमेजय और तरसेम गुजराल का छोटा काम नहीं।

प्रथम लेख चित्रा मुद्गल का 'आत्महन्ता के स्मृति कक्ष में' एक भावपूर्ण लेख है। चित्रा जी लिखती हैं रमेश को इतने कष्ट में देख कोई भी कितनी रातें सो नहीं सका होगा और मैं सोचती हूँ कि यह लिखना भी कितना कष्टदायक होगा। इस सारी पुस्तक में जितने भी लेख हैं वहाँ जहाँ रमेश की उदारता भी है कष्ट वाला ऐपिसोड भी। दोनों रुलाते ही हैं। सारिका का दिल्ली आना भी एक ऐसा वाक़या था जिसे रमेश व अवधनारायण ने झेला भी और सँभाला भी। इस पुस्तक की समीक्षा भी रमेश बत्तरा संस्मरण जैसी ही है।

बहरहाल इस पुस्तक में बलराम, प्रेम जनमेजय, महेश दर्पण, सुरेश उनियाल, तरसेम गुजराल, त्रिलोक दीप, कश्मीर पन्नु, क्षमा शर्मा, केवल सूद, डॉ. इंदु बाली, वीरेंद्र मेंहदीरत्ता पृथ्वीराज अरोड़ा, सिमर सदोष, विकेश निझावन, कमलेश भारतीय, सैली बलजीत, बलजिंदर सिंह, गीता डोगरा, सुभाष नीरव, नरेंद्र निर्मोही, और भी कितने लेखक जिन्होंने रमेश को भीतर तक जाना और आज भी उनकी यादें समेटे हैं। यह पुस्तक सजीव पुस्तक है। इसे पढ़ते हुए ऐसा महसूस होता है जैसे रमेश अभी एक प्यारी सी मुस्कान के साथ पास ही खड़ा है। रमेश से मिलना मिलाना से लेकर लेखन की पाबन्दियाँ, नियम, उसकी अपनी ड्यूटी के दौरान कई नियम जिसके दौरान उसे अपने महत्त्व को भी उजागर करना था सभी आपको चित्रा मुद्गल जी के लेख से मिलेंगे। सब लेखकों के अपने अपने अनुभव हैं जिन्हें इस पुस्तक में शामिल किया गया है। सबकी भाषा सरल सटीक है।

इसमें एक महत्त्वपूर्ण लेख उनकी धर्मपत्नी जया रावत का भी शामिल किया गया है "मैं भी मुँह में ज़बान रखती हूँ" जया चूँकि रमेश जी के साथ परिणय सूत्र में बँधी थी अत: उन्हें नज़रंदाज नहीं कर सकते। लेकिन उसके व्यवहार ने रमेश को आसमाँ से धरती पर पटकने में कतई भी तकलीफ नहीं हुई। वह था रमेश जो सब सह गया। बच्चों के मोह का प्यासा रमेश जिसने सहा बस सहा। वह अनुभव कर सकता था कि कहीं कुछ टूटा था। और उसकी किरचियाँ उसके मन और शरीर को लहुलुहान कर रहे हैं, आख़िर इंसान ही तो था। एक फ़ैसला और खाली हाथ बाहर हो लिया। एक हिस्सा तरसेम को लिखे ख़तों का भी है। इसमें वे ख़त भी शामिल हैं जो रचना प्रक्रिया व कुछ निजी संबंधों के आधार की बुनियाद पक्की होने की सांकेतिक भाषा है। रमेश बत्तरा पर विमर्श में विनोद शाही का आलेख 'कुएँ की सफाई के बहाने" एक सशक्त लेख है। डॉ. माहेश्वर व युद्धवीर ने भी अपने अनुभव लिखे हैं।

यह पुस्तक पढ़ेंगे तो जानेंगे कि उसके दोस्त कितना चाहते हैं उन्हें आज भी। प्यार और मोह के धागों में बँधी यह पुस्तक मात्र पुस्तक नहीं रमेश का जीता जागता दस्तावेज़ है।

000

गीता डोगरा
ईमेल- parasmani.geeta@gmail.com

पुस्तक समीक्षा

(कविता संग्रह)

पेड़ की पोशाक

समीक्षक : रमेश शर्मा

लेखक : डॉ. अंजुमन आरा

प्रकाशक : मेधा बुक्स, नई दिल्ली

"पेड़ की पोशाक" डॉ. अंजुमन आरा का पहला कविता संग्रह है जो 2017 में मेधा बुक्स से प्रकाशित हुआ है। इन दिनों रेवेंशा विश्वविद्यालय कटक ओड़िसा में हिन्दी की एसोसिएट प्रोफ़ेसर अंजुमन आरा जेएनयू में केदारनाथ सिंह की शिष्या रही हैं। ज़ाहिर सी बात है कि उनके सान्निध्य का असर अंजुमन की अधिकांश कविताओं पर भी दिखता है। इस संग्रह में 61 कविताएँ हैं जो प्रगतिशील तेवर की विविधरंगी कविताएँ हैं। अंजुमन की कविताओं की दुनिया जिन कथ्यों से रची बुनी गई है उन कथ्यों में स्त्री की दुनिया का भूगोल एक बड़ा आकार लिए हुए है। ज़ाहिर सी बात है एक स्त्री के पास स्त्री द्वारा जीवन में भोगे गए सुख-दुख, जीवन के उतार-चढ़ाव के यथार्थवादी अनुभव होते हैं जिनका उसकी कविता में उतर आना स्वाभाविक लगता है। इस नज़रिए से भी देखें तो स्त्री की दुनिया पर लिखी गई अंजुमन की कविताओं में वही स्वाभाविकता कई जगह धीमे कदमों के साथ आती-जाती हुई लगती है।

घर बसाने और घर चलाने के बीच का जो उद्यम है वह उद्यम औरत के सृजनात्मक संघर्ष के बिना संभव नहीं। अपनी कविताओं में अंजुमन उस सृजनात्मक संघर्ष की आग्रही कवियित्रियों में अपने को शुमार करती हुई आगे बढ़ती हैं। अंजुमन मनुष्य की मानवीय तरलता पर आस्था रखने वाली कवियित्रियों में भी शामिल लगती हैं। उनके पास एक मीठी हँसी भी है जो उनकी भीतरी दुनिया की तरलता को बिम्बित करती है। अंजुमन की कविताएँ कई जगह दुनियावी समझ का द्वार भी खोलती हुई प्रतीत होती हैं। समझदारी कविता में वे कहती हैं - उजास से आँखें / चौन्धिया जाएँ / तो अँधेरे को बुलाओ / कलाई / नींद की पकड़कर ! रात के बिना जिस तरह दिन का अस्तित्व नहीं, दुख के बिना जीवन में सुख से भी जी भरने लग जाता है, इस द्वंद्व को अंजुमन उपरोक्त पंक्तियों के माध्यम से परिभाषित करने का प्रयास करती हैं।

अंजुमन की कुछ कविताएँ कई जगह शोषित पीड़ित जन के स्वर के रूप में भी उभरकर ध्वनित होती हैं। ग़रीब की पीठ कविता में वे कहती हैं - इमारतें पुल टावर / की ओर / जो रास्ते जाते हैं / उस पर दिखाई देते हैं / झुलसे हुए हाथ / और छाले पड़े पाँव की छाप / स्थापित विश्वास में सेंध लगाती हुई / जो कहती है / कछुए की नहीं / ग़रीब की पीठ पर टिकी है दुनिया !

विद्रूप समाज की एक बड़ी सच्चाई पर उनकी "बाबा नागार्जुन" कविता जब बातें करती है तब अंजुमन के भीतर छिपा ग़ुस्सा भी धीमे स्वर में प्रस्फुटित होने लगता है। वे सीधे और सपाट स्वर में कहती हैं- बाबा नागार्जुन तुमने कहा था /पानी और मिट्टी पर ना किसी का अधिकार है /और ना कभी होगा /पर अब पानी शुद्ध जल बनकर बोतलों में बिक रहा है /और माटी पर बिल्डरों ने कब का कब्ज़ा कर लिया है !

अंजुमन अपनी कविताओं में प्रकृति और पर्यावरण की सुरक्षा के प्रति भी आग्रही लगती हैं। पेड़ की पोशाक नामक कविता में उनका यह आग्रह सुंदर मूर्त रूप लिए सामने आता है - / पीले पतझड़ के बाद / पेड़ ने पहन ली / कोमल पत्तों की पोशाक / पूछा मैंने कहाँ से ख़रीदी ? / उसने कहा / नहीं / अनोखे दर्ज़ी ने मज़बूत सुई धागे से / करीने से सिली है / अब तो साल भर की छुट्टी। / फिर पूछा / क्या उस दर्ज़ी से मुझे मिला सकते हो? मुस्कुराकर पेड़ ने कहा / मैंने उसे कहाँ देखा है / पतझड़ के बाद वह आता है रात के अंधेरे जब नींद के मज़े लेती है दुनिया / सिल कर चुपके से चला जाता है !

इन सारी कविताओं को पढ़ लेने के बाद मुझे लगता है की अंजुमन के पास कथ्य की विविधताएँ तो हैं जिन्हें अपनी कविताओं में वे प्रस्तुत करने की हर सम्भव कोशिश करती हैं पर शिल्पगत सौंदर्य और लयात्मक कसावट जो कि समकालीन कविता के ज़रूरी घटक हैं, से अभी भी ज़्यादातर कविताएँ दूर लगती हैं, इसलिए बहुत सी कविताएँ प्रभाव नहीं छोड़तीं, इस लिहाज से उन्हें आगत में इस दिशा में और रियाज़ करने की ज़रूरत है। फिर भी पहले संग्रह के लिहाज से इन कविताओं का स्वागत होना चाहिए।

000

रमेश शर्मा
92 श्रीकुंज, बोईरदादर
रायगढ़(छत्तीसगढ़)
मोबाइल- 7722975017

पुस्तक समीक्षा

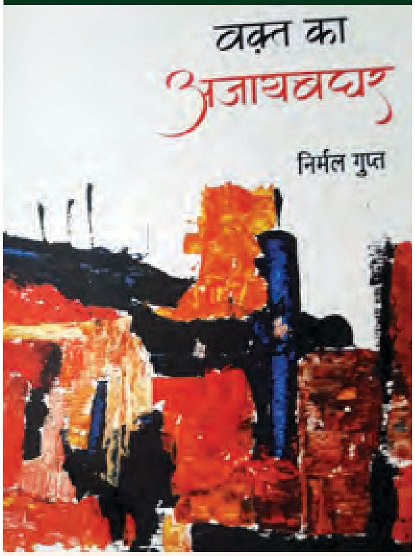

(कविता संग्रह)

वक्त का अजायबघर

समीक्षक : ब्रजेश कानूनगो

लेखक : निर्मल गुप्त

प्रकाशक : बोधि प्रकाशन,जयपुर

'वक्त का अजायबघर' कवि व्यंग्यकार निर्मल गुप्त की इसी वर्ष 2021 में बोधि प्रकाशन जयपुर से प्रकाशित कविताओं की ऐसी पुस्तक है जिसमें कवि ने बीते और वर्तमान समय को बहुत नज़दीक से ही नहीं उसके भीतर की धड़कनों को महसूस करते हुए अपनी संवेदनाओं, अनुभूतियों पर काव्यात्मक टिप्पणियाँ की हैं। निर्मल 'समय की बोध कथा' भी लिखते हैं। और 'क्रूर समय' की सच्चाइयों को भी बहुत मार्मिकता से अभिव्यक्त करते हैं। भावुकता और संवेदनाओं के बीच उनकी व्यंग्य दृष्टि बनी रहती है।

उनकी अनेक कविताओं में माँ, पिता, बेटी, बेटा और पारिवारिक रिश्तों की गंध आती है। रिश्तों के कोमल सूत्र किस तरह विडम्बनाओं में बदलते जाते हैं, यह कई जगह महसूस किया जा सकता है। 'पापाजी नहीं रहे' कविता में पिता की मौत की ख़बर पहुँचाते हुए पिता के मित्रों और ताऊ से वार्तालाप में दुनियादारी के प्रपंचों से कवि उद्वेलित होता है। कविता में कहते हैं....

ये लफंगे ही होते हैं ज़िंदगी के साथ भी/काम के साबित होते हैं ज़िंदगी के बाद भी....शोक की घड़ियों में उनका चेहरा कनखियों से देखा/लगा कि वह अपने खास अंदाज़ में मुझे या अपने दोस्तों को या मौत को मुँह चिढ़ा रहे हैं।

पीढ़ियों के विचार,व्यवहार में आए परिवर्तन को बहुत संवेदनशील रूप से अभिव्यक्त करती कई कविताएँ संग्रह में हैं। कवि की तरह कई लोग हैं जिन्होंने पिछली पीढ़ी के पिता और प्रपिता का स्नेह पाया है। वह ऐसा वक्त था जब पिता, पुत्र और दादा की सोच, समझ और व्यवहार में समानता हुआ करती थी। आज पिछले कुछ समय के पिता पुत्र और दादा में हर एक में बहुत अंतर है। आज का दादा अपने पुत्र और पिता में बहुत भिन्नता पाता है। इसके अपने सुख दुख भी हैं। स्मृतियों में उतरकर निर्मल जी की कई कविताएँ निकलकर आई हैं।

'स्मृति का अस्तबल' जीवन के सच को मार्मिकता से बयान करती है। निर्मल जी की इस कविता में उदास लम्हों में सुख की तलाश दिखाई देती है। यह कोई युवा और व्यस्त व्यक्ति लिख ही नहीं सकता। अकेलेपन और उदासी की अनुभूति किसी संवेदनशील और भरपूर जीवन जिये व्यक्ति में ही सम्भव हो सकती है। ऐसी ही अनेक कविताएँ कवि के एकाकीपन और उदास लम्हों से निकली हैं। अपने अकेलेपन में कोई व्यक्ति जब जीवन को खोजने लगता है, तब उस मन:स्थिति में नए संबंध और खुशियाँ तलाशने की कोशिश करता है। फिर वह चाहे वह प्रिय हो या अप्रिय उसके अकेलेपन को भरने में सहयोगी बन पड़ती हैं।

'साइकिल पर टँगी ढोलक' कविता में इसी मन:स्थिति के बीच कोरोना समय की ख़ामोशी और उदास विवशताओं से जनित करुणा से कवि पाठकों की आत्मा को भिगो देने में सफल हुआ है। संग्रह में एक कविता है 'नन्ही बच्चियाँ'। दो बच्चियों के मासूम खेल में बालसुलभ आनंद के पीछे जो दुख का धुआँ छुपा है उसे एक संवेदनशील और जागरूक कवि ही देख सकता है। समाज मे गहरे से मौजूद वर्गभेद के बीच दो बच्चियाँ अपने अलग परिवेश के बावजूद निर्मल मन लिए आनंदित हैं। बचपन ज़िन्दा है उनमें। जबकि कई ऐसे बच्चे हैं जिनसे समय और व्यवस्था ने उनका बचपन ही छीन लिया है।

धर्म, जाति, अमीर, ग़रीब और राजनीतिक चालाकियों के बीच बालिकाओं की चहकते रहने की मासूम आकांक्षा इस कविता का उत्कर्ष है। यह उत्कर्ष क्या केवल बच्चों के लिए है? नहीं कवि इसकी माँग हरेक नागरिक के लिए करता है। इसके लिए हमें निर्मल गुप्त जी की कविता में उन्हीं की तरह गहरे उतरना होगा।

संग्रह की एक कविता की पंक्तियाँ हैं... नए शब्द नए भावार्थ गढ़ते हुए/सब खुद ब खुद पता चलता है/किसी से कुछ मत पूछो/बहती नदी की गति को तस्दीक की ज़रूरत नहीं होती।'

कविता में सरोकार, संवेदनाएँ, समय की क्रूरता, जीवन के सुख, दुख, उदासी और एकाकीपन के बीच किस तरह सार्थक कविताएँ रची जा सकती हैं यह जानना हो तो निर्मल गुप्त के संग्रह 'वक्त का अजायबघर' की कविताओं को अवश्य पढ़ा जाना चाहिए।

000

ब्रजेश कानूनगो
503, गोयल रिजेंसी, इंदौर 452018
मोबाइल- 9893944294
ईमेल- bskanungo@gmail.com

पुस्तक समीक्षा

(लघुकथा संकलन)

कथा समय

समीक्षक : खेमकरण 'सोमन'

संपादक : अशोक भाटिया

प्रकाशक : अनुज्ञा बुक्स, नई दिल्ली

वरिष्ठ लघुकथाकार अशोक भाटिया के संपादन में महत्त्वपूर्ण लघुकथा संकलन 'कथा समय' महत्त्वपूर्ण लघुकथा संकलन है जिसमें देश के आठ प्रमुख लघुकथाकारों भगीरथ, बलराम अग्रवाल, अशोक भाटिया, सुकेश साहनी, कमल चोपड़ा, माधव नागदा, चन्द्रेशकुमार छतलानी और दीपक मशाल की दस्तावेज़ी लघुकथाएँ संकलित हैं। इनमें प्रारम्भिक छह नाम संस्थापित हैं, और बाद के दो नाम नई पीढ़ी की सशक्त आवाज़। इस प्रकार 'कथा समय'प्रमुख रूप से नई पीढ़ी-पुरानी पीढ़ी के लघुकथाकारों और उनकी नदी रूपी विविध लघुकथाओं का मिलन स्थल अर्थात संगम है।

'कथा समय''भूमिका: दो' में संपादक अशोक भाटिया कहते हैं, ''ये रचनाएँ इन लेखकों की प्रतिनिधि लघुकथाएँ हैं। प्रतिनिधित्व किसका? लेखक का या समकाल का? उत्तर दोनों का। चयन करते समय अपने समय के बहुआयामी सामाजिक यथार्थ से नि:सृत लघुकथाएँ जिन लेखकों ने रची हैं, उन्हीं में से रचनाकारों का चयन किया गया है। फिर इन सबकी अपनी कहन-शैली हैं।'' अत: इसी दृष्टि से 'कथा समय'में आठ लघुकथाकारों की 201 लघुकथाएँ प्रस्तुत की गई हैं। इनमें भगीरथ की 28 लघुकथाएँ, बलराम अग्रवाल की 24 लघुकथाएँ, अशोक भाटिया की 28 लघुकथाएँ, सुकेश साहनी की 25 लघुकथाएँ, कमल चोपड़ा की 23 लघुकथाएँ, माधव नागदा की 25 लघुकथाएँ, चन्द्रेशकुमार छतलानी की 24 लघुकथाएँ और दीपक मशाल की 24 लघुकथाएँ सम्मिलित हैं। विभिन्न आस्वादों की ये लघुकथाएँ पाठकीय मन-मस्तिष्क में गहरा विश्वास रचती हैं।

लघुकथा संकलन 'कथा समय'में अपने समय और संघर्ष की कथा, कथारस के साथ समाहित है। संपादक अशोक भाटिया द्वारा प्रमुख रूप से तीन भूमिकाएँ प्रस्तुत की गई हैं। प्रथम भूमिका लघुकथा की भूमिका से संबंधित है। दूसरी भूमिका लघुकथाकार एवं उनकी रचनाओं के चयन से संबंधित, और तीसरी भूमिका संक्षिप्त लघुकथा यात्रा एवं इतिहास से संबंधित। इसके उपरान्त 'इन लघुकथाओं में समय' के अन्तर्गत संगृहीत लघुकथाओं पर सुखद एवं संक्षिप्त चर्चा की गई है। इस प्रकार की चर्चा प्राय: लघुकथाओं को कई दृष्टिकोणों से खोलने का कार्य करती हैं। क्योंकि कोई रचना एक पक्षीय न रचकर कई पक्षीय कथा-वृतान्त रचती है।

सुप्रसिद्ध लघुकथाकार सुकेश साहनी का आत्मवक्तव्य है कि - ''मेरा लघुकथा लेखन कभी भी तुरत-फुरत में नहीं हुआ।'' वहीं बलराम अग्रवाल कहते हैं- ''लघुकथा मुझे उतनी ही सक्षम विधा लगती है, जितनी सक्षम विधा बिरजू महाराज को नृत्य की, एम.एफ. हुसैन को चित्रांकन की और बिस्मिला खाँ को शहनाई बजाने की विधा लगती होगी।'' इसी प्रकार माधव नागदा का मानना है कि - ''लेखन एक ज़िम्मेदारी भरा सामाजिक कार्य है।'' तो भगीरथ के शब्द हैं - ''मेरा मुख्य लेखन लघुकथा ही है।'' फिर दूसरी जगह कहते हैं कि, ''जीवन में वैज्ञानिक और मार्क्सवादी दृष्टिकोण का समर्थक रहा हूँ।'' इनके अतिरिक्त बाकी चारों लघुकथाकारों के आत्मवक्तव्य भी महत्त्वपूर्ण हैं, जिनसे लघुकथाकार के व्यक्तित्व, लघुकथा विधा की सूक्ष्म परतें उघारने और उन्हें समझने में सहयोग मिलती हैं।

इस प्रकार अशोक भाटिया के संपादन में 'कथा समय' आठ लघुकथाकारों की लघुकथाओं के माध्यम से दस दिशाओं की दस्तावेज़ी लघुकथाएँ हैं, जिन्हें पढ़कर प्रतीत होता है कि हिन्दी साहित्य के हाथों में एक स्तरीय लघुकथा संकलन पहुँचा है। इनमें ऐसी कई लघुकथाएँ हैं जिन पर घंटों विचार-विमर्श हो सकता है। उदाहरणार्थ भगीरथ की 'हड़ताल', 'आग', अन्तहीन ऊँचाइयाँ', बलराम अग्रवाल की 'समन्दर- एक प्रेमकथा', 'शिक्षा', अशोक भाटिया की 'रंग'और 'रिश्ते', सुकेश साहनी की 'गोश्त की गंध', मेंढकों के बीच, 'स्कूल'और 'कसौटी', कमल चोपड़ा की 'छोनू', 'मेरा खून', खुदखुशी, ख़ौफ, माधव नागदा की 'आग', 'मेरी बारी', डॉ. चन्द्रेशकुमार छतलानी की 'मानवमूल्य'और 'इनसान ज़िन्दा है'और दीपक मशाल की 'इज़्ज़त', 'भाषा' और 'सयाना होने के दौरान' आदि।

000

खेमकरण 'सोमन'
हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय
मालधनचौड़,
जिला- नैनीताल, उत्तराखण्ड-244716
मोबाइल- 9045022156
ईमेल- khemkaransoman07@gmail.com

पुस्तक समीक्षा

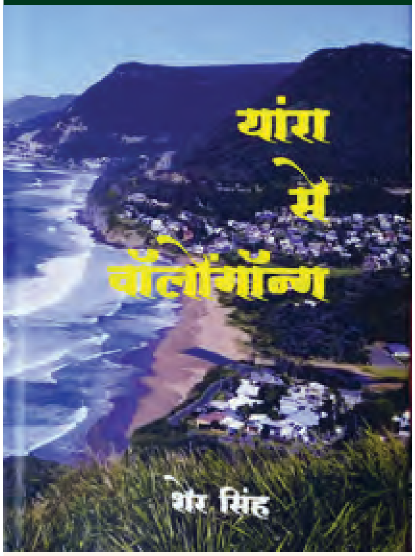

(यात्रा संस्मरण)

यांरा से वॉलोंगॉन्ग

समीक्षक : दीपक गिरकर

लेखक : शेर सिंह

प्रकाशक : भावना प्रकाशन, नई दिल्ली

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016
मोबाइल- 9425067036
ईमेल- deepakgirkar2016@gmail.com

सहज, सरल व्यक्तित्व के धनी सुपरिचित साहित्यकार श्री शेर सिंह की पुस्तक "यांरा से वॉलोंगॉन्ग" इन दिनों चर्चा में है। शेर सिंह जिज्ञासु वृत्ति के रचनाकार हैं। उनकी यात्राएँ केवल तफ़रीह के लिए नहीं होती है। पुस्तक संस्मरण शैली में है। लेखक ने अपने जीवन में अनुभव किए भावों को रचनात्मक रूप दिया है। इन संस्मरणों में कथातत्व भी है। शेर सिंह इस पुस्तक के संस्मरणों में स्थानीय विशेषताओं तथा वहाँ के लोगों की जीवनशैली से परिचय करवाते हैं। यात्राएँ जीवन में ज्ञान अर्जित करने का बेहतर साधन है। इस पुस्तक में कुल 26 अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में लेखक ने अपने संस्मरणों को बड़ी ही सहजता से इस पुस्तक के माध्यम से पाठकों से साझा किया है। लेखक कुल्लू (हिमाचल प्रदेश) के रहने वाले हैं।

पहाड़ी ज़िंदगी की मुश्किलें, वहाँ के लोगों की ईमानदारी और निश्छल प्रेम, सबके बारे में यह किताब बताती चलती है। श्री शेर सिंह अपनी यात्रा में केवल दर्शनीय स्थलों को ही नहीं देखते बल्कि उस देश, उस शहर की सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और आर्थिक स्थिति की भी चर्चा करते हैं। इस पुस्तक को पढ़कर लगता है कि पाठक यात्रा में शामिल है। सभी यात्रा संस्मरण रोचक और जानकारी से परिपूर्ण हैं। यह पुस्तक श्री शेर सिंह के कार्यक्षेत्र पर आधारित है। लेखक रोमांच के साथ अध्यात्म भावना से भी जुड़े हुए हैं।

"विकसित देशों का सच", "विविध रंग", "कंगारुओं के देश में", "ऑस्ट्रेलिया का ख़ूबसूरत शहर- सिडनी", "विश्व के सुन्दरतम स्थलों में शुमार – ब्लू माऊँटेंस" और "मौक़ा और दस्तूर" अध्यायों में लेखक ने अपनी आस्ट्रेलिया यात्रा का रोचक वर्णन किया है। सिडनी में लेखक ने सिडनी हार्बर ब्रिज, ऑपेरा हाउस, बालाजी मंदिर, वेंकटेश्वर मंदिर, पैराग्लाइडिंग पॉइंट, स्टेनवेल बीच, रेपटाइल पार्क, ब्लू माउण्टेन का सीनिक वर्ल्ड, ब्लू माउण्टेन की जेमिसन घाटी इत्यादि पर्यटक स्थलों का भ्रमण किया, आनंद लिया और वहाँ के दृश्य और वातावरण को सहज रूप से इस पुस्तक में प्रस्तुत किया। लेखक ने ऑस्ट्रेलिया की संस्कृति, साहित्य, कला और वहाँ के मूल निवासी एबोरीजनल से परिचय करवाया। "पहचान" अध्याय में लेखक के पिताजी भुवनेश्वर जाते हैं जहाँ लेखक पदस्थ थे। लेखक के पिताजी भुवनेश्वर में भी सिर पर टोपी पहने रहते थे। टोपी ही तो हिमाचल प्रदेश की शान और पहचान है। सिर पर टोपी पहनना देवभूमि की कला एवं संस्कृति की निशानी है।

चौथे अध्याय में वेल्लूर के ऐतिहासिक क़िले का वर्णन करते हुए लेखक लिखते हैं - वेल्लूर का क़िला ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। यह दक्षिण भारत में स्थित सैनिक वास्तु कला का एक अद्भुत एवं अत्यंत श्रेष्ठ, आदर्श योजनाओं में से एक है। इस क़िले का निर्माण 13वीं शताब्दी में किया गया था। इस क़िले में राजीव हत्याकांड के ख़तरनाक मुजरिम क़ैद हैं। यांरा से वॉलोंगॉन्ग अध्याय में लेखक लिखते हैं यांरा एक छोटा-सा गाँव है। यह गाँव वर्ष के लगभग 5 से 6 महीने बर्फ से ढका रहता है। वर्ष का शेष भाग यानी केवल 5 या 6 महीने के दौरान ही यांरा से प्रदेश या देश, दुनिया के अन्य भागों में जा सकते हैं। लेखक के बचपन के 9 या 10 वर्ष इसी यांरा गाँव में निकले हैं। इस गाँव में उस समय सिर्फ 5 या 6 घर ही थे। लेखक का बचपन विषम परिस्थितियों में निकला। वॉलोंगॉन्ग ऑस्ट्रेलिया में है। इसलिए इस पुस्तक का नाम यांरा से वॉलोंगॉन्गरखा है।

यह एक पठनीय यात्रा संस्मरण है। लेखक इस पुस्तक में सिर्फ सूचनाएँ या जानकारियाँ नहीं देते। पाठक यात्रा के अलग-अलग चरणों में लेखक के साथ यात्रा करते हैं, उसके रोमांच में रोमांचित होते हैं। शेर सिंह की यह किताब पहाड़ी जीवन, ऑस्ट्रेलिया का जीवन, अपने देश के प्रमुख शहरों चंडीगढ़, उडुपि, भुवनेश्वर, अहमदाबाद, भोपाल, लखनऊ, हैदराबाद, नागपुर, गाजियाबाद का जीवन और वहाँ की संस्कृति को समझने के लिए एक अनूठी कृति है। यात्रा संस्मरण पढ़ने के शौक रखने वालों के लिए एक अच्छी और प्यारी किताब है। यांरा से वॉलोंगॉन्ग यात्रा-संस्मरण की अनूठी कृति है।

000

शोध आलेख

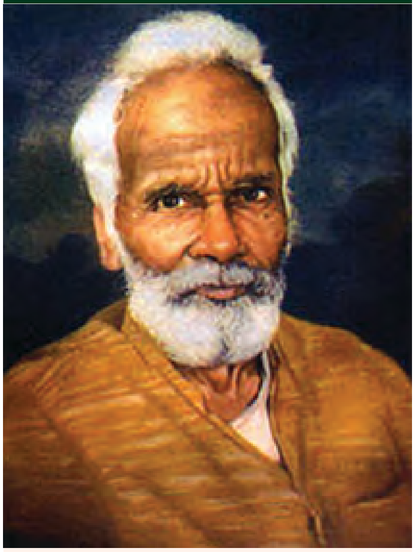

राजनीति और नागार्जुन की कविता

शोध : डॉ. नूरजहाँ परवीन

नागार्जुन का कहना था कि अगर राजनीति ग़लत राह पर चल निकली तो वह खुद भटकेगी और जनता के लिए तबाही लाएगी। सत्ता जीवन को जीवन दे सकती है और चौपट भी कर सकती है। भारतेंदु के शब्दों में 'अँधेर नगरी चौपट राजा! नागार्जुन चाहते थे कि साहित्य में लोकतान्त्रिक सरकार की नीति और अनीति की चर्चा हो और जनता भी खुल कर अपने विचार रखे। साहित्य का प्रथम विषय है मनुष्य और लोकतंत्र में मनुष्य का प्रथम विषय है राजनीति- राजनीति मनुष्य के जीवन की हर गति के साथ जुड़ी है- वह मनुष्य की शिक्षा, स्वास्थ्य, रोज़गार, कानून और व्यवस्था, अर्थ-व्यवस्था आदि से जुड़ी है। मनुष्य के लिए लोकतंत्र में राजनीति केन्द्र आ गई है।

और, इसी आलोक में नागार्जुन ने देश-दुनिया की राजनीति को अपनी कविताओं में उतार दिया। उनकी कविताओं के साथ उसकी रचना की तिथि अंकित होती है। उनकी कविताएँ राजनीति की लगभग सभी प्रमुख घटनाओं को अंकित करती हैं।

नागार्जुन की कविताओं में राजनीति और मानव जीवन मानवीय दोनों की सुन्दर विवेचना है। साहित्य मनुष्य का पक्षकार होता है- इसी नीति के तहत उनकी कविताओं में सत्ता ग़लत नीति पर विरोध का प्रकटीकरण है। उनकी कविताओं को समग्रता में देखें तो भारत की राजनीति के एक बड़े युग को दृश्यमान करती हैं। उसकी समीक्षा करती हैं। राजनीति की अनीति पर उनका आक्रोश, कटाक्ष और वक्रोक्ति से युक्त भाषा में अभिव्यक्त होता है। उन्होंने अपनी कविता में नेता का नाम लेकर उनकी सत्यालोचना की है।

नागार्जुन आजादी के पहले और आजादी के बाद स्वयं राजनीति और मजदूर किसान आंदोलनों से जुड़े रहे। उन्होंने 1974 में जयप्रकाश नारायण के नेतृत्त्व में हुए सम्पूर्ण क्रांति में भी भागीदारी की। वे वैचारिक स्तर पर साम्यवादी थे और सशस्त्र क्रांति के भी पक्षधर थे। अपनी राजनीतिक सक्रियता और लेखन के कारण वे कई बार जेल भी गए। शम्भुनाथ ने उनकी राजनीतिक चेतना पर लिखा है-

"नागार्जुन एक गहरी राजनीतिक चेतना के कवि रहे हैं। उनके लिए राजनीति का अर्थ है सम्पूर्ण व्यवस्था में परिवर्तन लाने के लिए लड़ाई, सत्ता का जूस पीना नहीं।"1

नागार्जुन के लिए उनकी राजनीति का एक बड़ा मुद्दा किसान रहा है- आजादी के पहले भी और बाद भी किसान की कोई सरकार हो ऐसा चिह्न उनको नहीं दिखा। किसान सदैव पूँजीपतियों का खिलौना बना रहा। उनको क़र्ज़ और सूदखोरों से कभी मुक्ति नहीं मिली।

डॉ. नूरजहाँ परवीन
ऐश्वर्या अपार्टमेंट्स, ब्लॉक-ए, फोर्थ फ्लोर, टी. टी. रोड, हिंदपिरी, मंटू चौक
राँची, झारखंड 834001
मोबाइल-7488014592

नागार्जुन किसान और खेत के लिए पूँजीवाद को सबसे बड़ा ख़तरा मानते थे, और उनका विचार आज सत्य होता दिख रहा है। आज पूँजीपति उनकी उपजाऊ ज़मीन पर कारखाने बना रहे हैं। पूँजीपति किसानों की प्रतिरोध शक्ति को कम करने के लिए उनकी घेराबंदी सत्ता के साथ मिल कर करती रहती है और वही हाल मज़दूरों का भी है। शम्भुनाथ ने लिखा है-

"कहाँ है ऐसा भारतीय जन संग्राम, जो नए उपनिवेशवाद, पूँजीवाद और सामंतवाद की जड़ें खोद कर नया रास्ता भारत में ला दे, एक नया विश्व ला दे। नागार्जुन कहते हैं- "आओ, कहत-मज़दूर और भूमिदास नौजवान / आओ, खदान-श्रमिक और फैक्ट्री वर्कर नौजवान / आओ कैम्प के छात्र और फैक्टरी के वर्कर नौजवान / हाँ, हाँ, तुम्हारे ही अंदर तैयार हो रहे हैं / आगामी युग का लिब्रेटर / आओ भई, सामने आओ !"2

और, आज के दौर में किसान लगातार आत्महत्या कर रह है, फैक्ट्री में मज़दूरों की छँटनी मनमानी ढंग से होती ही रहती है, और पूँजीपतियों की कोशिश होती है कि वे इतना मजबूर हो जाएँ कि मज़दूर उनकी तय की गई मज़दूरी पर काम करें। किसान क़र्ज़ में इतना डूब जाएँ कि कि अपनी ज़मीन उनको औने-पौने दाम में बेच दें। इधर तो सत्ता ने उनकी ज़मीन का भाग्य पूँजीपतियों के साथ जोड़ने के लिए कानून तक बना दिया है और आज किसान पूरे देश में अपनी पहचान वजूद बचाने के लिए संघर्ष कर रहे हैं।

नागार्जुन ने अपनी कविताओं को सामाजिक-राजनीतिक शास्त्र के रूप में परिणत कर दिया है। उन्होंने अपनी राजनितिक, सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से कविता में राजनीति की अनीति को और उसके कारकों को सामने ला कर खड़ा कर दिया और पूँजीपतियों के अमानवीय इरादों का पिटारा खोल दिया, कि देखो वे क्या चाहत है?

नागार्जुन की राजनीतिक विचारधारा का मूलाधर था समतामूलक समाज जिसमें आर्थिक समानता। सामजिक समानता और जाति भेद- भाव से मुक्ति। वे पूँजीवादी राजनीति और सत्ता के ख़िलाफ़ हमेशा मोर्चा खोलते रहे। डॉ. खगेन्द्र ठाकुर ने लिखा है-

"नागार्जुन पूँजीवादी दलों के नेताओं के अक्सर खिलाफ व्यक्तिपरक कविताएँ बहुत लिखी हैं, ख़ास करके अपने रचनाकाल के उत्तरार्द्ध में। अपने जीवन में अनन्य साहस से भरे जन कवि ने शीर्ष सत्ता पर बैठे नेताओं के नाम लेकर उनकी ऐसी-तैसी कर दी है। सबसे अधिक उन्होंने इंदिरा गाँधी के ख़िलाफ़ लिखा है।"3

नागार्जुन नेहरू जी को पूँजीवाद का पोषक मानते थे और कोई भी मौका नहीं छोड़ते थे उन पर कविता लिखने का वह भी उनका नाम लेकर। 1955 में उन्होंने लिखा- "नेहरू / दुनिया भर को पंचशील का पाठ पढ़ाओ / आइजनहावर के माथे पर मलो रात दिन / सत्य-अहिंसा की बातों का बादामी गुलरोगन / हमें पिलाओ अनुशासन की बासी खट्टी छाछ / बात-बात पे हंटर मारो / कदम-कदम पर छोड़ो आँसू गैस..... / हमें नहीं चाहिए सोशलिज़्म का / यह कंकाली ढाँचा / अति असह्य है प्रजातंत्र पर / ब्यूरोक्रेसी का यह विकट तमाचा / रहो ताकते। बिड़ला-टाटा-डालमिया की ओर..." 4

महात्मा गाँधी की हत्या के बाद कुछ सांप्रदायिक संगठन उनके हत्यारे नाथूराम गोडसे की तरफदारी में बोलने और लिखने लगे थे। लेकिन नागार्जुन गाँधी के हत्यारे पर कठोरता के साथ 'हंस' पत्रिका के मार्च, 1948 के अंक में लिखा- "वाह, गोडसे ! / अजी गोडसे, / मीमांसा हो रही आज कल, / नहीं पकड़ में आता है उन्माद तुम्हारा ! / अगर इस अद्भुत पागलपन का / निदान नहीं समझ में आवे / वियना के वैज्ञानिक को सरकार बुलावे।"5

नागार्जुन को इस बात पर आक्रोश था कि हत्यारे नाथूराम गोडसे को जेल में रेडिओ और अख़बार की सुविधा क्यों दी गई थी? ऐसी सुविधा भूख मिटाने के लिए मामूली चोरी करने वाले को नहीं मिलती- उनको तो दिन रात जेल में काम करण पड़ता है। एक हत्यारे के लिए अलग सुविधा और रोटी की चोरी के आरोप में बंदी एक ग़रीब को जेल में दिन रात क्यों हड्डीतोड़ काम करना पड़ता है? यह प्रश्न वे बार-बार उठाते रहे।

नागार्जुन ने जहाँ गाँधी की आलोचना करती एक भी कविता नहीं लिखी, वहीं वे साम्यवादी होते हुए भी मार्क्सवादियों को बुर्जुआ कहते हुए ज़रा भी हिचके नहीं। शम्भूनाथ ने लिखा है-

"एक विलक्षण बात है, नागार्जुन गांधी की कभी आलोचना नहीं करते। वह लेनिन पर कविता लिखते हैं और मन खुला रखकर गाँधी पर भी। उस काल में मार्क्सवादियों द्वारा रवीन्द्रनाथ की तरह गांधी का कुछ ज़्यादा ही पोस्टमार्टम हो रहा था। उन्हें बुर्जुआ कह कर लांछित किया जा रहा था। नागार्जुन उस हवा में नहीं रहते...उनका गाँधी से संवाद बराबर बना हुआ था- 'तुम ग्रामात्मा तुम ग्राम प्राण, तुम ग्राम हृदय तुम ग्राम दृष्टि।' नागार्जुन भी ग्राम-केन्द्रित विकास चाहते थे।"6

मार्क्सवादी होते हुए भी उन्होंने रूस की तब आलोचना की जब उसने चेकोस्लाविकिया पर कब्ज़ा कर लिया-

" रूस ने जब चेकोस्लाविकिया की राजधानी प्राहा में अपने टैंक उतारे, नागार्जुन ने कविता लिखी, "क्रांति तुम्हारी तुम्हें मुबारक" भ्रान्ति तुम्हारी तुम्हें मुबारक, कूट कपट की भितरघाती, शांति तुम्हारी तुम्हें मुबारक...(1969)"7

7 अप्रैल, 1974 को उन्होंने जेपी आन्दोलन के दौरान इंदिरा गांधी पर यह कविता लिखी- "इंदु जी, क्या हुआ आपको? / क्या हुआ आपको ? / क्या हुआ आपको ? / सत्ता की मस्ती में / भूल गई बाप को ? / इंदु जी, इंदु जी, क्या हुआ आपको? / बेटे को तार दिया, बोर दिया बाप को ! / क्या हुआ आपको? / क्या हुआ आपको ?"8

1974 में पटना में जयप्रकाश नारायण पर एक रैली के दौरान पुलिस की लाठियाँ चलीं और नागार्जुन ने प्रतिरोध की कविता लिख डाली- "जयप्रकाश पर पड़ी लाठियाँ लोकतंत्र की / एक और गांधी की हत्या होगी अब क्या ? / बर्बरता के भोग चढ़ेगा योगी अब क्या ? / पोल खुल गई शासक दल के महामंत्र की ! / जयप्रकाश पर पड़ गईं लाठियाँ लोकतंत्र

की..."9

नागार्जुन ने 1978 में जब इंदिरा गाँधी को सत्ता की ओर पुन: बढ़ते देखा और पाया कि वे अपने बेटे संजय गाँधी के साथ बिहार आ गई हैं और बेलछी में हुए तेरह दलितों के संहार से प्रभावितों से मिलने पहुँची हैं और इतना ही नहीं, वे जयप्रकाश नारायाण से मिलने के लिए उनके पटना स्थिति कदम कुआँ निवास, 'प्रभा स्मृति' पहुँच गईं तो नागार्जुन को यह नहीं सुहाया। लगा उनकी कविता में राजनीतिक विरोध का उनका चिरपरिचित स्वर फूटा- "डेमोक्रेसी की डमी ! / वो देखो, देखो, / गुफा से निकली संजय की ममी ! / क्या तो पवनार, क्या तो बेलछी / पहुँची वो कहाँ नहीं / कहाँ न थमीं ! / हिम्मत तो देखो चली गई कदम कुआँ / जेपी से मिलते क्या ज़रा भी सहमी / वो देखो / वो देखो गुफा से निकली संजय की ममी!"10

और जब जेपी ने इंदिरा गाँधी को विजयी भव: का आशीर्वाद दिया तो नागार्जुन को जेपी से विरक्ति-सी हो गई। वे पूरे समय ढूँढ़ते रहे कि समाज में एक ऐसा नेता मिले जो समाज के लिए ही समर्पित हो और समाज के लिए ही सोचे और मरे- लेकिन ऐसा नेता उनको नहीं मिला तो उनकी आशाएँ युवा पीढ़ी से जोड़ दीं कि वही एक दिन अपने भविष्य के लिए, भारत के भविष्य के लिए संघर्ष करेंगे और सच्चे अर्थ में लोकतंत्र की स्थापना होगी। उन्होंने महसूस किया कि क्रांति सुगबुगाती है, सुलगती है और जल्दी सुसुप्तावस्था में चली जाती है बिना लक्ष्य को प्राप्त किए-

"क्रांति सुगबुगाई है / करवट बदली है क्रांति ने / मगर, अब भी उसी तरह लेती है / एक बार इस ओर देख कर / उसने फिर फेर लिया है / अपना मुँह उसी ओर.... / 'सम्पूर्ण क्रांति' और 'समग्र विप्लव' के मंजु घोष उसके कानों के अंदर / खीज भर रहे हैं या गुदगुदी / -यह आज नहीं, कल बतला सकूँगा!"11

नागार्जुन ने देखा कि भारत कि राजनीति में सामंतों की चलती है और जनता दूर खड़ी तमाशा देखती है, संसद में बातें उसकी होती हैं और काम सामंतों और पूँजीपतियों का होता है- "इंद्रजाल की छतरी ओढ़ी श्रीमंतों ने / प्रजातंत्र का होम कर दिया सामंतों ने..."12

अगर आज नागार्जुन होते तो शायद उनकी कविता के स्वर में आक्रोश और विक्षोभ का स्वर और तेज़ होता...फिर भी आज उनकी अनेक राजनीतिक कविताएँ ज़िन्दा हैं राजनीतिक चेतना का प्रसार करतीं, समाज को और जन जन को ललकारतीं।

000

सन्दर्भ-

1.आलोचना, अक्टूबर-सितम्बर, 2011, पृष्ठ-95

2.आलोचना, अक्टूबर-सितम्बर, 2011, पृष्ठ-95

3.आलोचना,अक्टूबर-दिसंबर, 2011, पृष्ठ-64

4.नागार्जुन रचनावली, भाग-1, 2011, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ- 281

5.नागार्जुन रचनावली, भाग-1, 2011, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ-99

6. आलोचना, अक्टूबर-दिसंबर,2011, पृष्ठ-88

6.आलोचना, अक्टूबर-सितम्बर, 2011, पृष्ठ-97

7. आलोचना, अक्टूबर-दिसंबर, 2011, पृष्ठ-89

8. नागार्जुन रचनावली, भाग-2, 2011, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ-81

9. नागार्जुन रचनावली, भाग-2, 2011, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ-84

10.नागार्जुन रचनावली, भाग-2 2011, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली पृष्ठ-197

11.नागार्जुन रचनावली, भाग-2 2011, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली पृष्ठ-87

12.नागार्जुन रचनावली, भाग-2 2011, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली पृष्ठ-72

लेखकों से अनुरोध

'शिवना साहित्यिकी' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे किसी अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

shivnasahityiki@gmail.com

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका द्वारा मध्यप्रदेश के सीहोर ज़िले में सीहोर तथा आष्टा में चलाए जा रहे आर्थिक रूप से कमज़ोर परिवार की बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण योजना के तहत स्थापित प्रशिक्षण केन्द्रों पर आयोजित कुछ कार्यक्रम

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2020-21 का शुभारंभ मुख्य नगरपालिका अधिकारी श्री संदीप श्रीवास्तव, समाजसेवी श्री अनिल पालीवाल, प्राचार्य श्रीमती अनीता भालेराव बड़गुर्जर तथा समाजसेवी श्री हितेन्द्र गोस्वामी ने किया।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2020-21 का शुभारंभ मुख्य नगरपालिका अधिकारी श्री संदीप श्रीवास्तव, समाजसेवी श्री अनिल पालीवाल, प्राचार्य श्रीमती अनीता भालेराव बड़गुर्जर तथा समाजसेवी श्री हितेन्द्र गोस्वामी ने किया।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2020-21 का शुभारंभ मुख्य नगरपालिका अधिकारी श्री संदीप श्रीवास्तव, समाजसेवी श्री अनिल पालीवाल, प्राचार्य श्रीमती अनीता भालेराव बड़गुर्जर तथा समाजसेवी श्री हितेन्द्र गोस्वामी ने किया।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2020-21 का शुभारंभ अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक श्री समीर यादव, समाजसेवी श्री सुनील भालेराव तथा पत्रकार श्री आकाश माथुर ने किया। बालिकाओं से चर्चा करते श्री समीर यादव।

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पुस्तक "नर्मदा के पथिक" का विमोचन मध्यप्रदेश विधानसभा के मानसरोवर ऑडिटोरियम में एक गरिमामय समारोह में हुआ। मध्यप्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री श्री दिग्विजय सिंह की नर्मदा परिक्रमा पर आधारित पुस्तक के लेखक श्री ओमप्रकाश शर्मा हैं।

मध्यप्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री श्री दिग्विजय सिंह की नर्मदा परिक्रमा पर आधारित पुस्तक "नर्मदा के पथिक" का विमोचन करते अतिथिगण।

श्री दिग्विजय सिंह, श्रीमती अमृता राय तथा पंकज सुबीर ने "नर्मदा के पथिक" के विमोचन के अवसर पर अपने विचार व्यक्त किए।

"नर्मदा के पथिक" के लेखक श्री ओमप्रकाश शर्मा को श्री दिग्विजय सिंह तथा पूर्व सांसद श्री रामेश्वर नीखरा ने सम्मानित किया।

"नर्मदा के पथिक" के विमोचन के अवसर शिवना प्रकाशन की तरफ़ से अतिथियों को स्मृति चिह्न तथा पुस्तकें प्रदान की गईं।

विमोचन स्थल पर शिवना प्रकाशन के पुस्तक बिक्री केंद्र पर श्री दिग्विजय सिंह, श्रीमती अमृता राय तथा मप्र के पूर्व मंत्री श्री पी. सी. शर्मा।